THE BOOK WAS DRENCHED

लड़खड़ाती दुनिया

लेखक

पंडित जवाहरलाल नेहरू



भूमिका-लेखक

आचार्य नरेंद्रदेव

१९४९

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

प्रकाशक,

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पांचवीं बार १९४९

मूल्य

दो रुपया

मुद्रक,

दिल्ली प्रेस,
नई दिल्ली

दो शब्द

इस पुस्तकमें जो मजमून जमा किये गये हैं उनको मैंने पिछले तीन-चार बरसके अंदर लिखा था। इस तेजीसे बदलती हुई दुनियामें वे काफी पुराने हो गये। लेकिन फिर भी आजके सवालोंके समझनेमें शायद मदद करें। यह किताब पारसाल निकली थी, जब मैं जेलमें था। अक्सर लोगोंने उसपर इनायतकी नजरसे देखा और जितनी कापियां छपी थीं वे सब खतम हो गईं। इसलिए फिरसे छपानेकी आवश्यकता हुई।

इसके लेख चाहे पुराने हों या नये, किताबका नाम 'लड़खड़ाती दुनिया' बहुत मौजूं और उचित है। अजीब दुनियामें हम आजकल रहते हैं जिसकी सब पुरानी बुनियाद ढीली पड़ गई और फिरसे कहीं जमती नहीं। कभी-न-कभी फिर जमेगी लेकिन वह कोई दूसरी दुनिया होगी क्योंकि आजकलका जमाना अपने आखिरी दिन देख रहा है। हमारे सामने बड़े-बड़े साम्राज्य गिरे और गिर रहे हैं। रोज तस्वीर बदलती है। लेकिन सवाल तो यह है कि हम भी इस तमाशेमें हिस्सा ले रहे हैं या खाली दर्शक हैं? दर्शकोंकी जगहें तो अब कहीं रहीं नहीं और जो बचना भी चाहते हैं वे भी कहीं जा नहीं सकते। बचें कहां और किस-लिए? काम तो हमारा इस समय इस जगह पर है।

आश्चर्य इस बातपर होता है कि किस तरहसे इंग्लैंड और फ्रांसने अपनी जड़ खोदी। चीनमें, स्पेनमें, और म्यूनिकके समझौतेसे उन्होंने अपनेको बदनाम किया और कमजोर भी हुए। उस समय भी जो कुछ हम लोग कांग्रेसकी ओरसे इन विदेशी प्रश्नोंपर कहते थे वह ठीक निकला और अब इंग्लैंडवाले पछताते हैं कि क्यों गलती की। पुरानी गलतियां तो कभी-कभी समझमें आ जाती हैं; लेकिन

फिर भी नई गलतियां होती जाती हैं। उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता जब-तक दिमाग न बदले।

हिंदुस्तान इन पुरानी और नई गलतियोंका नमूना है। अंग्रेजी साम्राज्य तो यहां खतम हो रहा है—उसको तो खतम होना ही है—लेकिन खतम होते-होते हमको कितनी बीमारियां देकर जा रहा है। काफी मुसीबतें हमको घेर रही हैं, काफी मुश्किल सवाल हमसे चिपटे हैं। लेकिन यह तो इस लड़खड़ाती दुनियामें होना ही था। तब हम शिकायत क्यों करें? क्रांति और इन्कलाबके नारे हमने उठाये—अब वह क्रांति हमारे पास आई। कुछ रूप अच्छा है, कुछ बुरा, कुछ डरावना, जैसा कि क्रांतिका हमेशा होता है। हम उसका स्वागत कैसे करें? हिम्मत, वीरता और एकतासे और अपने छोटे झगड़ों और बहसोंको भूलकर हम अपना कद ऊंचा करके बड़े आदमी बनें और फिर बड़े सवालोंको लेकर उनको हल करें।

इलाहाबाद,
८ मार्च, १९४२

—जवाहरलाल नेहरू

पहले संस्करणकी भूमिका

आज हम एक मोड़पर खड़े हैं। जिस रास्तेपर अबतक दुनिया चलती थी उसे छोड़कर अब उसे दूसरी राह अख्तियार करनी पड़ेगी। पुराने आचार-विचार, पुरानी परंपराएं और संगठन टूटेंगे और नये उनकी जगह लेंगे। यह नई राह राहतकी होगी या आजसे भी ज्यादा कठिन और मुसीबतकी होगी, यह कहना मुश्किल है, किंतु इसमें कुछ शक नहीं कि एक नये युगका प्रवर्तन होने जा रहा है। १९१४-१८ के रक्त-स्नानके बाद भी दुनिया न संभली। आज वह पुराना इतिहास फिरसे दुहराया जा रहा है। मानव-सभ्यता आज फिर खतरे में है। चारों ओर पाशविकताका राज्य है, अंतर्राष्ट्रीय संबंधोंमें किसी बातका लिहाज और संकोच नहीं रह गया है और जीवनके ऊंचे आदर्श लुप्तप्राय हो रहे हैं। अगर दुनिया बदलती है, तो हमारा देश भी इन बड़ी तब्दीलियोंसे अछूता न रह जायेगा। अगर दुनियापर तबाही आई, तो हम भी तबाहीसे बच न सकेंगे और यदि दुनियामें नया उजाला हुआ और एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक सिलसिला कायम हुआ, जिससे मानवताकी प्यास बुझनेवाली है, जिसके जरिये जनताकी आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जरूरतें पूरी होनेवाली हैं, तो हम भी इस तरक्कीमें साझेदार होंगे। अतः दुनियामें आज क्या हो रहा है, इसके प्रति हम उदासीन नहीं रह सकते। अंतर्राष्ट्रीय जीवनकी धारसे अलग रहकर न हम जिंदा ही रह सकते हैं और न तरक्की ही कर सकते हैं, इसलिए हमको इस बातके विचारनेकी जरूरत है कि दुनियापर यह संकट क्यों आया और इसका अंत कैसे हो सकता है? समाजशास्त्र ही इस सवालका संतोषप्रद जवाब दे सकता है। युद्ध इसीलिए होते हैं कि मुट्ठीभर धन-कुबेर समाजकी संपत्ति पैदा करनेवाले समुदायका आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। उनको अपने मुनाफेसे मतलब। वे अपने वर्गके स्वार्थको देशके स्वार्थपर भी तरजीह देनेको तैयार हैं, न उनकी कोई मातृभूमि है, न पितृभूमि। मुनाफा कमानेके लिए वे राष्ट्रोंको लड़वा देंगे और लाखों देशवासियोंकी हत्याका पाप अपने ऊपर लेनेसे न हिचकिचायेंगे। मुनाफा उनके लिए सर्वोपरि है, वही उनका ईश्वर

और धर्म है। यह अमिट सत्य है कि जबतक पूंजीवादी प्रथा कायम है तबतक संसारमें भीषण युद्ध होते रहेंगे।

आज चारों ओर निराशा छाई हुई है, फासिज्म और साम्राज्यवाद का बोलबाला है, तिसपर भी मानवताकी अंतर्वेदना और मार्मिक पीड़ाकी कराह सुननेवालोंको सुनाई पड़ ही जाती है। प्रगतिशील शक्तियां आज दबा दी गई हैं लेकिन समय आते ही वे उभरेंगी और इतिहासका बदला चुकायेंगी। यदि हम अपने राष्ट्रीय जीवनको पुष्ट करना चाहते हैं, तो हमारी जगह इन्हीं शक्तियोंके साथ है। माना, आज ये शक्तियां क्षीण और दुर्बल हैं, लेकिन यह युगधर्मके अनुकूल हैं और इन्हींका भविष्य उज्ज्वल है। आजकी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितिका अध्ययन करके हमको निश्चय कर लेना है कि हमारे सच्चे सहयोगी कौन हैं?

'लड़खड़ाती दुनिया'में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितिका अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इस संग्रहसे परिस्थितिको समझने और अपना मार्ग स्थिर करनेमें काफी मदद मिलती है। पं. जवाहरलाल नेहरू अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिके एक बड़े विद्वान् हैं। हमारे राजनीतिज्ञोंमें इस विषयमें उनका मुकाबिला कोई नहीं कर सकता। उन्होंने इस विषयका केवल अच्छा अध्ययन ही नहीं किया है, बल्कि विभिन्न देशोंके प्रगतिशील व्यक्तियों और संस्थाओंके निकट संपर्कमें भी वह आये हैं। भारतके लिए अंतर्राष्ट्रीय सहानुभूति हासिल करने में उनका खासा हाथ है। हिंदुस्तानके सवालोंपर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे विचार करना उन्हींसे हमने सीखा है, हमारे अन्य नेता इस ओर सदा उदासीन रहे और अंतर्राष्ट्रीय बातोंकी चर्चा करनेके लिए जवाहरलालजीका मजाक उड़ाते रहे। जवाहरलालजीने ही सबसे पहले हमको आनेवाले युद्धके खतरेसे आगाह किया था। उस समय बहुत लोग यह समझते थे कि जवाहरलालजीका यह एक खब्त है। अबीसीनिया, स्पेन और चीनके साथ जब उन्होंने सहानुभूति दिखाई और भारतकी सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए खतरोंकी परवाह न कर स्पेन और चीनकी यात्रा की, तब भी लोग मजाक करनेसे बाज न रहे। यह कहा गया कि जिसके साथ जवाहरलालजी सहानुभूति दिखाते हैं वही हार जाता है। यह भी तोहमत लगाई गई कि वह यथार्थवादी नहीं हैं, महज हवामें उड़ते हैं। जीतती हुई ताकतका साथ तो सब देते हैं। संकटके आदर्श और सिद्धांतको भुलाकर प्रायः लोग अवसरवादिताकी

शरण लेते हैं, पर बिरले ही ऐसे धीरचित्त होते हैं, जो ऐसे कठिन समयमें भी आदर्शोंको झुठलाते नहीं और अपने मार्गसे विचलित नहीं होते। संसार उन्हींकी पूजा करता है, वही मानवताके सच्चे आधार हैं। लेकिन अगर हम यथार्थवादकी दृष्टिसे भी देखें तो भी हमारी रक्षा इसीमें है कि हम उन्हीं ताकतोंका साथ दें, जो आज भले ही कमजोर हों, पर भविष्य जिनके साथ है।

हमारा मुल्क एक अर्सेसे साम्राज्यवादका शिकार रहा है। हमारे देशके करोड़ों आदमी बेकार और भूखे हैं। यदि हमको आजाद होना है और देशकी गरीबीको मिटाना है, तो यह काम उन ताकतोंकी मददसे नहीं हो सकता जो दुनियाका शोषण करती हैं और सबको गुलाम बनाती फिरती हैं। उदाहरणके लिए हिंदुस्तान जापानकी मददसे आजाद नहीं हो सकता। जापान एक फौजी और फासिस्ट ताकत है। वह पूर्वी एशियामें अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। यदि यह उद्देश्य सफल हुआ, तो हिंदुस्तान भी एक दिन उसका शिकार बनेगा। आज अगर चीन जापानके आक्रमणको न रोके और जापानसे सुलह करले तो पूर्वी एशियाके लिए एक बड़ा संकट खड़ा हो जाये। क्या हम नहीं देखते कि चीन जापानका मुकाबिला कर एक ऐसा मजबूत बांध तैयार किये हुए है जो जापानी फैसिज्मको एशियामें बढ़नेसे रोकता है? चीन इस तरह भारत तथा पूर्वी एशियाके अन्य देशोंके लिए भी लड़ रहा है, इस कारण भी हमारा कर्तव्य है कि चीनसे हम अपना नाता जोड़ें। जवाहरलालजी चीनको भारतके बहुत निकट ले आये हैं। योरपकी घटनाओंका प्रभाव हमपर पड़ेगा ही, पर उससे भी कहीं अधिक हमारे पड़ोसी राष्ट्रोंकी हलचलका प्रभाव हमपर पड़नेवाला है। यदि हम अपने पड़ोसी राष्ट्रोंके साथ सद्भाव और मैत्री कायम कर सकें तो, हम अपने चारों ओर ऐसी अभेद्य दीवारें खड़ी कर लेंगे जो हिमालयकी तरह संतरीका काम देंगी। जहां योरपके राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्रके भरोसे अपनी रक्षामें तत्पर हैं, वहां निःशस्त्र भारत अपनी सहृदयता और आदर्शवादिताके भरोसे अपनी और अपने पड़ोसियोंकी मिल-जुलकर रक्षा करेगा। आनेवाले दिन हम सबके लिए बड़े संकटके हैं; केवल परस्पर सहयोग और सद्भाव द्वारा हम निस्तार पा सकेंगे। चीनकी मैत्री हमारे बड़े कामकी चीज होगी। क्या ही अच्छा होता यदि जवाहरलाल-जी स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्रोंमें भी एक चक्कर लगाकर इस शुभ कामको पूरा कर देते,

उनके कामका महत्त्व आनेवाले युगमें ही ठीक-ठीक आंका जा सकेगा।

स्पेनकी यात्रा करके जनक्रांतिका जो अनुभव उन्होंने प्राप्त किया है, वह वक्त आनेपर हमारे काम आयेगा। बार्सीलोना और कोटोलोनियाके निहत्थे और रणशिक्षासे वंचित मजदूरोंने अपने प्राणोंको होमकर दुश्मनकी मशीनगनोंको बेकार करके जिस असाधारण शौर्यका परिचय दिया था, वह पद-दलित जनताके लिए एक गर्वकी वस्तु है। क्या यह उन आलोचकोंको मुंहतोड़ जवाब नहीं है, जो बराबर हमको याद दिलाया करते हैं कि अपढ़ जनतासे कुछ हो नहीं सकता?

जवाहरलालजीके इन लेखोंसे पाठकोंको वस्तुस्थितिका प्रामाणिक ज्ञान ही न होगा, बल्कि वे भविष्यका मार्ग भी स्थिर कर सकेंगे। उनकी अधिकार-युक्त वाणी रहस्यका उद्‌घाटन करके पथ-प्रदर्शकका काम करती है।

फैजाबाद,
२९-१२-४०

—नरेंद्रदेव

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१.	शांति और साम्राज्य	१
२.	नगरोंपर बमबारी	११
३.	चेको-स्लोवाकियाके साथ विश्वासघात	१७
४.	म्यूनिक-संकट—१९३८	२१
५.	लंदन असमंजसमें	२५
६.	हिंदुस्तान और इंग्लैंड	३१
७.	रूसकी खुशामद	३५
८.	इंग्लैंडकी दुविधा	३९
९.	युद्ध और शांतिके ध्येय	५०
१०.	अंग्रेज जनताके प्रति	६५
११.	ब्रिटेन किसलिए लड़ रहा है ?	६८
१२.	बीस बरस	७२
१३.	१९१९-३९	७६
१४.	"आजादी खतरेमें है !"	८०
१५.	रूस और फ़िनलैंड	८४
१६.	अब रूसका क्या होगा ?	८८
१७.	लड़खड़ाती दुनिया	९४
१८.	हमारा क्या होगा ?	९८
१९.	एशियाई संघ	१०२
२०.	चीन और भारत	१०४

चीन और स्पेन

विषय	पृष्ठ
१. नया चीन	१०६
२. चीनमें	१०९
३. चीन-यात्राके संस्मरण	११२
४. स्पेनके प्रजातंत्रको श्रद्धांजलि	१३५
५. स्पेनमें	१३७

लड़खड़ाती दुनिया

: १ :

शांति और साम्राज्य

यह परिषद् 'इंडिया लीग' और 'लंदन फेडरेशन ऑव पीस कौंसिल्स' संस्थाओंकी ओरसे शांति और साम्राज्यकी समस्याओंपर विचार करनेके लिए बुलाई गई है। शांति और साम्राज्य!—मूलमें ही एक दूसरेके विरोधी शब्दों और विचारोंका यह अनोखा मेल है, लेकिन मेरी समझमें उनको इस तरीकेसे एक साथ लाने और परिषद्की आयोजना करनेकी सूझ मजेकी रही। मैं समझता हूं जबतक हम अपने साम्राज्यवादी विचारोंको दूर न कर देंगे, तबतक हम इस दुनियामें 'शांति' नही पा सकेंगे। इसलिए शांतिकी समस्याका सार साम्राज्यकी समस्या ही है।

जबतक साम्राज्य फूलते-फलते रहते हैं, तबतक ऐसे समय आ सकते हैं जब कि राष्ट्रोंके बीच खुली लड़ाई न हो रही हो, लेकिन तब भी शांति नहीं होती, क्योंकि तब भी संघर्ष और युद्धकी तैयारियां चलती रहती हैं। साम्राज्यवादी विरोधी राष्ट्रोंमें, शासन करनेवाली सत्ता और शासित जनतामें और वर्गोंमें संघर्ष तो रहता ही है क्योंकि साम्राज्यवादी राष्ट्रका आधार ही शासित जनताका दमन और शोषण है; इसलिए लाजमी है कि उसका विरोध भी होगा और उस शासनको फेंक देनेकी कोशिशें की जायेंगी। इस बुनियादपर कोई शांति कायम नही की जा सकती।

आप और मैं फासिस्ट हमलोंके इन दिनोंमें फासिस्ट आतंकको रोकनेके लिए अक्सर कुछ-न-कुछ करते रहते हैं, लेकिन हमेशा साम्राज्यवादी विचारोंको भी रोकनेके लिए ऐसा नहीं करते। बहुतसे लोग दोनोंमें फर्क ढूंढ़नेकी कोशिश किया करते हैं। वे साम्राज्यवादी विचारको बहुत अच्छा तो नहीं समझते;

लेकिन समझते हैं कि शायद हम एक अर्सेतक उसे निभा सकें, हालांकि फासिज्मसे हमारा काम चलना मुमकिन नहीं है। मैं चाहता हूं कि आप इस परिषद्में इसपर विचार करेंगे और इस बातका पता लगानेकी कोशिश करेंगे कि आखिर हम किस हदतक इन दोनोंमें फर्क समझें ?

हो सकता है कि चूंकि मैं ऐसे देशसे आया हूं जो साम्राज्यवादके अधीन है, इसलिए साम्राज्यके इस सवालको बहुत ज्यादा महत्त्व दे रहा हूं। लेकिन इस बातको जाने दीजिए तो भी मुझे ऐसा लगता है कि आप फासिज्म और 'साम्राज्यवाद' नामकी दोनों धारणाओंमें फर्क नहीं पा सकते और फासिज्म असलमें साम्राज्यवादका ही तीव्र रूप है। इसलिए अगर आप फासिज्मसे लड़ना चाहते हैं तो आपका साम्राज्यवादसे लड़ना लाजमी है।

उस वक्त जबकि फासिस्ट प्रतिक्रियावादी फौजें लड़नेके लिए खड़ी होकर दुनियाको आतंकित करती हों, और दूसरी साम्राज्यवादी सरकारें अक्सर उनको बढ़ावा और मदद देती हों, तब हमें बड़ी विकट और जटिल परिस्थितिका सामना करना पड़ता है। आज, जबकि दुनियाकी प्रतिक्रियावादी शक्तियां इकट्ठी होकर संगठित हो रही हैं, उनका सामना करने और उन्हें रोकनेके लिए हमें भी अपने तुच्छ भेद-भावोंको भूलकर संगठित हो जाना होगा।

हम देखते हैं कि साम्राज्यवादी राष्ट्रोंमें और दूसरे देशोंमें फासिज्म फैल रहा है और उसके पक्षमें सब तरहका प्रचार भी चल रहा है। शायद आप सब जानते होंगे कि आज दक्षिणी अमेरिकामें फासिस्ट राष्ट्रोंकी ओरसे बड़े जोरोंका प्रचार हो रहा है। हम यह भी देख रहे हैं कि साम्राज्यवादी देश धीरे-धीरे करके फासिज्मकी ओर बढ़ते जा रहे हैं, गो कभी-कभी वे अपने यहां प्रजातंत्रकी बातें कर लिया करते हैं। वे तो यह करेंगे ही क्योंकि साम्राज्यवाद ही उनकी नींव और पार्श्वभूमि है; इस कारण आखिरकार वे फासिज्मको रोक नहीं सकते, हां, वे उस पार्श्वभूमिको ही छोड़ दें तो बात दूसरी है।

प्रतिक्रियावादी शक्तियोंका आज एक प्रकारका संगठन हो रहा है। हम उसका मुकाबिला कैसे करें ? प्रतिक्रांतिके विरुद्ध प्रगतिकी शक्तियां जुटाकर। और अगर उन्ही लोगोंकी, जो कि प्रगतिशील शक्तियोंके प्रतिनिधि हैं, बिखरनेकी और छोटी-छोटी बातोंपर बहुत ज्यादा बहस करके बड़े प्रश्नोंको खतरेमें डालनेकी

आदत हो जाये तो वे फासिस्ट और साम्राज्यवादी आतंकको रोकनेमें कभी सफल नहीं हो सकेंगे। किसी भी वक्त यह आपके सोचने-विचारनेकी बात होगी कि हमें संगठित रहना है। लेकिन हमारे सामने जो तरह-तरहकी कठिनाइयां आ गई हैं, उनके कारण तो यह बहुत ही जरूरी बात हो गई है।

अब तो एक संयुक्त मोर्चा ही—और राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा नहीं, बल्कि विश्वव्यापी संयुक्त मोर्चा ही—हमारे मकसदोंको पूरा कर सकता है। और जिन संकटोंमेंसे हम निकल चुके हैं, आज हमें सबसे अधिक आशा दिलानेवाले लक्षण वे ही हैं जो संसार भरकी प्रगति और शांतिकी शक्तियोंके संगठनकी ओर इशारा करते हैं।

आपको याद होगा कि चीनके अंदरूनी संघर्षने ही उस राष्ट्रको कमजोर बना दिया था, लेकिन पिछले साल जब जापानका हमला हुआ तो हमने देखा कि जो लोग आपसमें बुरी तरह लड़ रहे थे और एक दूसरेको मिटा रहे थे, जिन्होंने एक-दूसरेके खिलाफ बहुत ज्यादा कटुता पैदा कर ली थी, वे ही इतने महान् हो गये कि उन्होने संकटको देखा और उससे लड़नेके लिए संगठित हुए। आज हम साल भरसे देखते आ रहे है कि चीनके संगठित लोग हमलेके खिलाफ लड़ रहे हैं। इसी तरह, आप देखेंगे कि हर एक देशमें एकता लानेके थोड़े या बहुत सफल प्रयत्न हो रहे हैं और संसार भरके भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंके ये संगठिन दल अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाना चाहते हैं।

यूरोप और पश्चिममें, जहां कि प्रगतिशील दलोंका इतिहास जरा लंबा है और भूमिका थोड़ी भिन्न है, आपको फायदे भी हैं और नुकसान भी हैं। मगर एशियामें, जहां ऐसे दल अभी बने ही हैं, यह प्रश्न अक्सर राष्ट्रीय प्रश्नसे छिपा रहता है और किसीके लिए अंतर्राष्ट्रीयताकी भाषामें इस प्रश्नको सोचना उतना आसान नहीं है क्योंकि हमें सबसे पहले राष्ट्रीय राजनीतिकी भावनाके अनुसार सोचना पड़ता है।

यह सब होते हुए भी, आधुनिक परिवर्तनोंने और खास तौरसे अबीसीनिया, स्पेन और चीनमें हुई घटनाओंने अब लोगोंको अंतर्राष्ट्रीयताकी भाषामें सोचनेको मजबूर कर दिया है। एशियाके इन कुछ देशोंमें हम बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ पाते हैं, कारण कि अपने संघर्षोंमें लगे रहनेपर भी, हम दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें

होनेवाले सामाजिक संघर्षोंपर अधिकाधिक सोचने लगे और अनुभव करने लगे कि उनका तमाम दुनियापर असर पड़ा है, इसलिए हमपर भी पड़ा है ।

अगर हम फासिस्टोंके आतंकको सफलतापूर्वक रोकना चाहते हैं तो हमको साम्राज्यवादका भी उतना ही विरोध करना चाहिए, नहीं तो हम कामयाब न होंगे । इंग्लैंड की विदेशी नीति इसी करुणाजनक असफलताका नमूना है, क्योंकि जबतक वह साम्राज्यवादकी बात सोचा करेगा तबतक न तो वह फासिस्ट हमलोंका मुकाबिला कर सकता है और न दुनियाकी प्रगतिशील शक्तियोंसे अपना संबंध जोड़ सकता है । और इस प्रकार असफल होकर वह उसी अपनी सल्तनतको नष्ट करनेमें मदद भी कर रहा है, जिसे वह कायम रखना चाहता है । हमारे सामने यह इस बातका जीता-जागता नमूना है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद और फासिज्मकी बुनियादमें गठजोड़ा है और साम्राज्यवाद परस्पर विरोधी बातें पैदा करता है ।

अगर हमारा यह विश्वास है——मैं मानता हूं हममेंसे अधिकांशका है——कि साम्राज्यवादका फासिज्मसे नाता है और दोनों-के-दोनों शांतिके दुश्मन हैं तो हमें दोनोंको मिटानेका प्रयत्न करना चाहिए और दोनोंमें फर्क ढूंढनेकी कोशिश छोड़ देनी चाहिए । इसलिए हमें खुद साम्राज्यवादको ही उखाड़नेकी कोशिश करनी है और दुनिया भरके पराधीन लोगोंके लिए पूर्ण स्वतंत्रता पानेमें जुट जाना है ।

हमसे अक्सर कहा जाता है कि साम्राज्यवादी धारणाके बदले हमें राष्ट्रोंके कॉमनवेल्थकी धारणा बनानी चाहिए । यह शब्द तो हर एकको अच्छा लगता है, क्योंकि हम सब चाहते हैं कि इस दुनियामें राष्ट्रोंका एक कॉमनवेल्थ बने । लेकिन अगर हम सोच लें कि साम्राज्य ही धीरे-धीरे करके कॉमनवेल्थकी शक्लमें बदल जायेगा और अर्थनीतिक तथा राजनीतिक दृष्टिसे उसका अपना ढांचा करीब-करीब वैसा ही बना रहे, तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हम अपने आपको बड़े भारी धोखेमें रख रहे हैं । ऐसा कोई सच्चा कॉमनवेल्थ हो ही नहीं सकता कि जो साम्राज्यसे पैदा हुआ हो । उसके जन्म देनेवाले तो दूसरे ही होंगे ।

ब्रिटिश कॉमनवेल्थमें बहुतेरे देश हैं जो करीब-करीब स्वतंत्र हैं । लेकिन हम यह न भूल जायें कि ब्रिटिश साम्राज्यमें एक विस्तृत भू-खंड और एक बड़ी भारी आबादी है जो बिलकुल पराधीन है और अगर यह सोचें कि वह पराधीन जनता धीरे-धीरे उस कॉमनवेल्थमें बराबरीकी साझेदार बननेवाली है तो आपको

बड़ी भारी मुश्किलें मालूम होंगी। आपको पता चलेगा कि यदि किसी तरह राजनीतिक उपायोंसे वह प्रक्रिया हो भी गई तो ऐसे कई अधिक बंधन रहेंगे जो एक स्वतंत्र कॉमनवेल्थसे मेल नहीं खाते और उनसे उन पराधीन लोगोंको कोई सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकेगी, यहांतक कि यदि वे अपनी आर्थिक व्यवस्था बदलना चाहेंगे तो उसमें रुकावट आयेगी और वे अपनी सामाजिक समस्याएं नहीं सुलझा पायेंगे।

मैं सोचता हूं, हममेंसे हरेक राष्ट्रोंके सच्चे कॉमनवेल्थके पक्षमें होगा। लेकिन हम उसे कुछ ही देशों और राष्ट्रोंतक सीमित कर देना क्यों चाहें? इसका मतलब यह हुआ कि आप एक वर्गका विरोध करनेके लिए दूसरा वर्ग बना रहे हैं। दूसरे शब्दोंमें आप साम्राज्यकी धारणापर नई रचना कर रहे हैं और एक साम्राज्यकी टक्कर दूसरे साम्राज्यसे होती है। इससे एक समूहके भीतर लड़ाई होनेका खतरा भले ही कम हो जाये, समूहोंके बीच लड़ाईका खतरा तो बढ़ ही जायेगा।

इसलिए अगर हम किसी सच्चे कॉमनवेल्थकी बात सोच रहे हैं तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि हम साम्राज्यवादके विचारोंको छोड़ दें और नये आधारपर नई रचना करें—वह आधार हो सब लोगोंके लिए पूरी स्वतंत्रताका। ऐसी व्यवस्थाके लिए हरेक राष्ट्रको दूसरेके साथ-साथ प्रभुत्व (सत्ता) के कुछ चिह्न छोड़ने होंगे। इसी बुनियादपर हम सामूहिक सुरक्षितता और शांति स्थापित कर सकते हैं।

आज एशियामें, अफ्रीकामें और दूसरी जगह ऐसी एक विशाल जनसंख्या है, जो पराधीन है और जबतक हम उस पराधीनताको दूर न कर दें और साम्राज्यवादी विचार नष्ट न हो जाये, तबतक हमें मालूम होगा कि यही शांतिकी बगलमें चुभनेवाला एक कांटा है।

अफ्रीका और दूसरे देशोंमें मैंडेट (शासनादेश) देनेकी प्रथा, मेरी समझमें, बड़ी खतरनाक बात है; क्योंकि वह एक बुरी चीजको अच्छे नाममें छिपाकर रखती है। संक्षेपमें वह दूसरे भेषमें साम्राज्यवादी प्रथा ही है। एक शख्सको दूसरेका ट्रस्टी बनाना और उसे इससे नफा उठाने देना हमेशा खतरनाक है। यह हो सकता है कि कुछ देशोंमें जहां आप पूरी आजादी कायम करना चाहते हैं, वहां उसी प्रकारकी सरकार उतनी जल्दी कायम न हो सके जितनी जल्दी दूसरी जगह

हो सकती हो, लेकिन चलना तो आपको यही आधार लेकर है कि हरेक पराधीन जनताको पूर्ण स्वतंत्रता मिले; और फिर अगर जरूरत हो तो व्यावहारिक रूपसे आगे बढ़ा जाये। हालांकि व्यक्तिगत रूपसे मुझे मदद पहुंचानेके इन वायदोंमे भरोसा नही है, मगर कभी-कभी वे जरूरी हो सकते है। लेकिन मैं नहीं समझता कि आप इस शासनादेश-प्रथामें से बाहर निकलनेका रास्ता पा सकते है; क्योंकि वह उसी बुनियादपर कायम है जिसपर कि खुद साम्राज्यवाद कायम है।•

मैंने आपको बताया कि इस संकटकी वजहसे आज भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंकी जनतामें संगठन और अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे और बंधुत्वकी भावना बढ़ रही है। जो राष्ट्र मित्र बनकर रहना चाहते हैं उन्हें निकाल देनेसे अंतर्राष्ट्रीय बंधुभावकी प्रगति जोखिममें पड़ जायेगी। हिंदुस्तान के निवासी पिछले कई युगोंसे चीन-निवासियोंके साथ अत्यंत मित्रताका व्यवहार करते आ रहे है। उनमें कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। हमारे जिन मित्रने चीनके निवासियोंकी ओर से बधाइयां प्रकट की है, मै उनकी भूलको दुरुस्त करनेकी गुस्ताखी कर रहा हूं। उन्होंने कहा कि चीनी यात्री हिंदुस्तानमें बारहवी सदीमें आये। वे एक हजार वर्ष पिछड़ गये हैं। वे उससे भी एक हजार वर्ष पहले हिंदुस्तानमें आये थे और उनकी यात्राओंके ग्रंथोंमें इसका वर्णन है। यों तो दोनोंका संपर्क बहुत पुराना है, लेकिन इसके अलावा भी हालके इस विश्व और चीनके संकटने हमें एक-दूसरेके बहुत अधिक निकट ला दिया है। अब तो हमें संगठित होकर रहना चाहिए, संसारकी शांति और प्रगतिके लिए आपसमें सहयोग रखना चाहिए। अगर हम चाहें तो ऐसा क्यों नहीं कर सकते ?

तो, अगर आप आजके संसारपर निगाह डालें तो आपको ऐसे देश मिलेगे जो किसी-न-किसी कारणसे एक विश्व-व्यवस्थामें शामिल नहीं होंगे, लेकिन यह तो कोई ऐसा कारण नहीं कि हम ऐसी विश्व-व्यवस्था बनानेके लिए जुट न पड़ें और उसे कुछ खास-खास राष्ट्रोंतक ही सीमित कर लें।

इसलिए, राष्ट्रोंकी एक मर्यादित कॉमनवेल्थकी धारणाका विरोध होना चाहिए और अधिक व्यापक कॉमनवेल्थकी धारणा बननी चाहिए। सिर्फ तभी हम सामूहिक सुरक्षितताका अपना लक्ष्य सचमुच पा सकते हैं। हम सामूहिक सुरक्षितता चाहते हैं, लेकिन मैं अपना मतलब बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूं

मेरा मतलब यह नहीं है कि जो श्री नेविल चेंबरलेनने उसके साथ जोड़ रखा है। सामूहिक सुरक्षितताकी मेरी धारणा, शुरूमें उस परिस्थितिको वैसा ही बनाये रखना नहीं है कि जो खुद अन्यायपर कायम है। इस तरह सुरक्षितता नहीं हो सकती। इसका जरूरी मतलब यह हुआ कि साम्राज्यवाद और फासिज्मको हट जाना होगा।

आज दुनिया बड़ी विकट हालतमें है। हम देखते हैं कि कई लोग दीखनेमें तो बुद्धिमान हैं, लेकिन वे एकदूसरेकी विरोधी नीतिपर चल रहे हैं और दुनियाके गड़बड़झालेको और भी बढ़ाते चले जा रहे हैं। इस देशमें, ब्रिटेनमें, हमने देखा कि विदेशी नीतिने एक असाधारण रूप ले लिया है। आपमेंसे अधिकतर इसके खिलाफ हैं। फिर भी, यह बड़ी अजीब बात है कि ऐसी बात हो, और बाहर रहनेवालेके लिए तो इसको समझना बहुत ही ज्यादा मुश्किल है। इसे किसी भी दृष्टिकोणसे समझना मुश्किल है। आज हम ब्रिटेनमें ऐसी सरकार देखते हैं जो गालिबन् ब्रिटिश साम्राज्यको बनाये रखना चाहती है मगर काम ऐसे-ऐसे करती है कि जो साम्राज्यके हितोंके खिलाफ जाते हैं।

मेरी दिलचस्पी उस साम्राज्यको बनाये रखनेमें नहीं है बल्कि उस साम्राज्यका एक मुनासिब ढंगसे खात्मा करनेमें है। आम जनता शायद इस नीतिको पसंद करे क्योंकि वह साम्राज्यवाद और फासिज्मके बारेमें अभी उलझनमें है। वह इस बातका जाहिर सबूत है कि जब साम्राज्यवाद एक कोनेमें घुसा दिया जाता है तो वह फासिज्मके साथ जा खड़ा होता है। दोनोंको आप अलग नहीं रख सकते। आज जबकि बड़े-बड़े मसले दुनियाके सामने हैं, वे साम्राज्यवादी लोग जिनमें पहलेसे अधिक वर्ग-चेतना आई है, आइंदाके अपने साम्राज्यवादी हितोंकी रक्षा और स्थायित्वको भी जोखिममें डालकर अपने वर्गके हितोंको बनाये रखना चाहते हैं।

इसलिए, हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि हमें जो भी नीति बनानी हो, उसे सही नींवपर बनाना और असली बुराईको उखाड़ फेंकना है। इस बातको हम समझ रहे हैं कि हमें मध्ययूरोप, चेकोस्लोवाकिया, स्पेन और चीनकी और दूसरी बहुतेरी समस्याओंको अब एकसाथ लेकर उन्हें एक संपूर्ण वस्तु मानकर विचार करना है।

मैं आपको एक समस्याका ध्यान और दिला दूं कि जिसपर अक्सर हम इस सिलसिलेमें कुछ भी नहीं सोचते, लेकिन जो इन दिनों हमारे सामने बहुत ज्यादा आ रही है। वह समस्या है फिलस्तीनकी। यह एक निराली समस्या है और हम इसे अरबों और यहूदियोंके झगड़ेके रूपमें ही बहुत ज्यादा देखनेके आदी हो गये हैं। मैं शुरूमें आपको यह याद दिलादूं कि ठीक दो हजार बरसोंसे फिलस्तीनमें अरबों और यहूदियोंमें कभी कोई सच्चा झगड़ा नहीं हुआ। यह समस्या तो हाल हीमें लड़ाईके जमानेसे उठ खड़ी हुई है। बुनियादी तौरपर यह समस्या फिलस्तीनमें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी पैदा की हुई है और जबतक आप इसको ध्यानमें न रखेंगे तबतक आप इसे हल नहीं कर पायेंगे और न ब्रिटिश साम्राज्य ही इसे हल कर सकेगा। और यह सच है कि उन सरगर्मियोंके कारण जो इस समस्यासे पैदा हो गई है इस समय यह समस्या कुछ कठिन भी हो गई है।

तो फिलस्तीनकी समस्या असलमें है क्या? वहां यहूदी लोग हैं और हममेंसे हरेककी यहूदियोंसे अत्यंत सहानुभूति है, खासकर आज जबकि वे सताये जा रहे हैं और यूरोपके कई देशोंसे निकाले जा रहे हैं। यह ठीक है कि यहूदियोंने कई तरहकी गलतियां की हैं, लेकिन जबसे वे फिलस्तीनमें आये हैं तबसे उन्होंने देशकी बड़ी सेवा की है। लेकिन आपको याद रखना चाहिए कि फिलस्तीन खासकर अरब लोगोंका देश है और यह आंदोलन बुनियादी तौरपर अरबोंका स्वतंत्रता पानेके लिए राष्ट्रीय संघर्ष है। यह अरब-यहूदी समस्या नहीं है, यह तो साररूपमें स्वतंत्रता-प्राप्तिका संघर्ष है। यह मजहबी मसला भी नहीं है। शायद आपको मालूम होगा कि अरबके मुसलमान और ईसाई दोनों इस लड़ाईमें बिल्कुल एक हैं। शायद आपको यह भी मालूम होगा कि उन पुराने यहूदियोंने, जो लड़ाईके पहले फिलस्तीनमें रहते थे, इस लड़ाईमें बहुत कम हिस्सा लिया है—क्योंकि उनका अपने पड़ोसी अरबसे निकटका संबंध रहा है। यह तो बिल्कुल समझमें आनेवाली बात है कि अरब लोग अपने देशसे वंचित किये जानेकी कोशिशका विरोध क्यों न करें? कहींकी भी जनता यही करती। आयरलैंड, स्काटलैंड या इंग्लैडके निवासी भी यही करते। यह सवाल अपने निजी देशसे न निकाले जाने और स्वाधीनता और स्वतंत्रता चाहनेका सवाल है।

इसलिए अरब लोगोंने यह आंदोलन अपने देशकी आजादीके लिए उठाया,

मगर ब्रिटिश साम्राज्यवादने ऐसा हथकंडा फेरा कि यह झगड़ा अरबों और यहूदियोंका झगड़ा बन गया और फिर ब्रिटिश सरकार सरपंचका काम करने आ बैठी ।

फिलस्तीनकी समस्या केवल एक ही तरह सुलझ सकती है और वह यों कि अरब और यहूदी लोग ब्रिटिश साम्राज्यवादको बिल्कुल न पूछें और आपसमें समझौता कर लें । मेरा अपना खयाल यह है कि ऐसे बहुतेरे अरब और यहूदी हैं जो इस तरहसे उस मसलेको सुलझाना चाहते हैं । बदनसीबीसे हालकी घटनाओंसे ऐसी मुश्किलें पैदा हो गई हैं जिनसे साम्राज्यवादी पुर्जोंने खिलवाड़ किया है और इसलिए अरबों-यहूदियोंका मेल होनेमें थोड़ा अर्सा लगेगा, लेकिन हमारा यह काम और फर्ज होना चाहिए कि इस दृष्टिबिंदुपर जोर डालते हुए इस बातको स्पष्ट करें कि :—

(१) आप अरब लोगोंको कुचलनेकी कोशिश करके इस समस्याको नहीं सुलझा सकते; और—

(२) यह झगड़ा ब्रिटिश साम्राज्यवादसे नहीं बल्कि दोनों खास पक्षोंके मिलकर कुछ शर्तें कबूल करके समझौता करनेसे सुलझेगा ।

मैं उन बहुतसे देशोंका जिक्र करना नहीं चाहता कि जो पराधीन हैं या जो आज दूसरी मुश्किलोंमें मुब्तिला हैं, क्योंकि आज तो करीब-करीब हरेक देशके साथ ऐसा ही है । यह हो सकता है कि हम बादमें उनकी समस्याओंपर विचार करें, लेकिन मेरा यह पक्का खयाल है कि हम अफ्रीकाके देशोंको न भूलें, क्योंकि शायद दुनियाके किसी देशने इतनी तकलीफें नहीं उठाई और पिछले दिनों किसीका इतना शोषण नहीं हुआ, जितना कि अफ्रीकाके लोगोंका ।

हो सकता है कि इस शोषण-क्रियामें कुछ हदतक मेरे अपने ही देशके निवासियोंने हिस्सा लिया हो । इसके लिए मुझे दुःख है । जहांतक हम हिंदुस्तानवालोंका प्रश्न है, हम जो नीति रखना चाहते हैं वह यह है : हम नहीं चाहते कि हिंदुस्तानसे कोई किसी देशमें जाये और वहां कोई ऐसा काम करे जो उस देशके निवासियोंकी मर्जीके खिलाफ हो, फिर चाहे वह देश बर्मा या पूर्वी अफ्रीका या दुनियाका कोई भी हिस्सा क्यों न हो । मैं समझता हूं कि अफ्रीकाके भारतीयोंने बहुतसे अच्छे-अच्छे काम किये हैं, बहुतोंने बहुत ज्यादा नफा उठाया है । मेरा

खयाल है कि अफ्रीकामें या दूसरी जगह रहनेवाले भारतीय उस समाजके उपयोगी सदस्य बन सकते हैं। लेकिन केवल इसी आधारपर हम उनके वहां रहनेका स्वागत करें कि वे अफ्रीकावासियोंके हितोंको हमेशा पहले स्थान दें।

मेरा खयाल है कि आप इस बातको समझ रहे होंगे कि अगर हिंदुस्तान स्वतंत्र हो जाये तो वह दुनिया भरमें साम्राज्यकी धारणामें बड़ा भारी फर्क डाल देगा और उससे सबके सब पराधीन लोगोंको फायदा पहुंचेगा।

हम भारतका, चीनका और दूसरे देशोंका तो खयाल करते हैं मगर अफ्रीकाको अक्सर भूल ही जाया करते हैं, और हिंदुस्तानके लोग चाहते हैं कि आप उनका भी ध्यान रखें। आखिर, हिंदुस्तानके लोग भले ही तमाम प्रगतिशील लोगोंकी ओरसे मिलनेवाली मदद और हमदर्दीका स्वागत करें लेकिन, आज शायद उनमें इतनी ताकत है कि अपनी लड़ाई आप लड़ लें—जबकि यह बात अफ्रीकाके कुछ लोगोंके बारेमें सच न हो। इसलिए अफ्रीकाके लोग हमारी ओरसे खास खयाल किये जानेके मुस्तहक हैं।

आपमेंसे अधिकांश शायद मेरे इन विचारोंसे सहमत होंगे। इस हॉल (भवन) के बाहर बहुतेरे लोग उससे शायद सहमत न भी हों। बहुतसे लोग यह भी कह सकते हैं कि ये खयाल आदर्शवादी हैं और आजकी दुनियासे उनका कोई सरोकार नहीं है। मैं समझता हूं कि इससे ज्यादा बेवकूफी का खयाल शायद ही कोई हो। इसी रास्तेपर चलकर हम आजकी अपनी समस्याएं सुलझा सकते हैं और अगर आपका यह खयाल हो कि हम इन बुनियादी मसलोंको उठाये बिना उन्हें हल कर सकते हैं तो आप बड़ी भारी गलती कर रहे हैं।

इन समस्याओंको देरसे हाथमें लेनेका आजका एक छोटा-सा नमूना भी है। वह नमूना है स्पेनिश मोरक्कोमें 'मूर' लोगोंका। उनकी समस्याको हाथमें लेनेमें कुछ देर हुई और झट स्पेनकी फासिस्ट टुकड़ीने उस मौकेका फायदा उठाया; तरह-तरहके झूठे वायदे किये और उन्हें उन्हीं लोगोंपर हमला करनेके लिए अपनी तरफ भर्ती कर लिया जो उन्हें आजादी दे सकते थे और इस तरह बेचारे बदनसीब मूर लोगोंको धोखा दिया गया। अगर इस समस्याका उचित रीतिसे मुकाबला नहीं किया गया तो इसी तरहकी बातें बार-बार होती रहेंगी।

किसी पराधीन देशसे जिसके अपने लोग ही खुद पराधीन बने हुए हैं, हम यह

आशा शायद ही कर सकें कि वह दूसरोंकी आजादीमें उत्साह दिखा सकेगा।

इसीलिए, हिंदुस्तानमें, हमने इसे अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है और कांग्रेसने घोषणा कर दी है कि वह साम्राज्यवादी युद्धमें कोई हिस्सा नहीं लेगी। जब-तक हिंदुस्तान पराधीन है, तबतक उससे यह उम्मीद करना गलत है कि वह एक ऐसे उद्देश्यके लिए कि जो किसी साम्राज्यको मजबूत करनेके पक्षमें हो, अपने जन और साधन दे सके।

स्थितिको सम्हालनेका सही तरीका तो यह है कि साम्राज्यवादकी जड़ उखाड़ी जाये, पराधीन लोगोंको पूरी आजादी दे दी जाये और फिर दोस्ताना ढंगसे उनके पास जाकर उनसे शर्तोंके साथ समझौता किया जाये। अगर उस तरीकेसे उनके पास पहुंचे तो वे मित्रता दिखायेंगे, नही तो यह होगा कि लगातार दुश्मनी बनी रहेगी, मुश्किलें और झगड़े चलते रहेंगे और जब संकट पैदा होगा और खतरा आ जायेगा, तो तरह-तरहकी उलझनें उठ खड़ी होंगी, और कह नही सकते कि क्या होगा? इसीलिए मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप यह याद रखें और समझें कि हम आज दूरके आदर्शवादी हलोंको नही बल्कि मौजूदा जमानेकी समस्याओंको हाथमें ले रहे है और अगर हम उनपर ध्यान नहीं देंगे और उनसे कतरा जायेंगे तो इसमे खतरा है।*

: २ :

नगरोंपर बमबारी

आजकी इस बड़ी सभाको मुझे हिंदुस्तानकी जनताका प्रतिनिधित्व करने-वाली भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेसकी ओरसे शांति-स्थापनाके कार्यमें पूरी सहायता

*** १५, १६ जुलाई १९३८को लंदनमें शांति और साम्राज्यके प्रश्नपर 'इंडिया लीग' और 'लंदन फेडरेशन ऑव पीस कौंसिलस'की ओरसे हुई परिषद्-के अध्यक्ष-पदसे दिया हुआ भाषण।**

देनेका आश्वासन और बधाइयां देनी है। मैं राजाओं, रानियों और राजकुमारोंकी ओरसे नहीं बल्कि अपने करोड़ों देशवासियोंकी ओरसे बोल रहा हूं। हमने शांतिके इस कार्यसे अपना संबंध बड़ी खुशीके साथ इसलिए जोड़ा है कि यह समस्या अत्यंत आवश्यक है। और इसलिए भी कि किसी भी दशामें हमारा पिछला इतिहास और हमारी सभ्यता भी हमें यही करनेके लिए प्रेरित करती। कारण यह है कि पिछली कई शताब्दियोंसे हमारे महान् बंधु-राष्ट्र चीनकी तरह हिंदुस्तानकी भावना भी शांतिकी रही है। स्वतंत्रताके हमारे राष्ट्रीय संघर्षमें भी हमने इसीको अपना आदर्श समझकर शांतिमय उपायोंको अपनाया है। इसीलिए हम बड़ी खुशीके साथ शांतिके लिए प्रयत्न करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।"

कल लार्ड सैसिलने कहा था कि केवल युद्धको मिटा देनेसे ही अंतमें शांति मिल सकती है। इस कथनसे हम पूर्ण सहमत हैं। युद्धको मिटा देनेके लिए हमें युद्धके कारणों और जड़को मिटाना होगा। गुजरे जमानेमें चूंकि हमने इस समस्यापर ऊपर-ऊपर ही विचार किया, इसकी जड़ोंको नहीं छुआ, इसलिए हम अबतक कोई भी कामकी चीज नहीं पा सके। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति लगातार बिगड़ती गई है और लाखोंके लिए मृत्यु और अकथनीय कष्ट लाई है। अगर हम लड़ाईकी उन जड़ोंकी ओरसे लापरवाह बने रहेंगे तो हम फिर असफल होंगे और शायद उस असफलतामें बरबाद भी हो जायेंगे।

"आज हम देखते हैं कि फासिस्ट हमले दुनियाको युद्धकी तरफ खींचे ले जा रहे हैं, और हम उसकी निंदा करते हैं, उसका मुकाबला करना चाहते हैं तो ठीक ही करते हैं। हालांकि फासिज्म पश्चिममें हाल हीमें पैदा हुआ है मगर हम उसे अर्सेसे एक दूसरे भेष और दूसरे नाम——साम्राज्यवाद——से जानते-पहचानते हैं। गुजरे जमानेमें पीढ़ियोंतक उपनिवेश-देशोंने साम्राज्यवादके नीचे कष्ट झेले हैं और अब भी झेल रहे हैं। यही साम्राज्य बनानेका खयाल जो साम्राज्यवाद या फासिज्मके रूपमें काम कर रहा है, लड़ाईका जोरदार कारण है, और जबतक वह नहीं मिट जाता, तबतक सच्ची और स्थायी शांति नहीं हो सकती। एक पराधीन देशके लिए कभी शांति है ही नहीं क्योंकि शांति तो स्वतंत्रताके साथ ही आ सकती है। इसलिए साम्राज्योंको मिटना चाहिए, उनका जमाना बीत चुका। हमें न सम्राटोंसे दिलचस्पी है न राजा-नवाबोंसे; हमें तो दिलचस्पी है

दुनिया भरके लोगोंसे, और भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) भारतकी जनता और उसकी स्वतंत्रताकी समर्थक है। आज भी शांतिमें सहायता पहुंचानेवालोंमें हिंदुस्तान एक शक्तिशाली अंग है और अगर विश्व-संकट पैदा हुआ तो वह स्थितिको बहुत बदल सकता है। इस मामलेमे उसकी न तो कोई उपेक्षा कर सकता है और न वह ऐसा चाहता है। स्वतंत्र भारत शांतिकी एक शक्तिशाली मीनार होगा, और हमें आशा है कि भारत जल्दी ही स्वतंत्र होगा।

लार्ड सैसिलने कट्टर राष्ट्रीयताके खतरे बतलाये है। मै यह कहना चाहता हूं कि मै उनसे पूर्ण सहमत हूं और यद्यपि मैं हिंदुस्तानकी राष्ट्रीयता और हिंदुस्तानकी आजादीका समर्थक हूं, फिर भी मै वह समर्थन सच्ची राष्ट्रीयताकी बुनियादपर कर रहा हूं। हम हिंदुस्तानवाले बड़ी खुशीसे ऐसी विश्व-व्यवस्थामें सहयोग देंगे और दूसरे लोगोंके साथ कुछ हदतक राष्ट्रीय प्रभुत्व तकके कुछ अंशको छोड़ देनेको राजी हो जायेंगे, बशर्ते कि सामूहिक सुरक्षितताकी कोई योजना हो। लेकिन ऐसा तो तभी हो सकता है जब राष्ट्र शांति और स्वतंत्रताके आधारपर संबद्ध हो जायें।

औपनिवेशिक देशोंकी पराधीनता रहे और साम्राज्यवाद चलता रहे, इस आधारपर तो कोई विश्व-व्यापी सुरक्षितता कायम नही रह सकती। आज शांति और युद्धकी तरह स्वतंत्रता भी अविभाज्य है। अगर आजके आक्रमण-कारियोंको रोकना है तो कलके आक्रमणकारियोसे भी हिसाब मागना होगा। चूंकि हमने पिछली बुराइयोंको ढकनेकी कोशिश की है—भले ही वह अब भी मिटी न हो—इसलिए आजकी इस नई बुराईको रोकनेकी हममें ताकत नहीं रही है।

बुराईको न रोकनेसे वह बढ़ती है, बुराईको बर्दाश्त कर लेनेसे वह तमाम क्रियाओंमें जहर फैला देती है। और चूंकि हमने अपनी पिछली और आजकी बुराइयोंको बर्दाश्त कर लिया है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय कामोंमें बुराई फैल गई है और कानून और न्याय वहांसे गायब हो गये हैं।

यहां हम खासतौरसे शहरों और कस्बोंकी आबादीपर आसमानसे बम-बारीके बारेमें चर्चा करनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। दिनोंदिन वातावरणमें भय और आतंक छा रहा है और हालांकि वर्तमानपर सोच-विचार करते हुए डर लगता है, मगर भविष्यके पेटमें तो ऐसी कुछ बुराई मालूम देती है कि जिसकी

कल्पना भी नहीं हो सकती। हाल हीमें मैं बार्सीलोना गया था और अपनी आंखों मैंने उसकी बरबाद इमारतोंको, मुंह फाड़े हुए दरारोंको और आसमानमें तेज दौड़ते हुए और अपने पीछे मौत और बरबादीके दृश्य लाते हुए बमोंको देखा। वह तस्वीर मेरे दिलपर खिच गई है और स्पेन और चीनमें होनेवाले रोजानाकी बमबारीकी खबर मेरे कलेजेमें तीरकी तरह चुभती है और उसकी भयंकरतासे मैं खिन्न हो उठता हूं। लेकिन उस तस्वीरके ऊपर एक दूसरी तस्वीर है—स्पेनके तेजस्वी लोगोंकी, जो इन भयानक आफतोंको झेलते हुए उनके मुकाबलेमें दो लंबे बरसों तक अनुपम वीरताके साथ लड़े हैं और जिन्होंने अपने खून और कष्टोंसे ऐसा इतिहास लिख दिया है जो आनेवाले युगोंको प्रेरणा देता रहेगा। प्रजातंत्रीय स्पेनके इन महान् स्त्री-पुरुषोंको मैं हिंदुस्तानियोंकी ओरसे आदरके साथ श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं और जिनके साथ हम इतिहासके प्रभातकालसे ही हजारों बंधनोंसे जुड़े हुए हैं, उन चीनवासियोंकी ओर भी हम साथीपनेकी भावनासे अपने हाथ बढ़ा रहे हैं। उनके खतरे हमारे खतरे हैं। उनकी तकलीफें हमें चोट पहुंचाती हैं और हमारे कैसे भी भले या बुरे दिन क्यों न आयें, हम उनके साथ रहेंगे।

स्पेन और चीनमें होनेवाली इन आसमानी बमबारियोंसे हमें गहरी व्यथा होती है। लेकिन तो भी बमबारी हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। यह बुराई तो पुरानी है और चूंकि इसे चलते रहनेसे रोका नहीं गया इसलिए आज इसने इतना विशाल और भयंकर रूप धारण कर लिया है। क्या आप भारतकी उत्तर-पश्चिमी सरहदपर हुई उन बमबारियोंको भूल गये, जो पिछले कई बरसोंसे अभी तक होती चली आ रही हैं? वहां मैड्रिड, बार्सीलोना, कैंटन, हैंको जैसे शहर अलबत्ता नहीं हैं, मगर हिंदुस्तानके सरहद्दी गांवोंमें भी इन्सान—आदमी, औरत और बच्चे ही रहते हैं और जब ऊपर आसमानसे बम गिरते हैं तो वे भी मरते या लंगड़े-लूले हो जाते हैं। क्या आपको याद है कि बमबारीका यह सवाल बहुत बरसों पहले राष्ट्रसंघमें उठाया गया था, और ब्रिटिश सरकारने सरहदपर उसे रोकनेसे इनकार कर दिया था? इसे पुलिसकी कार्रवाई कहा गया था और उन्होंने उसके जारी रहने देनेपर ही जोर दिया था। यह बुराई रोकी नहीं गई और अगर अब वह बढ़ गई है तो इसमें अचंभा ही क्या है? इसकी जवाबदेही किसके सिरपर है?

इंग्लैंडके प्रधानमंत्रीने हाल हीमें अपने इस अपवादको वापिस ले लेनेका आश्वासन दिया है, बशर्ते कि आसमानसे होनेवाली बमबारीको रोकनेपर सब राजी हो जायें। लेकिन यह आश्वासन खोखला है। जबतक कि वह कार्रवाई करके तमाम सरहद्दी बमबारियोंको रोक न दें, तबतक दूसरोंकी बमबारियोंके खिलाफ उज्र करनेके कोई मानी और वकत नहीं।

चिसेस्टरके डीनने कल इस परिषद्‌में यह मांग की थी कि ऊपरसे बमबारी करनेवाले देशोंके साथ कोई सुलह न की जाये। इस भावनाकी ठीक ही सराहना की गई। तब इंग्लैंडका क्या होगा जो अब भी हिंदुस्तानकी सरहदपर बम बरसानेके लिए जिम्मेदार है? क्या यह इस कारण है कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न पर निर्दोष रहकर नहीं सोच सकती और उसने अपनी विदेशी नीति ऐसी बना ली है कि उसपर भरोसा करना ठीक नहीं और अब वह उस राष्ट्रसे दोस्ती और समझौता करनेपर उतारू है जो स्पेनमें होनेवाली इस बमबारीके लिए सबसे अधिक जवाबदेह है? मैं तो इस बुराई करनेवाले और आक्रमणकारीकी पीठ ठोकनेकी नीतिसे हिंदुस्तानको बिलकुल अलग रखना चाहता हूं और कह देना चाहता हूं कि हिंदुस्तानके लोग इसमें कोई हिस्सा न लेंगे और जब कभी उन्हें मौका मिलेगा, तो उसका विरोध ही करेंगे।

स्पेनमें हम हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका भयंकर तमाशा देख चुके हैं, जिसने अच्छे-अच्छे शब्दों और प्रजातंत्रीय नीतिके बुर्केमें स्पेनके बागियों और हमलाइयोंको मदद पहुंचाई है और उस देशके लोगोंको अपनी हिफाजत करनेके साधन पानेसे रोका है। उन बागियोंतक माल पहुंचानेके लिए समुद्र और दूसरे सैकड़ों दरवाजे खुले हुए हैं, लेकिन पिरेनीजकी सरहद हस्तक्षेप न करनेके नामपर बंद करदी गई है, हालांकि बमबारी व रसदकी कमीसे औरतें और बच्चे भूखों मर रहे हैं।

हम स्पेनके आक्रमणकारियों और उपद्रवकारियोंकी निंदा करते हैं, उनपर दोष लगाते हैं, लेकिन उन्होंने कम-से-कम खुले आम अंतर्राष्ट्रीय कानून और सभ्यताके तमाम कायदोंको ठुकराया है और दुनियाको उन्हें रोकनेकी चुनौती दी है। मगर उन सरकारोंका क्या होगा, जो बात तो बड़ी बहादुरीसे शांति और कानूनकी करती है, मगर जिन्होंने इस चुनौतीके आगे सिर झुका दिया है और हरेक नई छेड़खानीको

बर्दाश्त कर लिया है और बुराई करनेवालोंसे दोस्ती करनेकी कोशिश की है ? उन लोगोंका क्या होगा जिन्होंने ऐसे वक्त पास खड़े-खड़े उदासीन रहनेका जुर्म किया है जबकि जिंदगी और जिंदगीसे भी अधिक पाक चीजको कुचला और बेइज्जत किया जा रहा था ।

आज भी आक्रमणकारी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंसे क्या संख्या, क्या ताकत और क्या लड़ाईके साधनोंमे कमजोर हैं, मगर फिर भी ये दूसरे राष्ट्र बेबस और कारगर कार्रवाई करनेमे असमर्थ दिखाई देते है ? क्या ऐसा होनेकी वजह यह नहीं है कि उनकी पिछली और मौजूदा साम्राज्यवादी नीतियोंने उनके हाथ-पांव बांध रक्खे है ? इन सरकारोंसे कुछ न बन पड़ा । अब वक्त है कि लोग कार्रवाई करें और उन्हें अपने कामोंको सुधारनेके लिए मजबूर करे । यह कार्रवाई फौरन बमबारियोंको रोकने, पिरेनीजकी सरहदको खोलने और बचाव करनेके साधनों और रसदको प्रजातंत्रीय स्पेनमें पहुंचने देनेकी होनी चाहिए । अगर बमबारी जारी रहे तो वायुयान-विरोधिनी तोपे और रक्षाकी दूसरी सामग्री भी वहां पहुंचने दी जानी चाहिए ।

इन पिछले दो सालोंमें स्पेन और चीनमे कितनी बड़ी-बड़ी बरबादियां हुई हैं । भूखों मरते और घायल स्त्रियां और बच्चे सहायता मांगनेके लिए आर्त्तनाद कर रहे हैं और दुनिया भरके तमाम भले और समझदार लोगोंका काम है कि उनकी मदद करें । यह समस्या दुनिया भरकी है और हमें विश्व-व्यापी आधारपर संगठन करना चाहिए । संघर्षका असली बोझ तो पीड़ित देशोके निवासियोंपर पड़ा है, हम कम-से-कम इस छोटे बोझको ही उठा ले ।

मुझे इस परिषद्मे यह कहते हुए खुशी होती है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने एक 'मेडिकल-यूनिट'का संगठन किया है और उसे जल्दी ही चीन भेज रही है । भारतमें जापानी मालके बहिष्कारमें भी हमने काफी सफलता पाई है, जैसा कि निर्यातके आंकड़ोंसे जाहिर होता है । एक हालकी घटनासे चीनी जनताके प्रति हमारी भावनाकी ताकतका पता लगेगा । मलायामें जापानियोंकी लोहे और टीनकी खानें थीं, जिनमे चीनी मजदूर नौकर थे । इन मजदूरोंने जापानके लिए हथियार बनानेसे इनकार कर दिया और खानें छोड़ दीं । इसपर हिंदुस्तानी मजदूर नौकर रख लिये गये, मगर हमारी प्रार्थनापर उन्होंने भी वहां काम करनेसे

इन्कार कर दिया, हालांकि इससे उनको बड़ी मुसीबतें और तकलीफ उठाना पड़ी।

और इस प्रकार जद्दोजहद जारी है। इस जद्दोजहदमें हमारे कितने ही दोस्त, साथी और प्रियजन जान दे चुके हैं——मगर फिजूल नहीं। हो सकता है कि यहां इकट्ठे हुए हममेंसे न जाने कितने उसी रास्तेपर जायें और फिर न मिल सकें। मगर चाहे हम जिंदा रहें या मरें, शांति और स्वतंत्रताका उद्देश्य तो कायम रहेगा ही, क्योंकि वह हम सबसे अधिक महान् है——वह स्वयं मानव-जातिका उद्देश्य है। अगर वही मिट जायेगा तो हम सब-के-सब मिट जायेंगे। यदि वह जीवित रहा तो हम भी जीवित रहेंगे, फिर हमारे नसीबमें चाहे कुछ भी क्यों न हो। इसलिए आइये, हम भी उसी उद्देश्यके लिये प्रतिज्ञा ग्रहण करें।*

: ३ :

चेको-स्लोवाकियाके साथ विश्वासघात

हिंदुस्तानकी आजादी और विश्वशांतिका उत्कट इच्छुक होनेके नाते मैंने हालकी स्पेन और चेको-स्लोवाकियामें हुई घटनाओं को चिंताके साथ देखा है। पिछले कुछ बरसोंमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने इंग्लैंडकी वैदेशिक नीतिकी आलोचना की है और अपनेआपको उससे अलग रखा है, क्योंकि वह हमें बड़ी प्रतिगामी, जनतंत्र-विरोधी और फासिस्ट व नात्सी हमलोंको बढ़ावा देनेवाली जान पड़ी है। मंचूरिया, फिलस्तीन, अबीसीनिया, स्पेनने हिंदुस्तानके लोगोंमें आंदोलन पैदा कर दिया है। मंचूरियामें हमलेको बढ़ावा देने की नींव पड़ी और अंतर्राष्ट्रीय कानूनके तमाम कायदों और समझौतोंकी ओरसे आंख मूंदकर

*पेरिसमें २३-२४ जुलाई १९३८को अंतर्राष्ट्रीय शांति-आंदोलनके अंतर्गत बुलाई गई एक परिषद्में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रतिनिधिकी हैसियतसे दिया हुआ भाषण।

राष्ट्रसंघके कामको बिगाड़ दिया गया। यूरोपमें यहूदियोंने भयानक और अमानुषिक अत्याचार सहनेमें जो संकट उठाये उनसे हमदर्दी और सद्भावना रखते हुए हमने उनके संघर्षको असलमें आजादीके लिए किया जानेवाला राष्ट्रीय संघर्ष समझा है, जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवादने हिंदुस्तान आनेवाले समुद्री रास्तेको कब्जेमें रखनेके लिए जोर-जबर्दस्ती करके दमन किया था। अबीसीनियामें बहादुर जनताके साथ बड़ा विश्वासघात हुआ। स्पेनमें प्रजातंत्रको तंग करने और बागियोंकी पीठ ठोंकने में कुछ कसर नहीं रखी गई। यह फैसला करके कि स्पेनकी सरकारको खत्म होना चाहिए या वह खत्म होनेवाली है, ब्रिटिश सरकारने भिन्न-भिन्न तरीकोंसे उस मकसदको जल्दी पूरा करनेकी कोशिश की और बागियोंकी ओरसे तौहीन, नुकसान और बड़ी भारी जलालत तक बर्दाश्त कर ली गई।

यह नीति हर जगह बुरी तरह असफल रही है, इस सचाईसे भी ब्रिटिश सरकार उसपर चलनेसे बाज न आई। मंचूरियापर हुए बलात्कारका फल आज दुनियामें हम चारों ओर देख रहे हैं। फिलस्तीनकी समस्या दिन-पर-दिन बिगड़ती जाती है। हिंसाका मुकाबला हिंसासे होता है और जनताको दबानेकी कोशिशमें सरकार दिन-पर-दिन बढ़नेवाली फौजी ताकत काममें ला रही है। इस बातको हमेशा याद नहीं रखा जाता है कि यह समस्या बहुत कुछ ब्रिटिश सरकारकी पैदा की हुई है और जो कुछ हुआ है उसमेंसे बहुत कुछके लिए उसीको जवाबदेह ठहराना चाहिए। आपके संवाददाताके अनुसार तो अबीसीनिया अब भी जीता नहीं गया है और शायद वह ऐसा ही रहेगा। स्पेनमें जनताने ब्रिटिश सरकारकी इच्छापर नाचनेसे इन्कार किया है और दिखला दिया है कि वह न तो दबाने या कुचलनेमें आयेगी, न आ सकती है।

असफलताका यह लेखा ध्यान देने योग्य है। तिसपर भी ब्रिटेनकी सरकारको उससे नसीहत लेना और अपने कार्योंको दुरुस्त करना नहीं आता। बल्कि वह तो और भी जोरोंके साथ हमलोंको बढ़ावा देने और जनरल फ्रैंको और फासिस्ट व नात्सी ताकतोंको मदद देनेकी अपनी नीति चला रही है। इसमें शक नहीं कि अगर उसे चलने दिया गया तो वह इसी तरह तबतक चलती रहेगी जबतक कि वह अपनेआपको और ब्रिटिश साम्राज्यको मिटा नहीं देती, क्योंकि दूसरी सारी बातोंसे भी बढ़कर बात है उसका फासिज्मकी ओर वर्ग-सहानुभूति और झुकाव

होना। अवश्य ही यह दुनियाको उसकी बड़ी भारी सेवा होगी—चाहे वह कितनी ही अनजान में हो; और मैं साम्राज्यवादके अंत होनेका विरोध करनेवालोंमें सबसे आखिरी होऊंगा। पर मुझे विश्वव्यापी युद्धकी संभावनाकी भारी चिंता है और यह देखकर मुझे अत्यंत दुःख होता है कि बरतानियाकी वैदेशिक नीति सीधे लड़ाईकी ओर ले जा रही है। यह सच है कि हिटलरकी बात इस मामलेमें आखिरी फैसला करेगी, लेकिन वह तो खुद बहुत कुछ ब्रिटेनके रुख और रवैये पर निर्भर रहेगा। अबतक तो इस रवैयेने उसे बढ़ावा देने और चेको-स्लोवाकियाको दांत दिखाने और धमकानेमें कुछ भी उठा नहीं रखा है। अगर लड़ाई होकर ही रही तो ब्रिटिश सरकारको कम-से-कम यह महसूस करके संतोष, या जो कुछ भी हो, हो सकेगा कि यह सब बहुत कुछ उसीके कारण हुआ और इंग्लैंडके लोग, जिन्होंने इस सरकारको सत्ता दी है, इस सच्चाईसे जो आराम उठा सकें, उठा लेंगे।

मैंने सोचा तो यह था कि ब्रिटिश सरकार जो कुछ करेगी उससे मुझे अचंभा नहीं होगा—(सिवा एक बातके कि वह अचानक प्रगतिशील बन जाये और शांति-स्थापनाका प्रयत्न करने लगे) पर मैंने भूल की थी। चेको-स्लोवाकियामें हुई हालकी घटनाओं और जिन तरीकों से सरकारने—खुद या बीच-बचाव करने वालोंके जरिये जो हर मौकेपर चैक सरकारको सताया और धमकाया है उसपर मेरा मन बिगड़ने लगा है और मुझे हैरानी हुई है कि कोई भी अंग्रेज, जिसमें उदारताकी जरा भी भावना या सुजनता हो, इसे कैसे बर्दाश्त कर सका?

हाल हीमें मैंने थोड़ा समय चेको-स्लोवाकियामें बिताया था। वहां मैं बहुतेरे चेक और जर्मन लोगोंसे मिला। मैं लौटा तो भयंकर खतरे और बेमिसाल कष्टोंमें भी शांत और प्रसन्नचित रहते हुए शांति बनाये रखनेकी खातिर सब कुछ करनेके लिए उत्सुक और अपनी स्वतंत्रता बनाये रखने के लिए दृढ़ निश्चयवाले जनतंत्रवादी जर्मनों और चेकोंके प्रशंसनीय स्वभावके लिए प्रशंसाके भावोंसे भरा हुआ लौटा। जैसा कि घटनाओंसे जाहिर हो गया है, अल्पसंख्यकोंकी हरेक मांगको पूरा करने और शांति बनाये रखनेकी खातिर वे लोग असाधारण हदतक जानेको तैयार हैं। लेकिन हर कोई जानता है कि जो सवाल दरपेश है वह कोई

अल्पमतका सवाल नहीं है । अगर अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंके प्रेमने लोगोंको पिघला दिया होता तो हम यहीं बात इटली में अल्पसंख्यक जर्मनों या पोलैंडके अल्पसंख्यकोंके बारेमें क्यों न सुनते ? सवाल है सत्ताधारी राष्ट्रोंकी राजनीतिका और नात्सियोंकी चेक-सोवियट मित्रताको तोड़नेका, मध्य यूरोपके एक जनतंत्रीय 'राष्ट्र'को खत्म कर देनेसे रूमानियाके तेलके क्षेत्रों और गेहूंके खेतोंतक पहुंचने और इस तरह यूरोपपर अपना कब्जा जमानेका। ब्रिटिश नीतिने इसे बढ़ावा दिया है और उस जनतंत्रीय राज्यको कमजोर करनेकी कोशिश की है ।

किसी भी दशामें हम हिंदुस्तानवाले न फासिज्म चाहते हैं न साम्राज्यवाद । और हम आज हमेशासे ज्यादा इस बातको समझ गये हैं कि ये दोनों चीजें निकट संबंधी हैं और विश्व-शांति और स्वतंत्रताके लिए खतरनाक हैं । हिंदुस्तान ब्रिटेन की वैदेशिक नीतिका विरोध करता है और उसमें हिस्सा लेना नहीं चाहता और हम अपनी ताक़त लगाकर प्रतिक्रियाके इस खंभेसे बांधनेवाले बंधनोंको तोड़ देनेकी कोशिश करेंगे । ब्रिटिश सरकारने पूर्ण स्वाधीनता के लिए यह एक और लाजवाब दलील हमें दे दी ।

हमारी पूरी सहानुभूति चेको-स्लोवाकियासे है । अगर लड़ाई छिड़ी तो ब्रिटिश जनता अपनी फासिज्म-भक्त सरकारके होते हुए भी उसमें घसीटी जाये बिना न रहेगी । लेकिन तब भी यह सरकार जिसकी फासिस्ट और नात्सी राष्ट्रोंके प्रति सहानुभूति है जनतंत्र और स्वतंत्रताके उद्देश्यको कैसे आगे बढ़ायेगी ? जबतक यह सरकार कायम रहेगी तबतक फासिज्म हमेशा दरवाजेपर डटा रहेगा ।

हिंदुस्तानकी जनता लड़ाईके संबंधमें किसी भी विदेशी निर्णयको मानना नहीं चाहती । केवल वही फैसला कर सकती है और निश्चय है कि उस ब्रिटिश सरकारके हुक्मको जिसमें उसे बिलकुल भरोसा नहीं है वह नहीं मानेगी । हिंदुस्तान अपना सारा-का-सारा वजन बड़ी खुशी-खुशी जनतंत्र और स्वतंत्रताकी ओर डालेगा, लेकिन हम ये शब्द बीस या इससे भी ज्यादा बरसोंसे सुनते आ रहे हैं । केवल स्वतंत्र और जनतंत्रात्मक देश ही दूसरी जगह स्वतंत्रता और प्रजातंत्रको मदद पहुंचा सकते हैं । अगर ब्रिटेन जनतंत्रके पक्षमें है तो उसका पहला काम है

हिंदुस्तानसे साम्राज्यको समेट लेना। हिंदुस्तानकी निगाहोंमें घटनाओंका क्रम यह है और इसी क्रमपर हिंदुस्तानकी जनता अटल रहेगी।*

: ४ :

म्यूनिक-संकट: १९३८

जैनेवाकी झील—लेक लीमन—कितनी शांत और सुंदर दिखाई देती है! सैर करनेवालों और दर्शकोंको लिये हुए स्टीमर लोजानकी तरफ धुआं उड़ाते हुए जा रहे हैं। पानीकी एक भीमकाय धारा झीलसे निकलती जान पड़ती है और ऊंची उठकर आसमानमें चली जाती है। पीछेकी ओर माउंट सेलीव है जो जैनेवा नगरके ऊपर उठा हुआ है और उसमे भी पीछे माउंट ब्लैककी बर्फीली चोटियां उठी हुई हैं। घाटके किनारे-किनारे होटलोंकी कतारें हैं, जिनपर कई राष्ट्रोंके झंडे हवामें फड़फड़ाते हुए उड़ रहे हैं। बिजलीसे चलनेवाली बड़ी-बड़ी बसें सैर करनेवालोंसे लदी हुई सड़कोंपर जोर-शोरसे दौड़ती चली जा रही हैं।

आगे बढ़नेपर राष्ट्रसंघका पुराना घर 'पैलेस विल्सन' है। उससे थोड़ा आगे अंतर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालयकी बड़ी इमारत है और उससे भी आगे चलकर भय उपजानेवाली शान-शौकतके साथ संघका बिल्कुल नया विशालकाय भवन खड़ा है।

लेकिन झीलकी सुंदरता और शांति और शहरकी तरफ ध्यान जाता ही कहां है! क्योंकि सबके मनको तो एक ही विचार घेरे हुए है। चेको-स्लोवाकिया क्या कहता है? लंदनमें क्या हो रहा है? और पेरिसमें, प्रेगमें, न्यूयार्कमें? लोग एक दूसरेसे ताजी-से-ताजी खबरें पूछते हैं। झूठी अफवाहें खूब उड़ती हैं और मनमाने अंदाज लगाये जाते हैं। सबके ऊपर पस्तहिम्मती छाई हुई है। राष्ट्र-संघ

---

*८ सितम्बर, १९३८ को 'मैंचेस्टर गार्जियन' के संपादकके नाम लिखा गया पत्र।

(लीग-असेंबली)की बैठक हो रही है, लेकिन उसकी परवाह कौन करता है ? जेनेवाको गिनता कौन है ? लीग तो मर चुकी । पूछ तो अब है प्रेग, लंदन, पेरिस, मास्को और बेशक हिटलरके पहाड़ी आश्रय-गृहकी भी । राष्ट्र-संघका महल तो एक मकबरेकी तरह दिखाई देता है जो शांति और सामूहिक सुरक्षितताकी लाशको इज्जत बख्शनेके लिए बनाया गया सा लगता है । जबकि यूरोप जोशके मारे कांप रहा है और शांति और युद्धके बीच लटक रहा है तब लीग-असेंबली मुख्य बातकी चर्चा तक नहीं चलाती !

क्या हुआ—सुलह या लड़ाई ? चेकोंने क्या जवाब दिया ? ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारने चेको-स्लोवाकियाके साथ विश्वासघात किया और उसे नात्सी भेड़ियोंके सामने फेंक दिया । क्या ब्रिटिश और फ्रेंच जनता इस विश्वासघातके आगे चुपचाप सिर झुका लेगी ?

रूमानियाका प्रतिनिधि इतने ऊंचे स्वरमें बोलता है कि फ्रेंच डेलीगेटोंका गिरोह सुन ले—"चेको-स्लोवाकिया जिंदाबाद ! फ्रांस मुर्दाबाद !" फ्रांसवालोंके चेहरे तमतमा आते हैं ।

खबर है कि मोशिये ब्लमने कहा था कि वह संधि करनेकी उत्कट इच्छा और जो कुछ हो रहा है उसपर शर्मिंदगीकी दो टकरानेवाली भावनाओंके बीच पैदा हुए हैं । दूसरे फ्रांसीसी महाशय कहते हैं—"बहुत अच्छा, मोशिये ब्लम ! लेकिन आपमें जो मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं हो रही हैं उनसे हमें क्या ? हमें तो जनतंत्रसे, चेको-स्लोवाकियासे काम है ।"

लंदनकी खबर ! चेक सरकारने हिटलर-चेंबरलेन-दलैदियेवाले प्रस्तावोंको उसूलन् तो मंजूर कर लिया । फिर निराशा । लेकिन कोई कहता है कि यह सब अंग्रेजोंका प्रचार है ।

दूसरा तार । ब्रिटिश लेबर-आंदोलनने चेंबरलेनकी नीतिकी निंदा की है और कल कार्रवाई करनेकी एक सर्वमान्य योजना बनानेके लिए सी. जी. टी. (फ्रेंच-लेबर-कन्फेडरेशन)की बैठक हो रही है । क्या कहने !

प्रेगकी खबर । कैबिनेटकी बैठक अब भी चल रही है । रातभर चलती रही । अभीतक कोई फैसला नहीं हो पाया ।

बर्लिनका तार । सरहदके करीब जर्मनों और चेकोंके बीच मुठभेड़ हो गई ।

दूसरी खबर। जर्मनोंकी पलटनें चेको-स्लोवाकियाकी सरहदपर इकट्ठी हो रही हैं।

लीगके एक अंग्रेज डेलीगेट अपनी सरकारकी नीतिको ठीक साबित करनेकी कोशिश कर रहे हैं। यह बड़ी मुसीबत और तकलीफदेह बात है। लेकिन करते क्या? दूसरा कोई चारा नहीं। हिटलर चेको-स्लोवाकियामें कदम रखने ही वाला था। उसकी हवाई फौज प्रेगपर बमबारी करनेके लिए तैयार थी। कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए था और चेंबरलेनने उसे बहादुरीके साथ किया। यह सच है कि इससे जनतंत्र और लीगके कल-पुर्जे बिगड़ गये और चेकोंके साथ विश्वासघात हुआ; लेकिन कम-से-कम शांति तो कायम रख ही ली गई। लेकिन कबतक? और शांति आखिरकार कायम भी रही? अगर हिटलरने लड़ाईकी धमकी देकर एक ब्रिटिश उपनिवेशकी मांग की तो क्या होगा? क्या तब ब्रिटेन नहीं लड़ेगा? बेशक। इसलिए ब्रिटिश सरकारके लिए जनतंत्रसे, राष्ट्रसंघके प्रतिज्ञापत्र (लीग कवनेंट)से, पवित्र प्रतिज्ञाओंसे, आश्वासनोंसे और बहादुर चेको-स्लोवाकियाके नसीबसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक उपनिवेशपर कब्जा होना था।

न्यूयार्कसे टेलीफोन। चेकोंके साथ जो विश्वासघात हुआ उसका विरोध और निंदा करनेके लिए एक बड़ी भारी सभा हुई। अच्छा हुआ। लेकिन अमरीकाके लोग सिर्फ एक ऊंची नैतिक सतहसे ही विरोध करते हैं। क्या उसके अलावा भी वे कुछ करेंगे?

कोई कहता है, किसी देशको आत्महत्या करनी हो तो सबसे अचूक तरीका यह है कि वह इंग्लैंड और फ्रांससे दोस्ती और संरक्षणकी भीख मांगे। ये सरकारें निश्चय ही दगा देंगी और विश्वासघात करेंगी।

रूसके डेलीगेट बड़े कठोर दीखते हैं। चेक बड़े दुःखी हैं, क्या कहें? स्पेनवाले कहनेमें कमी नही रख रहे है। वे कहते हैं—'यह सब हम जानते हैं। इसका हमें तजरबा हो चुका है। हम अपनी मजबूत बाजुओंपर निर्भर रहें। हमारी जीत होगी और हम जनतंत्रको बचा लेंगे।'

ताजी खबर क्या है? क्या हो रहा है? अखबारवाले इधर-उधर प्रेग, लंदन और पेरिसको टेलीफोन करते दौड़ रहे हैं। अफवाहें उड़ रही हैं। कभी तो निराशा छा जाती है और कभी उत्साह फैल जाता है। चेक कभी सर नहीं

झुकायेंगे ! चेकोंने आत्म-समर्पण कर दिया ! लेकिन, नहीं । बेनेश चलता-पुर्जा आदमी है । वह पकड़में नहीं आयेगा । अगर चेक सरकारने आत्म-समर्पण किया भी तो वह मिट जायेगी और उसकी जगह दूसरी सरकार आजायेगी । हिटलर बेनेशका इस्तीफा चाहता है ।

आधी रात । काफे-बेवेरिया (होटल), राजनीतिज्ञों और पत्रकारोंका अड्डा । वहां एक विदेशी मंत्री है, लीगके बहुतसे डेलीगेट हैं, संपादक और पत्रकार हैं और बहुतसे लीग के पिछलगुए हैं । बिअर और कॉफी उड़ रही है और लगातार बातचीत और बहस चल रही है । उस सबके पीछे तनाव है और सख्त पत्रकार तक हिम्मत दिखा रहे हैं ।

प्रेगने क्या तय किया ? लंदन और पेरिसका क्या हुआ ? लंदनमें लोगोंकी नाराजगी बढ़ रही है । पेरिसमें चेंबर ऑव डेप्यूटीजकी बैठक कल होनेवाली है । शायद फ्रेंच सरकारका पतन हो जाये । एक नये प्रधानमंत्रीका जिक्र हो ही रहा है । लंदनमें पार्लमेंटकी बैठक चल रही है । लेबर-पार्टी आक्रामक होती जा रही है । हर जगह वातावरणमें सरगर्मी दिखाई देती है, हालांकि अखबार सम्हल-सम्हलकर खबरें देते हैं ।

टेलीफोनकी घंटियां बराबर हो रही हैं । हैलो प्रेग ! हैलो पेरिस ! ताजी खबर क्या है ? युद्ध या शांति ?

प्रेगकी खबर । सरकारने लोकार्नो-संधिकी दुहाई दी है । उसकी शर्तोंके अनुसार उसने पंचोंकी मध्यस्थताकी मांग की है । जर्मनीने उसे स्वीकार किया, बादमें हिटलरने उसे पक्का कर दिया ।

शाबाश ! होशियारीका काम किया । बेनेश मूर्ख नहीं है । उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारोंको परेशानीमें डाल दिया है । इसपर वे क्या कहेंगे ? हिटलर क्या कहेगा ? स्वीडनका एक डेलीगेट कहता है कि लोकार्नोमें जो मध्यस्थ नियत किये गये थे, उनमें वह भी था ।

चेंबरलेन फिर परसों हिटलरसे मिलने जायेंगे । हवाई जहाजसे खबरें ले जानेका काम वह बड़ी अच्छी तरहसे कर रहे हैं । शायद उनकी छोटीसी चाय-पार्टी आखिरकार खतम न होगी ।

हैलो प्रेग ! हैलो पेरिस ! हैलो लंदन ! क्या हुआ ? शांति हुई या

लड़ाई ? बस २१ सितंबर १९३८ तक इतना ही। शांति हुई या लड़ाई ?
२१ सितंबर, १९३८.

: ५ :

लंदन असमंजसमें

पिछले कुछेक हफ्तोंमें हुई रहस्यभरी घटनाओंके बाद इधर-से-उधर-घूम लेने और अपीलों व आखिरी चेतावनियों और लड़ाईके बढ़ते हुए खतरेके आ जानेपर आखिरकार मि. नेविल चेंबरलेनने आम घोषणा की। वह रेडियोपर बोले और मैंने भी उनकी आकाशवाणी सुनी। वह मुख्तसर थी, मुश्किलसे उसमें आठ मिनट लगे होंगे। जो कुछ उन्होंने कहा, उसमें कुछ भी नई चीज नहीं थी। उनका कथन बाल्डविनकी तरह भावनाओंको उकसानेवाला था, मगर उसमें बाल्ड-विनकी-सी झलक और उसके व्यक्तित्वकी छाप नहीं थी। इसलिए उसका मुझपर कोई असर नहीं पड़ा। न तो उसमें उन खास मसलोंका जिक्र था जो सामने थे, न उस नंगी तलवारका जिक्र था जो दुनियाके आगे चमक-चमककर मानव-जातिको त्रस्त कर रही थी और न उस हिंसात्मक तरीकेकी चर्चा थी जो राष्ट्रोंका कायदा बनता जा रहा था और जिसको खुद मि. चेंबरलेन अपनी कार्रवाइयोंसे उकसाते आ रहे थे। उस स्वाभिमानी और बहादुर राष्ट्रका भी उसमें मुश्किलसे ही उल्लेख था, जिसको इर्द-गिर्द घेरे हुए शिकारी जानवरोंकी खूनकी प्यासको बुझानेके लिए कुर्बान किया जानेवाला था; और जिक्र किया भी गया तो अपमानजनक तरीके-से। कहा गया कि वह एक सुदूर देश है, जिसके निवासियोंके बारेमें हम कुछ नहीं जानते। उन्हीं दूर बसनेवाले लोगोंकी शानका, हिम्मतका, शांतिप्रियताका स्वतंत्रता-प्रेमका, उनके शांत संकल्पका और ज्वलंत बलिदानोंका नाम तक नहीं लिया गया कि जिनपर उनके दोस्तोंने ज्यादतियां कीं और दगाबाजी करके उन्हें छोड़ दिया था। नात्सी क्षेत्रोंसे लगातार जो धमकियां मिल रही थीं, अपमान किया जा रहा था और सरासर झूठ बोला जा रहा था, उसके निस्बत

भी कुछ नहीं कहा गया था, सिर्फ खेद प्रकट करनेके रूपमें हिटलरकी 'नावाजिब कार्रवाई' का थोड़ासा जिक्र था ।

मैं उदास-सा हो गया और दिल अंदर-ही-अंदर भारी हो आया । क्या हमेशा अच्छोंके साथ यही सलूक होता रहेगा, अगर उनके पास बड़ी फौजें न हुईं ? क्या हमेशा बुराईकी ही जीत होती रहेगी ?

मैंने सोचा, शायद मि. चेंबरलेन अगले रोज पार्लमेंटमें अपने मजमूनके साथ ज्यादा इन्साफ कर सकें । शायद अंतमें वह जिस बातको महत्त्व मिलना चाहिए उसे देंगे और हिटलरका डर छोड़कर सच्ची बात कहेंगे । संकटका मौका नजदीक आ रहा है । सच बात जाहिर होनेका वक्त आ गया था । पर साथ ही मुझे इसपर यकीन नहीं हो रहा था, क्योंकि मेरे आगे तो चेंबरलेनकी पिछली बातें थीं, जो कि उनके फासिज्म और उसकी कार्रवाइयोंकी हिमायत करनेका सबूत थीं ।

इसी समय पार्कों और खुली जगहोंमें खाइयोंकी खुदाईका काम चल रहा था, विमानभेदी तोपें चढ़ाई जा रही थीं । ए. आर. पी.—हवाई हमलोंसे हिफाजत—के सामान हरेक छिपनेकी जगहसे हमारी ओर घूर-घूरकर देख रहे थे और न जाने कितने कामचलाऊ गोदामोंसे मर्द और औरतें गैस मास्क (घातक गैससे बचावके लिए लगाये जानेवाले खास तरहके चेहरे) लगा-लगाकर देखते थे । ये गैस-मास्क बड़े बदसूरत और हिंसाके इस बर्बर युगके सच्चे प्रतीक थे । लोग अपने काम-काजपर आते-जाते, लेकिन उनके चेहरोंपर बेचैनी और खौफ छाया दिखाई देता । कितने ही घरोंमें उदासी छाई हुई थी, क्योंकि उनके प्रियजनोंको आगे आनेवाली लड़ाईके लिए तैयार हो जानेका हुक्म मिला था ।

घंटे-पर-घंटे धीरे-धीरे खिसकते गये और वह भयंकर घड़ी नजदीक आती गई कि जब एक आदमीके पागलपन-भरे इशारेपर हमला न करना चाहनेवाले, लाखों दयालु और सदाशय व्यक्ति एक दूसरेपर झपट पड़ेंगे और मारकाट और सर्वनाश मचा देंगे । तोपें गरजने लगेंगी, आग उगलने लगेंगी और बमवर्षक हवाई जहाजोंके घन्नाटेसे आसमान गूंज उठेगा । संकटकी घड़ी ! क्या वह कल होगी या परसों ?

आज पुनः सुन पड़ा वही स्वर जिससे जगने त्रास सहे :
"अब तो नग्न और अनियंत्रित तलवारोंका राज रहे ।"

लोग मजबूर कर रहे हैं कि मैं भी एक गैस-मास्क ले लूं। इसके खयालसे ही मुझे हंसी आती है। क्या मैं सूंड लगाये जानवरकी-सी सूरत बनाये इधर-उधर घूमता फिरूं? मैं खतरे और खौफसे घबराता नहीं हूं और बार्सीलोनामें तो कुछ दिन रहकर मुझे हवाई हमलोंका स्वाद मिल चुका था। मैं इस बातपर भरोसा नहीं करता कि ये कामकी चीजें हैं, क्योंकि अगर खतरा आयेगा ही तो चेहरा क्या हिफाजत कर सकेगा? शायद उसका खास मकसद यह हो कि पहननेवालेको इतमीनान रहे और आम जनतामें हौसला कायम रहे। जब हद दर्जेका खतरा सामने होगा तो कोई नहीं जानता कि वह कैसे उसका मुकाबला करेगा? और मेरा खयाल है कि मेरा सर आसानीसे जुदा न होगा।

तो भी गैस-मास्कको नजदीकसे देखनेका कौतूहल मुझे हुआ और मैंने ए. आर. पी. के एक गोदामपर जानेका निश्चय किया। चेहरा चढ़ाया गया और एक मैं ले भी आया।

राष्ट्रपति रूजवेल्टने हिटलरके पास एक संदेश भेजा है। वह एक गौरवपूर्ण मार्मिक अपील है जिसमें मसलेके खास मुद्देपर जोर दिया गया है। जो कुछ वह कहते हैं और जिस तरह कहते हैं उसमें और मि. चेंबरलेनके वक्तव्योंमें कितना बड़ा फर्क है! प्रेसीडेंट रूजवेल्टका एक-एक छपा हुआ शब्द तक जाहिर करता है कि उसके पीछे कोई इन्सान है। हिटलरके लिए दलील और अंजामका खौफ कोई मानी नही रखता। क्या हिटलर निरा पागल है कि वह अपनी उस अद्भुत् कूटनीतिपूर्ण विजयको जो उसे निस्संदेह हिसाकी धमकी देकर मिली है, लड़ाईमें शामिल होकर खतरेमें डाल दे? क्या वह नहीं जानता था कि विश्व-व्यापी युद्धमें पड़नेपर उसकी किस्मतमें हार और बरबादी ही आयेगी और उसीके लोगोंमेंसे अधिकांश उसके खिलाफ उठ खड़े होंगे या शायद उसने मि. चेंबरलेन और मो. दलैदियेको ठीक-ठीक पहचान लिया है और वे कहांतक जा सकते हैं, इसका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया है।

पार्लमेंट-भवनको जानेवाली सड़कोंपर भीड़ ही भीड़ है और वातावरणमें उत्तेजना है। भवनके भीतरकी जगह रुकी हुई है और दर्शकोंकी गैलरियां खचाखच भरी हुई हैं। लौर्ड लोग अपने पूरे जोश-खरोशके साथ हाजिर हैं। वे बिल्कुल बुर्जुआओंकी भीड़ ही जान पड़ते हैं और नीची श्रेणीके इन्सानोंसे उनमें कोई फर्क

नजर नहीं आता। ड्यूक आफ केंटकी बगलमें लार्ड बाल्डविन विराजमान हैं। उनकी दूसरी बगलमें लार्ड हैलीफैक्स और केंटरबरीके आर्चबिशप हैं। राजनीतिज्ञों-की गैलरीमें भीड़ है। रूसका उप-राजदूत वहां है और चेको-स्लोवाकियाके मंत्री मोशिये मसारिक भी, जो राष्ट्रके निर्माता मशहूर मसारिकके बेटे हैं, वहीं हैं। क्या उस शानदार इमारतको, जिसे महान् पिताने निर्माण किया था, बेटा बरबाद होते देखेगा ?

प्रधानमंत्रीने शुरूआत की। उनकी शक्ल प्रभावशाली नहीं है। उनके चेहरेपर बड़प्पन नहीं है। वह बहुत-कुछ एक व्यापारी जैसे जान पड़ते हैं। उनका भाषण ठीक होता है। घंटे भर उन्होंने भाषण दिया। वह एक तरहका सफाचट वर्णन था, जिसमें जहां-तहां व्यक्तिगत बातें थीं और ऐसे शब्द थे जिनसे दबी हुई उत्तेजना झलकी पड़ती थी। न जाने मुझे क्योंकर लगा (या मेरा खयाल हो) कि वह शख्स इतना बड़ा नहीं है कि उस कामके लायक हो जो उसने हाथमें लिया है और उसके शब्दों और तरीकोंसे भी यही भावना बारबार जाहिर हो जाती है। अपनी व्यक्तिगत दस्तंदाजीपर, हिटलरके साथ हुई उनकी बातचीतपर और दुनियाकी हलचलोंमें वह जो हिस्सा ले रहे हैं, उसपर वह उत्तेजित हो जाते हैं; उन्हें नाज़ हो आता है। ब्रिटेनके प्रधानमंत्री होते हुए भी वह ऐसे बड़े-बड़ेकामोंके अभ्यस्त नहीं है और खतरेके कामोंका नशा उन्हें चढ़ा रहता है। पामर्स्टन होता, ग्लैडस्टन होता या डिजरैली होता तो मौका न चूकता। कैंपबेल-बैनरमैन होता तो जो कुछ कहता उसमें आग भर देता। बाल्डविन सभाभवनको पकड़े रखता और चर्चिल भी दूसरे ढंगसे यही करता, एस्क्विथ भी मौकेके लायक शानके साथ बोलता। लेकिन मि. चेंबरलेनने जो कुछ कहा उसमें न तो कोई हार्दिकता थी और न कोई बुद्धिकी गहराई। यह तो बिल्कुल साफ जाहिर हो गया कि वह किस्मतवाले आदमी नहीं हैं।

मेरा खयाल उनकी हिटलरके साथ हुई मुलाकातकी तरफ गया और मैंने सोचा कि वह हिटलरसे दबसे गये होंगे, उसकी बार-बार दी गई आखिरी चेतावनियोंसे नहीं, बल्कि उसके जोरदार लगनेवाले और थोड़े-बहुत सनकी व्यक्तित्वसे भी, क्योंकि हिटलरमें चाहे जितना बुरा इरादा हो, फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ तात्त्विकता है और मि. चेंबरलेन तो बिलकुल धरतीके हैं, पार्थिव। फिर भी मि. चेंबरलेन

चाहते तो उस तात्त्विक शक्तिका मुकाबला दूसरी ताकतसे करते, जो खुद तात्त्विक होते हुए भी कहीं ज्यादा जबर्दस्त थी और वह ताकत थी संगठित प्रजातंत्र या लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंकी इच्छा की। उनके पास न वह ताकत थी और न उसे हासिल करनेकी कोशिश थी। वह तो अपने तंग दायरेमें ही चक्कर काटते रहे और मर्यादित शब्दोंमें ही सोचते रहे। लाखोंके दिलोंको पिघला देनेवाली प्रेरणाको बढ़ावा देने अथवा उसे व्यक्त करनेकी कभी कोशिश नहीं की। वैसी परिस्थितिमें यह तो लाजिमी ही था कि इरादोंमें टक्कर होनेपर उनको हिटलरके आगे झुकना पड़ता।

लेकिन क्या इरादोंकी टक्कर थी भी? मि. चेंबरलेनने जो कुछ कहा उससे ऐसी किसी टक्करका इशारा तक नहीं मिलता था; क्योंकि उनके कामोंमे कोई टक्कर नहीं थी। वह हिटलरके पास हमदर्दी और बहुत-सी स्वीकृतियां और समझौते लेकर पहुंचे। ऊंचे सिद्धांतोंकी, आजादीकी, प्रजातंत्रकी, मानवीय अधिकारों और न्यायकी, अंतर्राष्ट्रीय कानून और नीतिमत्ताकी चर्चा नहीं हुई और तलवारके न्यायका, बर्बरताका, उकता देनेवाले झूठका, नात्सीवादके परम पुजारियोंकी अमानुषताका कुछ जिक्र तक नही हुआ। जर्मनीमें अल्पसंख्यकोंके साथ हुए उन अत्याचारोंकी कोई चर्चा नहीं हुई जिनकी दुनियामें मिसाल नहीं है और न पैसा एंठनेकी जबरदस्तियों और धमकियोंके आगे सर न झुकानेकी कोई बात ही छिड़ी। सिद्धांतोंपर शायद ही कोई झगड़ा हुआ हो, सिर्फ चंद ब्योरेकी बातोंकी चर्चा हुई। यह साफ है कि अगर मि. चेंबरलेनकी इंग्लैड-संबंधी परिस्थितिको छोड़ दें तो उनका दृष्टिकोण हिटलरसे ज्यादा भिन्न नहीं था।

अपने उस लंबे भाषणमें उन्होंने हिटलरकी तारीफमें, उसकी ईमानदारी और उसकी सचाईमें यकीन होने और यूरोपमें और ज्यादा इलाके न चाहनेके उसके वायदेके बारेमें बहुत-कुछ कह डाला। मगर राष्ट्रपति रूजवेल्ट और उनके महत्त्वपूर्ण संदेशोंका जिक्र तक नहीं किया। रूसका भी कोई जिक्र नही हुआ, हालांकि रूसका चेको-स्लोवाकिया की किस्मतसे इतना गहरा संबंध है।

और खुद चेको-स्लोवाकियाकी निस्बत भी क्या? हां, उसका जिक्र जरूर था, मगर उसके निवासियोंकी बेमिसाल कुरबानियोंके बारेमें असह्य उत्तेजना मिलनेपर भी उनके आश्चर्यजनक संयम तथा गौरवके संबंधमें और प्रजातंत्रका

झंडा ऊंचा रखनेकी निस्बत एक लफ्ज तक नहीं कहा गया। इसे छोड़ देना बड़ी आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण भूल थी, जो जानबूझकर की गई थी।

मि. चेंबरलेनके भाषणपर श्रोतागण स्तब्ध थे—वक्ताकी दलीलोंकी उत्कृष्टता या उसके व्यक्तित्व की वजहसे नहीं, बल्कि विषयके अत्यंत महत्त्वकी वजहसे। उनके भाषणका अंत नाटकीय ढंगसे हुआ। कल वह सिन्योर मुसोलिनी और मो. दलैदियेके साथ म्यूनिक जानेवाले हैं और बड़ी कृपा करते हुए हिटलरने एक ध्यान देने लायक रियायत की है कि वह चौबीस घंटेतक लड़ाईकी तैयारीका हुक्म न देगा।

इस नाटकीय ढंगसे और इससे होनवाली इस उम्मीदसे कि शायद लड़ाई टल जाये, मि. चेंबरलेनने पार्लमेंट-भवनको उत्तेजित करनेमें कामयाबी पाई। पिछले चंद दिनों का बोझ हल्का हुआ और सबके चेहरोंपर राहत नजर आने लगी।

यह अच्छा हुआ कि युद्ध टल गया, चाहे अब भी वह टला एक या दो दिनके ही लिए हो। उस युद्धका विचार करना तक भयानक था, तो उससे मिलनेवाली थोड़ीसी भी राहत सबको अच्छी क्यों न लगती ?

और फिर, चेको-स्लोवाकियाका क्या हुआ ? प्रजातंत्र और आजादीका क्या हुआ ? अब फिर कोई दूसरी दगाबाजी करके उस राष्ट्रकी पूर्ण हत्या होने-वाली थी ? म्यूनिकमें जो यह अजीब चौकड़ी जमा हुई, वह क्या फासिस्ट-साम्राज्यवादी चार राष्ट्रोंकी संधिके उस नाटककी प्रस्तावना थी जिसमें रूसको अलग कर दिया गया, स्पेनको खत्म कर दिया गया और तमाम प्रगतिशील तत्त्वोंको कुचल दिया गया ? मि. चेंबरलेनके पिछले इतिहासको देखते हुए लाजमी तौरपर यही खयाल करना पड़ता है।

तो कल हिटलर और मुसोलिनीसे चेंबरलेन साहब मिलेंगे। उनके लिए तो एक ही भारी था। जब दो जबरदस्त मिल जायेंगे तो उन बेचारोंपर क्या बीतेगी भगवान् जानें ! संभव है, मि. चेंबरलेन और मो. दलैदिये उनके शब्द-जालमें फंसकर जो कुछ हिटलर कहेगा सब मान लेंगे और फिर अपनी दूसरी मेहरबानीके बतौर हिटलर चंद दिनों या हफ्तोंके वास्ते जंगको मुल्तवी करनेपर राजी हो जायेगा। वह सचमुच एक महान् विजय होगी। और तब हिटलरका शांति-दूतके रूपमें अभिनंदन होना चाहिए। शांतिका नोबल पुरस्कार शायद अब भी

उसको दिया जा सके, हालांकि मि. चेंबरलेन भी जोर-जोरसे उसे जीतने की कोशिश करेंगे।

२८ सितंबर, १६३८

: ६ :

हिंदुस्तान और इंग्लैंड

ढाई साल पहले मैं इंग्लैंड गया था और वहांकी विभिन्न पार्टियों और दलोंके बहुतसे व्यक्तियोंसे मिला था। उन्होंने भारतकी समस्यामें शिष्टतापूर्ण दिलचस्पी जाहिर की थी और हम जिस मकसदके लिए लड़ रहे हैं उससे सहानुभूति दिखाई थी। मैंने उस शिष्टताकी कद्र की थी और उनकी हमदर्दीका स्वागत किया था। लेकिन वह सब होते हुए भी मैंने दोनोंमेंसे किसीको भी खास महत्त्व नहीं दिया; क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता था कि वहांके आम लोगोंमें तो हिंदुस्तानके प्रति और उन लोगोंके प्रति कि जिनका काम ऐसी समस्याओंपर विचार करना है, उदासीनता और रुखाई ही है।

मैंने देखा कि वहांके लोगोंकी आम मंशा हिंदुस्तानके बारेमें कुछ न सोचने और मामलेको टालनेकी है। यह समस्या काफी उलझी हुई थी और मुसीबतसे भरी दुनियामें उनकी एक मुसीबत और क्यों बढ़ा दी जाये? भारतीय शासन-विधान मंजूर हुआ ही था और चूंकि वह असंतोषजनक था, इसलिए कम-से-कम उससे एक फायदा तो हुआ। इसने मामलेको कुछ अर्सेके लिए मुलतवी कर दिया और उन्हें उसकी बाबत कुछ विचार न करनेका एक बहाना मिल गया।

मुझे इससे निराशा नहीं हुई; क्योंकि मैंने इससे कोई ज्यादा उम्मीदें नहीं बांधी थीं और बरसोंसे हम लोगोंने यह सबक सीखा है कि दूसरोंके आसरे कभी न रहें; बल्कि अपनी खुदकी ताकत बढ़ायें। मैं भारत लौट आया। पर हमारी समस्या दूर नहीं हुई; क्योंकि इंग्लैंडवाले उसपर विचार नहीं कर रहे थे, बल्कि वह बढ़ती ही गई और साथ-साथ हम भी बढ़ते गये।

इसी बीच, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति पहलेसे ज्यादा चिंताजनक हो गई और हमें यह समझमें आने लगा कि हिंदुस्तानका मसला इस विश्वव्यापी समस्याका

ही एक अंग है और अगर कोई संकट या युद्ध आ पड़ा तो हम हिंदुस्तानमें रहनेवाले उसपर असर डाल सकते है। हम लोगोंके साथ-साथ दूसरे लोगोंको भी यह जाहिर होने लगा है और हिंदुस्तानकी आजादी पानेकी जद्दोजहद अंतर्राष्ट्रीय सतहतक जा पहुंची है।

इंग्लैंडकी अपनी इस यात्रामें मुझे फिर अपने नये और पुराने मित्रोंसे मिलने और बहुतेरी सभाओंमें हिंदुस्तानके विषयमें भाषण देनेके सुअवसर मिले है।

मैंने फिर भी भारतके बारेमें एक तरहकी उदासीनता और काफी नावाकफियत उनमें पाई और उसका ध्यान स्पेन, चीन और मध्य यूरोपकी आवश्यक समस्याओंमे लग जाना लाजमी था। लेकिन तो भी मैंने काफी फर्क पाया। और देखा कि हिंदुस्तानके मसलोंपर नजर डालनेका तरीका भी नया और ज्यादा यथार्थवादी हो गया है। हो सकता है कि यह इस बातके समझनेसे हुआ हो कि आज हिंदुस्तानके राष्ट्रीय आंदोलनकी ताकत बहुत बढ़ी है, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत नाजुक है और यह डर पैदा हो गया है कि संकटका मौका आनेपर हिंदुस्तान खतरेको और भी बढ़ा सकता है। शायद इसी गंभीर परिस्थिति और सिरपर मंडरानेवाले संकटकी भावनाने ही लोगोंको अपनी पुरानी दिमागी लीकोंसे हटनेको और सचाई तथा असलियतके साथ सोच-विचार करनेको मजबूर किया था।

क्योंकि असलियत तो यह है कि भारत पूरी स्वतंत्रता चाहता है और उसे पानेके लिए कमर बांधे हुए है। हमारी भयंकर गरीबीकी समस्या सुलझाई जानेके लिए चिल्ला रही है और वह समस्या तबतक हल होनेवाली नहीं है, जबतक कि हिंदुस्तानके निवासी अपने देशका बिना किसी बाहरी दखलके मनचाहा राजनैतिक और आर्थिक भविष्य बना लेनेका अधिकार न पा लें। दूसरी बात यह भी है कि भारतवासियोंकी संगठित शक्ति पिछले वर्षोंमें काफी बढ़ गई है और किसी भी बाहरी ताकतके लिए उन्हें स्वराजकी ओर बढ़नेसे अधिक दिनोंतक रोक रखना मुश्किल है। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी छिपे तौरपर हिंदुस्तानके राष्ट्रीय आंदोलनको बड़ा बल दे रही है।

कट्टर दल भी यह मानता है कि हिंदुस्तानकी परिस्थितिकी ठीक-ठीक जांचका सार यही निकलता है कि हिंदुस्तान आजादी पाकर रहेगा। दूसरोंकी

सद्भावनासे मिले तो बेहतर है, पर ऐसा न हो तब भी यह रुक नहीं सकती। इसलिए आज करीब-करीब हर शख्स हिंदुस्तानकी आजादीकी बात करता है।

इस दृष्टिकोणसे देखनेपर प्रांतीय स्वराज और फेडरेशनके प्रश्न इस व्यापक प्रश्नके मुकाबले छोटे पड़ जाते हैं। यह जरूर है कि उनके कारण एक बहुत बड़ा संघर्ष छिड़ सकता है लेकिन खास सवाल तो आजादी का ही है और रहेगा; और हम अपने एक-एक कदमकी, अपनी एक-एक नीतिकी अकेले इसी प्रश्नकी कसौटीपर जांच करके फैसला करेंगे कि क्या वह हमें ताकत देता है और स्वतंत्रताको हमारी पहुंचके अंदर ला देता है।

अगर अड़चन डाली गई, अगर हमपर कोई चीज थोपनेकी कोशिश की गई, तो हमारी कार्रवाई मुखालफतकी होगी। अंतिम परिणाम वही होकर रहेगा, क्योंकि उस उद्देश्यको पानेके लिए ऐसी ताकतें काम कर रही हैं जो इनसानके बसके बाहर हैं। हो सकता है वह कार्रवाई मित्रता और सद्भावनाके साथ हो और मित्रता और सहयोगकी ओर ले जाये अथवा उसके पीछे दुर्भावना और विरोध रहे, जिससे भविष्य अंधकारमय हो जाये और आपसके स्वस्थ सहयोगमें रुकावटें पैदा हो जायें।

मेरा विश्वास है कि इसी सारी बातको समझ लेनेकी वजहसे ही वहांके बहुतेरे लोगोंके रुखमें यह सब तब्दीली हुई है। वे जान गये हैं कि गतिशील परिस्थितिमें कुछ न करने और उदासीन बने बैठे रहनेसे कुछ लाभ नहीं होता बल्कि कुछ कर गुजरनेकी नीति ज्यादा फायदेमंद होती है।

दुर्भाग्यकी बात है कि इंग्लैंड और हिंदुस्तानके पीछे इसी विरोध और संघर्षका इतिहास है। एक हिंदुस्तानी इसे आसानीसे नहीं भूल सकता। फिर भी आजके युगमें—जिसके गर्भमें कुछ छिपा हुआ है—जबकि दुनियाभरमें संघर्ष है, फासिस्ट हमले हो रहे हैं और भयंकर लड़ाईके आसार हमेशा बने ही रहते हैं, अगर हम छोटी-छोटी गई-गुजरी बातोंका खयाल करते और काम करते रहें तो उससे हमको ही खतरा है। अब तो हमको उनके ऊपर उठकर बड़ी व्यापक दृष्टि रखनी चाहिए।

मुझे तो यकीन है कि भविष्यमें हिंदुस्तान और इंग्लैंड आपसी भलाईके लिए एक-दूसरेको बराबर मानते हुए आपसमें सहयोग कर सकें यह संभव है।

लेकिन सल्तनतकी छायामें वह सुहयोग होना नामुमकिन है । पहले उस सल्तनतको खत्म करना होगा और हिंदुस्तानको अपनी आजादी हासिल करनी होगी, तभी सच्चा सहयोग मुमकिन हो सकेगा ।

एक भारतीय राष्ट्रवादी होनेके नाते मुझे इंग्लैंडसे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि हम उसकी कल्पना साम्राज्यवादकी ही भाषामें करते हैं । मैं तो वही काम कर सकता हूं जिससे हमारी अपनी शक्ति बने, बढ़े और हमारा ध्येय प्राप्त करा सके ।

लेकिन दुनियामें शांति और स्वतंत्रतापर ठहरी हुई सुव्यवस्था देखनेका परम इच्छुक होनेके नाते मुझे इंग्लैड और उसके निवासियोंसे बहुत कुछ कहना है, क्योंकि मैं देख रहा हूं कि आजकी अंग्रेज सरकार ऐसी नीतिपर चल रही है, जो शांति और स्वतंत्रता दोनोंके लिए खतरनाक है ।

उस नीतिसे हिंदुस्तान और इंग्लैडके बीचकी खाई बढ़ेगी क्योंकि हम उसके कतई खिलाफ है और उसे आजकी दुनियाकी एक बुराई समझते हैं । क्या इस बुनियादपर हमारे उनके बीच सहयोग हो सकता है ।

एक समाजवादीके नाते मुझे यहांके अपने साथियोंसे और भी ज्यादा कहना है । पिछले दिनों इंग्लैडकी लेबर पार्टी साम्राज्यवादी मामलोंपर, खासतौर-पर भारतके संबंधमें, भयानक रूपसे ढिलमिल रही है । उसकी कारगुजारियां खराब हैं । लेकिन खतरेके इन दिनोंमेंसे हमसे कोई भी ढिलमिल होने या दोअर्थी बात करनेकी हिम्मत नहीं करता । इसलिए यही मौका है कि इंग्लैडकी लेबर पार्टी उन सिद्धांतोंपर चले जिनको उसने चलाया है और मुनासिब बात भी यही है कि यह कार्रवाई हो जानी चाहिए ।

लेबर-पार्टीको फासिज्म-विरोधी होनेके साथ-ही-साथ साम्राज्यवाद-विरोधी भी होना चाहिए । उसे सल्तनतको खत्म करनेका हामी होना चाहिए । उसे साफ शब्दोंमें हिंदुस्तानकी आजादीकी और उसकी जनताके इस अधिकारकी घोषणा कर देनी चाहिए कि वह विधान-पंचायत द्वारा अपना विधान खुद बना ले और उसकी पूर्तिमें जो कुछ उससे बन सके उसे करनेके लिए उसे तैयार रहना चाहिए ।

हमें फेडरेशनके बारेमें कोई ज्यादा अफसोस नहीं है क्योंकि हम तो चाहते

हैं सारा-का-सारा भारतीय शासन-विधान हटा ही दिया जाये और उसकी जगह हमारा अपना तैयार किया विधान आ जाये ।

छोटे-छोटे उपायोंका वक्त अब नहीं रहा । अब तो दुनिया संकटकी ओर दौड़ रही है । अगर दुनियाकी प्रगतिशील ताकतें साथ मिलकर कोशिश करें, तो हम अब भी उस संकटको टाल सकते हैं । इस साझेमें हिंदुस्तान भी अपना हिस्सा ले सकता है, लेकिन सिर्फ स्वतंत्र होकर ही । इंग्लैंडकी लेबर पार्टी अगर इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील होगी तो भविष्यमें इंग्लैंड और हिंदुस्तानके दर्मियान मित्रता और सहयोगकी बुनियाद पड़ेगी ।

यह देखकर तसल्ली होती है ब्रिटिश लेबर पार्टीके नेता इस दिशामें सोच रहे हैं; और यह जानकर और भी ज्यादा प्रसन्नता होती है कि मजदूर आंदोलनका पूरा दल-बल बड़े उत्साहके साथ आजादीकी इस पुकारको सुन रहा है ।

दुनिया आज तेजीसे दौड़ रही है और कौन जानता है कि कल क्या हो ? हिंदुस्तानमें भी रद्दोबदल हो रहा है और वह आगे बढ़ रहा है और हो सकता है कि हमारी सारी योजनायें जल्दी ही पुरानी पड़ जायें लेकिन हिंदुस्तान और इंग्लैंड की प्रगतिशील शक्तियोंमें सद्भावना होनेसे एक ऐसे भावी सहयोगकी नींव पड़ सकती है जिससे दोनोंका भला हो और विश्व-शांति और स्वतंत्रताको मदद पहुंचे ।

२१ अक्टूबर, १९३८

: ७ :

रूसकी खुशामद

बीस साल पहले तरुण सोवियट प्रजातंत्रपर सब तरफसे इंग्लैंड, अमरीका, फ्रांस और जापान जैसे ताकतवर देश टूट पड़े थे । खुद उसीके इलाकेमें प्रति-क्रांति उठ खड़ी हुई थी और दूर-दूरसे उसको समर्थन मिला था । रूसके पास फौज नहीं थी, पैसा नहीं था, लड़ाईके साधन या उद्योग-धंधे नहीं थे और लड़ाई, हार और क्रांतिके बाद निहायत बदइंतजामी फैल गई थी, जिसके कारण वह

बरबाद होनेको था और उसके दुश्मन ताक रहे थे कि कब वे अंतमें उसपर हावी हो जायें। यहांतक कि जो उसके साथी थे वे भी उसका फिरसे उठना नामुमकिन-सा मानते थे और सोच बैठे थे कि अब तो उसे मिटना ही है। लेकिन एक महान् पुरुषके अदम्य संकल्प और प्रतिभाने ऐसी जिंदगी और नई उम्मीद पैदा की कि रूसने इन सब भयंकर मुसीबतोंको पार किया और वह जिंदा रहा।

लेकिन फिर भी वे लोग उसे नफरत और हिकारतकी निगाहसे देखते रहे, गोया वह राष्ट्रोंके बीचमें कोई अछूत— अंत्यज— हो कि जो उच्च वर्णोंको चुनौती देने चला हो। उन्होंने उसकी कोई पूछ नहीं की, उससे कोई वास्ता नहीं रखा, उसकी बेइज्जती की और उसके रास्तेमें हर तरहकी मुसीबतें पैदा की। मगर वह तो इस तानेजनीको सुना-अनसुना करता हुआ जीता रहा और उस नई जिंदगीको लानेमें लगा रहा जिससे वह इतना बड़ा हिम्मतका काम करनेके लिए तैयार हुआ था। उसके रास्तेमें परीक्षा और संकटकी घड़ियां आई और अक्सर उससे गलतियां भी हुई और गलतियोंके लिए नुक्सान भी उठाया। मगर फिर भी वह एक प्रकारके विश्वास और ताकतको लेकर अपने सपनोंकी दुनिया बनाता हुआ बढ़ता ही चला गया।

मुमकिन है सपने तो सब सच्चे न हो सके हों, क्योंकि असलियत मनमें बनी हुई तसवीरसे जुदा थी। फिर भी एक दुनिया बनी, एक बहादुराना नई दुनिया, जिसमें एक जान थी, उम्मीद थी, सुरक्षितता थी और उन लाखों इन्सानोंके लिए, जो उसके लंबे-चौड़े इलाकोंमें बसे हुए थे, खुशहालीका जमाना लानेवाली थी। बिजलीकी रफ्तारसे उद्योग-धंधे फैले, शहर बस गये, खेतीने उसकी शक्लको ही बदल डाला और कलके गये-गुजरे तरीकोंकी जगह सामूहिक खेती होने लगी, साक्षरताका प्रसार होने लगा, शिक्षा और संस्कृतिकी उन्नति हुई, विज्ञानोंको अपनाया गया और पूर्व योजना बनाकर वैज्ञानिक तरीकोंका उपयोग राष्ट्रके नवनिर्माणमें किया गया।

दुनियाको दिलचस्पी हुई। अरे, जबकि तमाम दुनिया कुचली जा रही है, एक तरहकी आर्थिक मंदीसे जिसका गला घुट रहा है और हर जगह बेकारी बढ़ रही है, तब यह तेजीसे तरक्की होने और बेकारी कम होनेकी अजीब चीज कैसी! राजनेता और चांसलरोंने इस गैरमामूली बर्तावको पसंद नहीं किया।

उनके अपने लोगोंके आगे यह बुरी मिसाल थी। वे सोवियटको मुसीबतमें डालनेके जाल रचने लगे; वे छेड़खानीके बर्ताव करके उसे भड़काने लगे; वे उसे लड़ाईमें फांसने लगे। मगर उसने इन अपमानोंकी परवा न की और लड़ाईमें पड़नेसे इन्कार किया। अपने राष्ट्रके नवनिर्माणका जबरदस्त कार्यक्रम लेकर उसने जान-बूझकर दृढ़ताके साथ वैदेशिक मामलोंमें शांतिकी नीति कायम रखी।

इसी बीच, उसने अपनी सेना और हवाई ताकत भी बढ़ा ली और ज्योंही ये तैयार हो चुकी, उन लोगोंमें भी जो उसे नापसंद करते थे उसके लिए इज्जत हो गई। लेकिन इज्जतके साथ-साथ डर भी उन लोगोंमें पैदा हुआ और वे फिर चालें चलकर उसे अकेला छोड़ देने और नई फासिस्ट ताकतोंको उसके खिलाफ उभारनेकी कोशिशें करने लगे। यूरोपके प्रजातंत्र के हिमायतियोंने नात्सियों और फासिस्टोंसे मुहब्बत की, उनके हमलोको बर्दाश्त किया, उनकी हैवानियतको और असभ्यतापूर्ण उद्दंडताको दरगुजर किया, जो उनके आसरे थे उन्हें धोखा दिया, और अपने साथियों और दोस्तोसे दगाबाजी की—— और यह सब सिर्फ इस उम्मीद से कि सोवियटको कुचलकर नात्सियोंसे उसपर हमला कराया जाय। उन लोगोंने म्यूनिकके समझौतेमें उसे पूछा ही नहीं—— हालांकि वह फ्रांसका और उस देशका मित्र था जिसे अलग करनेको वे जमा हुए थे। अंततक सोवियट अपने साथियोंके साथ सच्चा और अपने वायदोंपर कायम रहा।

म्यूनिककी घटना होने और संतुष्ट करनेकी नीतिके खुलकर खेल लिये जानेके बाद ८ महीने गुजर गये। और अब ईश्वरकी लीला है कि सोवियट रूसकी कोई अवहेलना नहीं कर सकता! अब उसे चाहने और उसकी कृपा चाहनेवाले बहुतेरे! हिटलर भी, जो कि साम्यवादका बड़ा दुश्मन है, उसकी इज्जत करता है और समझौता चाहता है। फ्रांस और इंग्लैंड उसके पीछे-पीछे लगे हुए हैं और मीठी-मीठी बातें करके इस बातको छिपाना चाहते है कि पहले उसे नहीं चाहते थे। एकाएक सोवियट रूस अंतर्राष्ट्रीय मामलोंका कर्त्ता-धर्त्ता बन गया है और उसका फैसला आज स्थितिमें बड़ी भारी रद्दोबदल कर सकता है।

सोवियट रूस आज यूरेशिया महाद्वीपमें सबसे ज्यादा ताकतवर देश है। अपनी बड़ी फौज और विशालकाय हवाई ताकतके लिहाजसे ही वह ताकतवर नहीं है बल्कि उसके साधन अटूट हैं और उसने समाजका जो ढांचा तैयार किया है

वह बड़ा शक्तिशाली है। हिटलरकी जर्मनीके पास भले ही हथियारबंद फौज हो, मगर उसकी बुनियाद कच्ची है और युद्ध या शांतिको कायम रखनेकी ताकत उसमें नहीं है। वह बुड्ढा हो चला है और वह चलता रहे इसके लिए उसे ताकतकी दवा बार-बार मिलनेकी जरूरत है। ये ताकतकी दवाएं उसके पास हरेक नये हमलेसे और इंग्लैंड और फ्रांसकी सद्भावनासे मिली हैं। जर्मनीके साधन महदूद हैं और उसकी धन-शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा खर्च हो चुकी है। हां, फ्रांसके पास उम्दा फौज है और उसकी कीमत हो सकती है, मगर वह तो अभी से ही सब राष्ट्रोंके पीछे पड़ गया है। इंग्लैंडकी सल्तनत बहुत बड़ी है, लेकिन अब वह है कहां ? उसके पास बड़े-बड़े साधन हैं, लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी कमजोरियां भी हैं। उसके भी घमंड और हुकूमतके दिन लद गये ।

अगर सोवियट रूस न होता तो आज इंग्लैंड होता कहां ? या फ्रांस या यूरोपके पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिण पूर्वी देश कहां होते ? यह खयाल बड़ा अजीब है कि यूरोपमें नात्सियोंके हमलेका सफल मुकाबला करनेवाला किला सोवियट रूस है। सोवियटकी मददके बिना आज अधिकांश दूसरे देश लड़नेकी कोशिश करनेके पहले ही मिट सकते हैं। उसकी मददके बिना इंग्लैडका पोलैंड और रूमानियाको आश्वासन देना कोई मानी नहीं रखता ।

आज दुनियामें दो ही ताकतें जांच-पड़तालके बाद ठहरती हैं। एक तो अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्र और दूसरा सोवियट रूस। संयुक्त राष्ट्र तक तो कोई पहुंच नहीं सकता और उनके साधन अपार हैं। भौगोलिक-दृष्टिसे सोवियट-संघकी स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन फिर भी वह करीब-करीब अजेय है। दूसरी तमाम ताकतें इन दोनोंसे नीचे दर्जेकी हैं, और अपनी हिफाजतके लिए उन्हें अपने साथियोंके आसरे रहना पड़ता है। और ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों यह विषमता बढ़ती जायेगी ।

और यही कारण है कि उसके साम्यवादी होते हुए भी वे लोग जो उससे नफरत करते थे आज उसकी खुशामद कर रहे हैं। ईश्वरकी लीला है !

३० मई, १६३६

: ८ :

इंग्लैंडकी दुविधा

परंपरासे ब्रिटेनकी वैदेशिक नीति इस आधारपर रही है कि साम्राज्य व उसके स्थल और जलमार्गोंकी हिफाजत रहे, यूरोपमें शक्ति-संतुलन अर्थात् राष्ट्रोंकी ताकतकी समतोलता कायम रहे ताकि इंग्लैंड सबपर हावी रहे और आर्थिक दृष्टिसे ब्रिटेनका प्रभुत्व बना रहे जैसा कि महायुद्धके सौ बरस पहले रहा था। उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धमें संयुक्त-राष्ट्र अमरीका और जर्मनी इंग्लैंडके औद्योगिक आधिपत्योंको चुनौती देने लगे। साम्राज्यवादोंमें टक्कर शुरू हो गई, जिसका नतीजा हुआ १९१४का महायुद्ध। इस लड़ाईके बाद राजनीतिक दृष्टिकोणसे इंग्लैंडकी स्थिति बड़ी फायदेमंद हो गई, परंतु संयुक्त राष्ट्र उसके आर्थिक प्रभुत्वको ललकारने लगा। अमरीकाके साथ कड़ी टक्कर लेते रहनेके बाद इंग्लैंडने जैसे-तैसे दुनियामें अपनी आर्थिक स्थिति वैसी ही बना ली, हालांकि वह एक कर्जदार राष्ट्र रहा और संयुक्त राष्ट्र कहीं ज्यादा मालदार और दुनियाकी बड़ी ताकतोंमें अकेला कर्ज देनेवाला (Creditor) राष्ट्र था। मगर इस दिखावटी जीतके लिए इंग्लैंडको जो कीमत चुकानी पड़ी वह बहुत बड़ी थी, उसके यहां बेकारी बढ़ी और उद्योग-धंधे बैठने लगे। चीजोंके दाम एकदम गिर गये।

राजनैतिक जनतंत्रकी शुरुआत करनेमें अगुआ होते हुए भी यह अजीब बात थी कि वह सामाजिक दायरेमें पिछड़ा हुआ था। आज भी इंग्लैंड यूरोपके अधिकांश देशोंसे सामाजिक मामलोंमें ज्यादा अनुदार है। चूंकि वह संपन्न हो रहा था और अपने साम्राज्यमें होनेवाले शोषणसे आई हुई संपत्तिसे मालामाल हो रहा था, इसलिए सामाजिक संघर्षका असर उसपर बिलकुल नहीं हुआ— और हुआ तो कम हो गया। कुछ हदतक उसके श्रमिक (मजदूर) लोग इस नई दौलतमें हिस्सा बंटानेवाले हुए, लेकिन दृष्टिकोणमें वे साम्राज्यवादी थे। इंग्लैंडका वास्तविक श्रमिक-वर्ग तो हिंदुस्तान और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें बसता था।

सोवियट रूस के उत्थान व साम्यवादी और समाजवादी विचारोंकी पैदाइशके साथ ही ब्रिटेनके शासक-वर्गमें खलबली मच गई और उन्होंने महायुद्धके बंद

होते ही सोवियट-शासनका अंत कर देनेकी कोशिश की। हालाकि वे कामयाब नहीं हुए, मगर दुश्मनीका रुख जारी रहा। चूंकि रूसको वे सामाजिक और राजनैतिक दोनों निगाहोंसे खतरनाक समझते थे, इसलिए वैदेशिक विभागकी परंपरागत नीतिका इस दुश्मनीके साथ मेल बैठ गया। जापानके मंचूरियापर होनेवाले हमलेको न रोका जानेका लाजिमी अंजाम यह होता कि राष्ट्र-संघके सारे ढांचेको दफना दिया जाता। और फिर भी, इंग्लैडने इसे बर्दाश्त ही नहीं कर लिया, बल्कि उसे बढ़ावा भी दिया। तत्कालीन वैदेशिक मंत्री सर जॉन साइमन अपनी राह को छोड़कर जापानकी मदद करने चले गये और इस तरह राष्ट्र-संघके कल-पुर्जे बिगाड़ दिये। इंग्लैडकी वैदेशिक नीतिका तमाम आधार उस समय भी यही था और आगे भी रहा कि सोवियट-संघका विरोध किया जाय और उसे क्या यूरोप और क्या सुदूर-पूर्व दोनोंमें कमजोर कर दिया जाय। वैदेशिक विभाग या ब्रिटिश शासक-वर्गके लोग अपने-अपने विचारोंमें साफ थे और किसी तरहकी शंका उन्हें न थी। कुछ लोग चाहे चिल्ल-पों मचाते और विरोध जाहिर करते, लेकिन नीतिपर वे कोई असर नही डाल सकते थे। सिर्फ कभी-कभी उस मूलभूत नीतिको व्यक्त करनेके तरीकेमें वे जरूर फर्क पैदा कर देते थे।

हिटलरके आनेसे स्थितिमें एक पेचीदा उलझन हो गई। यह उलझन दो प्रकारसे उठ खड़ी हुई। पहले तो यह कि इससे यूरोपमें शक्ति-संतुलनके बिगड़ जानेका खतरा हो गया; दूसरे ब्रिटिश जनता आमतौरपर हिटलर और उसके तौर-तरीकोंके खिलाफ थी। लेकिन विदेशी-विभाग अपनी पुरानी नीतिपर चलता रहा। हिटलरका खतरा तो दूरका था लेकिन सोवियटकी तरफसे सामाजिक और राजनैतिक खतरा ज्यादा निकटवर्ती और खतरनाक समझा गया था। जनमतको समय-समय पर बहादुरी भरी तकरीरोंसे तसल्ली दे दी जाती थी, लेकिन पुरानी नीति चलती रही। सोवियटके खिलाफ हिटलरको तैयार करना ही अब इस नीतिका मकसद था। इसलिए हिटलरको हर तरीकोंसे बढ़ावा दिया गया और दरअसल ब्रिटिश सरकारकी सीधी छत्रछायामें नात्सी जर्मनीकी ताकत बढ़ गई। यह बढ़ावा इस हदतक पहुंचा कि फ्रांसको अलग करके डराया गया। इंग्लैंड और जर्मनीकी जल-संधिसे, जो वार्साईकी संधि और राष्ट्र-संघकी अवहेलना करके की गई थी और जिसका फ्रांसीसी सरकारको

पता नहीं था, फ्रांस इतना परेशान हुआ कि वह मुसोलिनीके बाहुपाशमें जा फंसा और अभिवचन दे दिया कि अबीसीनियापर हमला होगा तो वह दखल नहीं देगा। मुसोलिनी जानता था कि अगर फ्रांसने दखल नहीं दिया तो इंग्लैंड भी चुप रहेगा। अब मैदान उसके लिए खुला था। इस तरह अबीसीनियाके ऊपर होनेवाला हमला इंग्लैडकी नीतिका ही सीधा परिणाम था।

ब्रिटेनने इसको सब-का-सब तो पसंद नहीं किया, क्योंकि इसमें इंग्लैडके कुछ साम्राज्यवादी हित आते थे। वे थे—नील नदीकी उत्तरी जल-धाराएं, स्वेज नहर और भूमध्यसागर। इस तरह इंग्लैडके इन साम्राज्यवादी हितों और वैदेशिक विभागकी तत्कालीन नीतिमें टक्कर होने लगी। नीति ही कायम रही, क्योंकि ब्रिटिश सरकार इटलीकी फासिस्ट सरकारको मिटाये जानेके बिलकुल खिलाफ थी। उसकी नीतिका मकसद तो था फासिज्म और नात्सीवादकी रक्षा करके उनके जरिये साम्यवादसे लड़ना। सामाजिक खतरा राजनैतिक खतरेसे बढ़कर समझा गया। लेकिन इंग्लैडकी जनता मुसोलिनीके अबीसीनियाके हमलेके सख्त खिलाफ थी और उसे तसल्ली देनेको कुछ-न-कुछ करना पड़ा। राष्ट्र-संघ कुछ कम हानिवाले अधिकारोंपर राजी हो गया और तत्कालीन वैदेशिक मंत्री सर सेम्यूअल होरने संघके सिद्धांतोंकी व्याख्या करते हुए एक भाषण दिया, जिसमें सामूहिक सुरक्षितताकी कसम खाई गई। इस तकरीरकी उचित दाद दी गई। इंग्लैड ने इसपर अपने आपको बड़ा पुण्यवान् और मन-ही-मन खुश समझा— जैसा कि वह हमेशा ही किया करता है जबकि उसके साम्राज्यवादी हितोंका मेल ऊंचे दर्जेकी नीतिमत्तासे बैठा दिया जाता है। वही सर सेम्युअल साहब जल्दी ही अपनी जेनेवाकी तकरीर बिलकुल भूल गये और उन्होंने अबीसीनियाकी बाबत मो. लेवेलके साथ एक गुप्त समझौता कर लिया। इसका भेद खुल गया और ब्रिटिश जनता-को इससे धक्का पहुंचा क्योंकि इस नीति-परिवर्तनके मुआफिक बननेके लिए उसे मौका नहीं दिया गया था। यह सेम्यूअल होरको विदा होना पड़ा। और मि. ईडन मंचपर आये।

लेकिन नीतिमें कोई बड़ी तब्दीली नहीं हुई और इंग्लैंडकी जनताकी नाराजगी और उत्तेजनाके बावजूद वैदेशिक-विभाग चुपचाप अपनी पूर्व-निश्चित नीतिपर

चलता ही रहा। राष्ट्रपति रूजवेल्टका यह सुझाव कि तेल-सनदोंको जारी किया जाये, जिससे इटलीकी शक्ति कम हो गई होती, नहीं माना गया बल्कि इसके बजाय अंग्रेजोंकी ऐंग्लो-ईरानियन तेल-कंपनी इटलीको तेल भेजनेमें रातदिन लगी रही। अबीसीनियापर आखिर बलात्कार हो ही गया।

इसी बीच हिटलर परिस्थितिका फायदा उठाकर आगे बढ़ा और उसने अपनी स्थितिको मजबूत कर लिया। फ्रांस बहुत ज्यादा भयभीत होने लगा, मगर इंग्लैड नात्सी जर्मनीके हरएक कदमपर मुस्कराता ही रहा। हां, कभी-कभी नाराजगी भी जाहिर कर देता था।

इसके बाद आया स्पेन-विद्रोह, जिसका इटली और जर्मनीने उन दोनों (इंग्लैंड और फ्रांस)की मददसे बड़ी होशियारीसे संचालन किया था। यह कसौटी कड़ी थी। यहां एक जनतंत्रके आधारपर निर्वाचित सरकारपर एक फौजी गिरोहने तनख्वाहदारों और विदेशी ताकतोंसे मिलकर हमला कर दिया था। जैसा कि हाल हीमें मि. लॉयड जार्जने पूछा है, अगर रूस स्पेनमें विद्रोहकी आग भड़का देता तो मि. चेंबरलेन क्या करते? क्या वह इसपर मुस्करा देते और स्टालिनके साथ कोई समझौता कर लेते?

एक मुश्किल और भी थी। इंग्लैंडके साम्राज्यवादी हितोंका सीधा संबंध यहां था और अगर स्पेन दुश्मनके हाथोंमें आ जाता, तो सल्तनतके लिए खतरा था। तब यूरोपका शक्ति-संतुलन बिलकुल गड़बड़ हो जाता, नात्सियोंका तानाशाही दल सबपर हावी हो जाता, फ्रांस चारों ओरसे घिर जाता, भूमध्य-सागरपर शत्रु राष्ट्रोंका कब्जा हो जाता, जिब्राल्टर मुकाबला न कर पाता और बड़े-बड़े व्यापारिक रास्ते भारी खतरेमें पड़ जाते। फिर भी चूंकि वैदेशिक विभागका प्रजातंत्र और समाजकी उन्नतिका विरोध साम्राज्यके लालचसे भी कहीं बढ़ा-चढ़ा था, इसलिए उसकी पुरानी नीति कायम रही। हस्तक्षेप न करनेकी घोषणा की गई, जिसका मतलब यह हुआ कि इटली और जर्मनी दस्तंदाजी करें और स्पेनके प्रजातंत्रीय शासनका गला घोंट दें।

अंग्रेजोंके जहाज भूमध्यसागरमें डुबो दिये गये और इंग्लैंडमें खलबली मच गई। आखिर वैदेशिक विभाग परेशान हुआ, पर सोचने लगा कि शायद यह निकटका खतरा सामाजिक खतरेसे बड़ा होगा। थोड़ी देरतक उसने दृढ़ता

दिखाई और न्योनमें मि. ईडनने घोषणा की कि इंग्लैंड इसे बर्दाश्त नहीं करेगा और अगर यह लूट जारी रही तो वह कड़ी कार्रवाई करेगा। यह पहला ही मौका था जब कि इंग्लैडने नात्सी और फासिस्ट राष्ट्रोंको अपने दांत दिखाये और स्थिति एकदम सुधर गई।

मि. ईडन और वैदेशिक विभाग इस नतीजेपर पहुंचे थे कि यह तब्दीली होना जरूरी है और थोड़ेसे अर्सेतक उन्होंने यह रास्ता अख्तियार किया। लेकिन जल्दी ही मि. नेविल चेंबरलेनने कुछ और ही सोचा। वह हेर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनीकी लल्लो-चप्पो करनेके लिए पूरी तौरपर तुले हुए थे, और इस नए प्रजातंत्रीय स्पेनसे उन्हें नफरत थी और इससे भी ज्यादा नफरत उन्हें रूसी सोवियट-संघसे थी। सो ईडन गये और उनकी जगह लार्ड हैलीफैक्स आये। अंतरंग-सभा, जिसमें प्रधानमंत्री, लार्ड हैलीफैक्स, सर जॉन साइमन और सर सेम्युअल होर थे, इनके विरोधमें कोई आवाज नहीं उठा सकती थी जिससे इन्हें तकलीफ हो। अब वे अपनी 'संतुष्ट करनेकी नीति' पर बेरोकटोक चल सकते थे, फिर चाहे उसका अंजाम इंग्लैंड और उसकी सल्तनतके लिए कुछ भी क्यों न हो। इस दुविधासे उन्हें कोई परेशानी नही हुई क्योंकि सबसे जरूरी काम हिटलर अथवा मुसोलिनीको परेशान न करना था।

सिन्योर मुसोलिनी चूंकि स्पेनके प्रजातंत्रको कुचलनेपर उतारू था इसलिए जितनी जल्दी यह हो जाता उतना ही अच्छा था। ब्रिटिश सरकारने झटपट सिन्योर मुसोलिनीके साथ एक समझौता कर लिया और फ्रांसको अपने स्पेनसे मिले हुए सीमांत प्रदेशको बंद करनेपर मजबूर किया। उन्हें बड़ी बेसब्री और उत्सुकता रही कि कब स्पेनिश प्रजातंत्र खत्म हो; लेकिन उसने तो मिटनेसे इन्कार कर दिया। इससे वे और भी चिढ़े। दरअसल, उसमें तो नई ताकत आ गई मालूम पड़ती थी। इंग्लैंड-इटलीके समझौतेके कारण मि. चेंबरलेनको इसपर हंसी आती थी। और उनको स्पेनके प्रजातंत्रका खात्मा करनेके लिए सब-कुछ करके अपने आपको सही साबित करनेमें ही अपना सम्मान दीख पड़ा। अगर इंग्लैंडके जहाजोंको तारपीडो या बमबारी से नष्ट कर दिया जाता था, तो वह इसे भी यह कहकर उचित ही ठहराते थे कि यह तो स्पेनके प्रजातंत्रकी रसद ले जानेका खतरा उठानेका कुदरती नतीजा ही था। स्पेनसे सहानुभूति रखनेके

मामलेपर दुनियामें मतभेद था। कट्टर राजभक्तिकी भावनाएं पैदा की गईं। मि. चेंबरलेनकी राजभक्ति किधर थी इसमें अब शक नहीं रह गया।

संतुष्ट करनेकी नीति चलती रही। झगड़ेका केंद्र हटकर मध्य यूरोपमें आ गया था। हिटलरने आस्ट्रियाको धमकी दी। मि. चेंबरलेनने खुले आम कह दिया—मैं आस्ट्रियाके मामलेमें दखल नहीं दूंगा। यह हिटलरको न्योता देना था और वह फौरन स्थितिका लाभ उठानेसे न चूका और घुस आया।

चेको-स्लोवाकियाको धमकी दी गई। वैदेशिक विभागसे, शायद मि. चेंबरलेनको भूलकर, हुक्म दिया गया कि अगर जर्मनी चेको-स्लोवाकियापर हमला करे तो ब्रिटिश राजदूतको बर्लिनसे हटा लिया जाय। चेकोंने सेनाओंको रातोंरात तैयार किया और मार्च १९३८का संकट टल गया। हिटलर अपनी योजनाओंपर इस प्रकार रोक लगनेपर आगबबूला हुआ। इस तरह दिखानेको मि. चेंबरलेन और लार्ड हैलीफैक्स थे ही। पर वैदेशिक विभागने दांत लगा ही दिये और आरामसे चलती हुई संतुष्ट करनेकी नीतिमें गड़बड़ कर दी। यह बर्दाश्त नहीं किया जा सका और वैदेशिक विभागके स्थायी अध्यक्ष सर राबर्ट बेसिटार्टको हटाकर उन्हें किसी मामूली ओहदेपर बदल दिया गया। उनकी जगह सर आर्नाल्ड विल्सनको मिली।

सर आर्नाल्ड संतुष्ट करनेकी नीतिको प्रोत्साहन देनेके लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। वह नात्सियोंके समर्थक थे और सोवियटके घोर विरोधी। नात्सी जर्मनीकी ओरसे जो महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली दल इंग्लैडमें काम कर रहा था, उससे उनका घनिष्ठ संबंध था। वहां क्लाइवडनके दलके और 'टाइम्स'के मालिक और संपादक और फ्रैंकोके समर्थक उत्साही व्यक्ति थे। तादादमें कम होते हुए भी वे सरकारपर हावी थे और मि. नेविल चेंबरलेन उनके खास लाड़ले थे। इंग्लैंडकी वैदेशिक नीतिपर अब फिफ्थ कॉलमका पूरा कब्जा था।

कदम-ब-कदम मध्ययूरप और स्पेनमें यह नीति चल पड़ी। चेकोंकी कमर तोड़ने और नात्सियोंको बढ़ावा देनेके लिए लार्ड रंसिमैन भेजे गये। म्यूनिक कान्फ्रेंस आई और संतुष्ट करनेकी नीतिकी पूरी जीत हो गई। शांति-स्थापना करानेवाले वीर मि. चेंबरलेन ही थे। चेको-स्लोवाकियाके लाखों घरोंमें घोर दुःख छाया हुआ था और बागियोंसे जेलें भरी हुई थीं। इन बहादुर लोगोंसे

उन लोगोंने विश्वासघात किया जिन्हें उन्होंने अपना दोस्त समझा था। दुनिया इंग्लैंड और फ्रांससे नफरत करने लगी। पश्चिममें हिटलरको संतुष्ट करने और उसे सोवियटपर हमला करनेको मजबूर करनेकी पुरानी नीति संतोष-जनक रूपसे आगे बढ़ रही थी लेकिन उसकी उन्हें क्या परवा थी ? सोवियटकी अवहेलना की गई और उसे अलग कर दिया गया। इंग्लैंड हिटलरका सबसे सच्चा दोस्त बन गया और अगर सब काम ठीक चलता रहा तो कुछ अंशों में फासिज्म, प्रजातंत्रके बुरकेमें ही सही, इंग्लैंड भी आ धमकेगा।

लेकिन सब काम ठीक नहीं चला; हालांकि स्पेन, वह प्रजातंत्रीय स्पेन जिसने संसारकी आजादीकी लड़ाईका बोझ अपने कंधोंपर उठा लिया था, इंग्लैंड और फ्रांसका छुरा खाकर मरा पड़ा था। मि. चेंबरलेन और उनकी सरकारको बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी, बड़े-बड़े खतरे मोल लेने पड़े थे और वह घड़ी आ पहुंची थी जबकि संतुष्ट करनेकी नीतिपर डटे रहनेका इनाम उन्हें मिलता। वह इनाम था जर्मनीका पश्चिमी तरफसे संतुष्ट होकर पूरबको मुड़ना और रूसके साथ उलझना। लेकिन यह इनाम हटकर दूर चला गया। यूरोपके पूरब और दक्खिन-पूरबमे अब भी ऐसे रस-भरे लुकमे मौजूद थे, जिन्हें हिटलर ले सकता था, लेकिन फिर क्या ? अचानक यह साफ हो गया कि जर्मनीका सोवियट-संघसे टक्कर लेनेका कोई इरादा नहीं है। सोवियटके सैनिक-तंत्रके लिए जर्मनीके दिलमें बहुत ज्यादा इज्जत थी और वह सोवियटके विस्तृत प्रदेशोंमें उलझ जाना नहीं चाहता था। ज्यादा आसान यह था कि उन रसीले लुकमोंको हड़प करके पीठपीछे पूर्वका दरवाजा बंद कर दिया जाय और पश्चिमकी ओर मुंह फेर लिया जाय।

यह योजना चौकानेवाली थी। संतुष्ट करनेकी नीतिकी सारी-की-सारी इमारत डगमगा रही थी। उसकी कीमत न सिर्फ इस तरह चुकानी पड़ी कि लाखोंका खून हुआ और मुसीबतें आईं, प्रजातंत्रकी बलि चढ़ गई और आदर-प्रतिष्ठा धूलमें मिल गई, बल्कि युद्धके महत्त्वपूर्ण नाके शक्तिशाली दुश्मनोंके कब्जेमें चले गये। और बदलेमें कुछ भी न मिला। आज इंग्लैंड और फ्रांसके सत्ताधारी लोग बड़े रंजके साथ चेको-स्लोवाकियाकी नष्ट हुई फौजोंके साथ स्कोडाके बड़े-बड़े कारखानोंका खयाल करते होंगे कि जो उनका काम करते,

मगर अब दुश्मनके लिए लड़ाईका सामान तैयार करेंगे। जो कुछ उन्होंने स्पेनमें किया उसपर वे बहुत-बहुत पछता रहे होंगे।

चेक राष्ट्र का आखिरकार खात्मा हो जाना, मैमेलका जर्मनीमें मिल जाना और अलबानियापर हमला होना—ये घटनाएं तेजीसे एक-के-बाद एक घटित हुईं। इंग्लैंडमें खतरा बढ़ता ही जा रहा था और टोरी दलवाले तक इसपर गुर्राने लगे और संतुष्ट करनेकी नीतिके खिलाफ विद्रोह करनेकी धमकी देने लगे। इस बातकी बहुत चर्चा होने लगी कि प्रजातंत्र खतरेमें है—वही प्रजातंत्र जिसका इन्हीं लोगोंने दो जगह (चेको-स्लोवाकिया और स्पेनमें) खात्मा कर दिया था। टोरी दलवालोंमे अपने प्रजातंत्र या आजादीके प्रेमके कारण हलचल हुई हो ऐसी बात नहीं, बल्कि इस डरसे हुई कि उनकी सल्तनत छिन न जाय और शायद उन्हीके देशकी आजादी हाथसे न चली जाय। वही पुरानी दुविधा अब और जोरके साथ उनके सामने खड़ी थी कि हम फासिस्टों-को रोककर और उन्हें बरबाद करके अपने साम्राज्यकी रक्षा करें या थोड़ी और रियायतें देकर, थोड़े और नरम होकर लड़ाईको हर हालतमें टालने और संतुष्ट करनेकी नीति अख्तियार करके अपनी समाज व्यवस्थाकी हिफाजत करते रहें। रियायतें तो अबतक दूसरे लोगोंके मालमेंसे दी जाती रही थीं, लेकिन अब तो ऐसा वक्त आ गया था कि अपने जिस्ममेंसे गोश्त काट-काट कर देना पड़े। म्यूनिक-में और उसके बाद जो कुछ हुआ उससे इंग्लैड और फ्रांस बुरी तरह कमजोर पड़ गये थे और आगे भी संतुष्ट करना जारी रहा तो वे इतने कमजोर हो जायेंगे कि उन्हें टक्कर लेना भी मुश्किल हो जायगा। हां, अकेला रूस ऐसा राष्ट्र था जो उनको बचा सकता था; मगर वह उदास और नाराज था और किसी फंदेमें नहीं पड़ना चाहता था।

यह पासका खतरा इतना बड़ा था कि उसे कैसे दरगुजर किया जाता? और समाज-व्यवस्था बिगड़नेका दूसरा खतरा इससे कम महत्त्वका समझा गया। इस बातकी पुकार इंग्लैडमें जोरोंपर थी कि संतुष्ट करनेकी नीति छोड़ देनी चाहिए और सोवियट रूसके साथ मिलकर नात्सी जर्मनी और फासिस्ट इटलीके खिलाफ एक मजबूत मोर्चा लेना चाहिए। चेंबरलेन साहब चतुर राजनीतिज्ञ ठहरे, उन्होंने इस हवाको देखकर रुख बदला और नीति-परिवर्तनका ऐलान कर दिया। हर

जगह खुशियां मनाई जाने लगीं और ऐसा जान पड़ा कि एक भयंकर परेशानी मिट गई ।

लेकिन क्या चेंबरलेन साहबने नीति बदल दी थी ? उन्होंने पोलैंड और रूमानियाको ऐसे आश्वासन दे दिये थे कि जो बिना सोवियटकी सहायताके सफलतापूर्वक पूरे नहीं हो सकते थे । इसलिए दोमेंसे एक रास्ता था—या तो सोवियटके पास जायें और उससे समझौता करें, या फिर जब मौका आये, तब आश्वासनको भूल जायें और विश्वासघात करें ।

क्या चेंबरलेन साहब बदल गये थे ? यह होने जैसा न था । वह एक कठोर आदमी हैं और वैदेशिक नीतिके संबंधमें उनके विचार अटल हैं और मध्ययूरोप और स्पेनमें जो कुछ हुआ उसके बावजूद वह अपनी उस नीतिसे नहीं डिगे हैं । रूस और उसके तमाम सिद्धांत उन्हें पसंद नहीं थे । वे अपनी इस भावनाके वशमें थे । क्या वह अपनी भावनाओं और धारणाओंको दूर करके अपनी नीतिकी हार मंजूर करते ? यह भी अनहोनी-सी बात थी । और उनके पिछले न निभाये गये आश्वासनों और बार-बार बदल जानेवाली उनकी राजनीतिक ईमानदारी में किसीको भरोसा नहीं रह गया था । उन्होंने अपनी नीतिमें परिवर्तन करनेका ऐलान कर भी दिया था, तो कितने लोग उसपर विश्वास करते ?

लेकिन उनकी बातोंसे ज्यादा तो उनकी कारगुजारियां जोर-जोरसे बोल रही थीं और साफ बता रही थीं कि वह अब भी पहलेकी तरह संतुष्ट करनेकी नीतिपर कायम है । अलबानियाकी घटनाके बाद भी वह इंग्लैंड व इटलीकी संधिको निभाते रहे । स्पेनका जो भयानक और दुःखद अंत हुआ, उसके शरणार्थी लोग जिस तरह भूखों मरे वह सब होते हुए भी उनके प्रतिनिधिने मैड्रिडमें होनेवाले फ्रेंकोके विजयोत्सवमें हाजिरी दी थी। सर नेविल हेंडरसन, जो संतुष्ट करनेकी नीतिके नात्सीभक्त समर्थक थे, वापस अपनी राजदूतकी जगह बर्लिन भेज दिये गये, वहां उनकी वॉन रिबनट्रापने तौहीन की, क्योंकि उसे उनसे मिलनेकी फुरसत तक नहीं थी । लंदनके 'टाइम्स'ने अपने शरारत भरे ढंगसे यह सुझाया कि डांजिग कोई ऐसी जगह नहीं है जिसके लिए लड़ाई लड़ी जाय, इसलिए जैसा कि पिछले साल सुडेटनलैंडमें हुआ, जर्मनीको जाकर उसपर कब्जा करना चाहिए । 'टाइम्स' इस बातके लिए बदनाम है कि ऐसे मामलोंमें वह मि. चेंबरलेन और

लार्ड हैलीफेक्स का प्रतिनिधित्व करता है। कामन-सभामें चेंबरलेन साहब इस बातका आश्वासन देनेसे इन्कार कर देते है कि वह बोहेमिया और मोरेवियाकी विजयको स्वीकार नहीं करेंगे। अखबारोंमें बड़ी सूझवाली खबरें छपती हैं कि दूसरी म्यूनिक कान्फ्रेंस होनेवाली है। फिफ्थ कालम फिरसे जोरोंसे काम कर रहा है और खुश करनेकी नीतिका बोलबाला है।

इसी बीच खतरेकी भावनाका फायदा उठाते हुए मि. चेंबरलेनने सेनाकी अनिवार्य भर्ती शुरू करदी है। इसका असली मतलब क्या है? एक अंग्रेज सेनापतिने हालमें ही यह कहा था कि इंग्लैंडके विरोधी लोगोंको दबानेके लिए ऐसी फौजी भर्ती बहुत फायदेमंद है। लड़ाईकी तैयारियोंके बुर्केमें चेंबरलेन साहब इंग्लैंडमें अंदरूनी फासिज्मके रास्तेपर जा रहे हैं और मुमकिन है कि उनको कामयाबी मिल जाय। अखबारोंपर सेंसर बैठ जायगा, उनपर कड़ी देखरेख हो जायगी और सार्वजनिक जीवनपर पाबंदियां लगा दी जायेंगी। इंग्लैंडमें फासिज्मके समर्थक लोग लड़ाई में हार जाना तक मंजूर कर लेंगे, मगर 'सोवियट संघ' और दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रोंसे मिलना पसंद न करेंगे। यह नीति है जिसपर चलनेपर चेंबरलेन साहब उतारू है और दरअसल चल रहे है।

लेकिन इंग्लैंडमें एक ऐसा शक्तिशाली दल है और उसमें टोरी पार्टीके कुछ नेता शामिल हैं, जो इस नीतिके खिलाफ हैं और नात्सी जर्मनीसे लड़नेके लिए सोवियटसे मित्रता कर लेना चाहते हैं। मि. चेंबरलेनको उन्हें भी तसल्ली देनी है, और इस मकसदके लिए वह सोवियटसे बातचीत चलाते हैं। उन्होंने रूसके आगे जो सुझाव रखे वे बड़ी खूबीके और किसीकी पकड़में न आने-जैसे थे। रूसने इन्कार कर दिया और सारे हमलोंके खिलाफ एक वास्तविक संधिका प्रस्ताव किया। अगर मि. चेंबरलेन आक्रमणोंको रोकनेके लिए सचमुच चिंतित होते तो ऐसी संधिको मंजूर करनेमें उनको कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए थी लेकिन उन्हें ऐसी कोई चिंता थी ही नहीं। उनकी तो सारी ताकत इस मकसदके लिए लग रही थी कि फासिज्मके लिए दुनिया निष्कंटक हो जाय और इंग्लैंड फासिस्ट देशोंके साथ हो जाय।

यह हो सकता है कि घटनाओं और उनके ही लोगोंके दबावसे मजबूर होकर वह सोवियटके साथ शर्तें करें, लेकिन इतनेपर भी उनका विश्वास करे कौन?

वह अपनी संतुष्ट करनेकी परमप्रिय नीतिको नहीं छोड़ेंगे और पहलेकी तरह अपने दोस्तों और साथियोंको धोखा देंगे। भले ही युद्ध छिड़ जाये और मि० चेंबरलेनके नेतृत्वमें इंग्लैंडको उसमें पड़ना भी पड़े, तो भी इस बातका निश्चय नहीं है कि संतुष्ट करनेकी नीतिका अंत हो जायगा। उस युद्धमे म्यूनिक भी आ सकता है। कुछेक लायक दूरदर्शियोंका मत है कि बहुत मुमकिन है कि कुछ हफ्तोंके नरसंहारके बाद जब कि लोगोंकी नसें ढीली पड़ जायें, मि. चेंबरलेन-से कोई फायदेकी पृथक् सधि करनेके लिए कहा जाये और वह शायद मंजूर कर लें, जिससे देशमे और विदेशमें फासिज्म सुरक्षित रहे। लड़ाईसे अंदरूनी फासिज्मके साज-सामान जमानेमें मदद मिलेगी।

आज फ्रांसमें फौजी डिक्टेटरशाही (अधिनायकत्व)का राज है और चेंबर ऑव डेप्यूटीजकी कोई ज्यादा कीमत नही है। जनतंत्रात्मक आजादीकी चंद बातें बनी रहने दी गई हैं, लेकिन वे भी अधिकारियोंकी मेहरबानीपर हैं। वह फ्रांस, जिसने एक दिन स्पेनके प्रजातंत्रको अस्त्र-शस्त्र तो क्या खाना तक देनेसे इन्कार कर दिया था, आज फ्रेंकोके पास हथियार-पर-हथियार भेज रहा है। वे सब-के-सब हथियार जिन्हें प्रजातंत्रकी फौजें फ्रांसमें छोड़ गई थी, फ्रेंकोको दिये जा रहे हैं। वह स्पेनका सोना भी, जो पेरिसमें था और प्रजातंत्रको नही दिया गया था, फ्रेंकोको सौंपा जा रहा है और फ्रेंकोका ताल्लुक रोम-बर्लिन धुरीसे है। क्या यह संतुष्ट करनेकी नीतिका परित्याग है? क्या जनतंत्रात्मक ढंगपर शांतिका मोर्चा तैयार करनेका यही तरीका है?

यह बात हमारे दिमागमें साफ हो जाय कि संतुष्ट करनेकी वही पुरानी नीति जारी है और वही पुरानी धोखेबाजियां अब भी चलती रहेंगी, क्योंकि इंग्लैंड और फ्रांसपर हुकूमत करनेवालोंके दिमागमें दूसरा कोई डर इतना नहीं है जितना सामाजिक परिवर्तन होनेका डर है। जबतक चेंबरलेन साहबके हाथमें ताकत है, तबतक कोई खास तब्दीली होनेवाली नही है और घटनाएं उनको तब्दीलियां करनेको मजबूर करें तो भी वह अपने पुराने तरीकेसे ही पीछे लगे रहेंगे और जब मौका मिलेगा तब उनपर चलने लगेंगे।

लेकिन इंग्लैंडके शासकवर्गके दिमागोंमें भी यह दुविधा है कि हम फासिस्ट हमलोंको रोककर और फासिज्मको बर्बाद करके अपने साम्राज्यकी रक्षा करें

या थोड़ी और रियायतें दे-दिलाकर थोड़े और नरम होजाकर लड़ाईको हर तरहसे टालने और संतुष्ट करनेकी नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्थाकी हिफाजत कर लें। इसके जवाबमें मि. चेंबरलेनको कोई शक नही है। वह तो समाज-व्यवस्था और फासिज्मपर अड़े हुए हैं।

हम हिंदुस्तानियोंके लिए ऐसी कोई दुविधा नही है, क्योंकि हम उस सल्तनत और उस समाज-व्यवस्था दोनोंका अंत चाहते हैं। और इसलिए चाहे लड़ाई अभी शुरू हो चाहे देरमें, हम उसमें हिस्सा नही ले सकते, बशर्ते कि हमको स्वतंत्र राष्ट्र माना जाय और स्वतंत्रतापूर्वक वास्तविक जनसत्ता और शांति चाहनेका अधिकारी समझ लिया जाय। मि. चेंबरलेनके नेतृत्व या अंग्रेजी साम्राज्यवादके चंगुलमें रहकर न तो जनसत्ता मिल सकती है, न शांति। वह रास्ता तो फासिज्म और जनतंत्रके साथ विश्वासघात करनेका है। वह रास्ता तो भारतके अधिकाधिक शोषण और उसे अपमानित करनेका ही है।

यह भाग्यका एक व्यंग है कि फासिज्ममें विश्वास रखते हुए भी और जनतंत्र-का शायद किसी भी व्यक्तिसे अधिक नुकसान करनेवाले होते हुए भी आज मि. नेविल चेंबरलेन अंग्रेजी प्रजातंत्रके नेता बनते हैं, मो. दलैदिये फ्रांसके डिक्टेटर हैं और लार्ड हैलीफैक्स और नात्सीभक्त मो. बोनेट इंग्लैंड और फ्रांस केवैदेशिक मंत्री हैं। क्या इन्हीं लोगोंसे जनतंत्रवाद प्रेरणा पायेगा या मुक्तिकी आशा करेगा? रूजवेल्ट जैसी महान् जनतंत्रात्मक मूर्तिके आगे ये सब लोग कितने नगण्य लगते हैं।

लेकिन जनतंत्रके इन ढोंगी मसीहाओंके भुलावेमें हम न आवें। हमारे लिए तो जनसत्ताका अर्थ है—हमारी जनताकी आजादी। यही हमारी कड़ी कसौटी है।

३१ मई, १९३९

: ९ :

युद्ध और शांतिके ध्येय

१

कांग्रेसकी कार्य-समितिने जो वक्तव्य दिया है, उससे जनताका ध्यान युद्ध-स्थितिके कुछ पहलुओंकी तरफ गया है। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उन्हें

दरगुजर किया गया था, एक तरफ तो यह मनोवृत्ति थी कि बिना किसी विचार, ध्येय या उद्देश्यके हिंदुस्तानके लड़ाईमें कूद पड़नेकी बात की जाती थी और दूसरी तरफ कहा जाता था कि लड़ाईका बिना सोचे-समझे प्रतिरोध होना चाहिए। ये दोनों रुख निषेधात्मक थे; इनमें न तो मौजूदा स्थितिकी असलियतपर और न दुनिया और हिंदुस्तानमें हो चुके बहुत-से रद्दोबदलपर ध्यान दिया गया था। दोनोंमेंसे एक भी रुख रचनात्मक राजनीतिज्ञताका नहीं था। अपने इस रचनात्मक मार्ग-दर्शनसे कार्यसमितिने राष्ट्रकी महान् सेवा की है। वह सेवा हिंदुस्तानकी ही नहीं है बल्कि उन सबकी भी है जो स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और नई व्यवस्थाकी बात सोचते हैं और ऐसे लोगोंकी तादाद आज दुनियामें बहुत ज्यादा है। परिणामस्वरूप कार्य-समितिने दुनियाभरकी प्रगतिशील शक्तियोंका नेतृत्व किया है। हम नहीं जानते कि हिंदुस्तानकी यह आवाज लड़ाईके और संपर्क बनाये रखनेकी कठिनाईके इन दिनोंमें कितनी दूर पहुंचेगी और हिंदुस्तानके बाहर कितने लोग उसे सुनेंगे? लेकिन हमें यकीन है कि जिनतक यह आवाज पहुंचेगी वे इसका स्वागत ही करेंगे और इस बातका समर्थन करेंगे कि युद्ध और शांतिके ध्येयोंकी स्पष्ट व्याख्या हो जानी चाहिए।

कार्यसमितिके प्रस्तावमें जरूरी तौरपर कुछ मोटे सिद्धांतोंपर विचार किया गया है। मगर इन सिद्धांतोंको स्थूल रूप देना होगा और हमको यह मुनासिब मालूम होता है कि इस मामले पर सार्वजनिक रूपसे विचार होना चाहिए। इस विकट संकटमें हममेंसे कोई भी विरोध द्वारा या कोरे नारे लगाकर बच नहीं सकता, चाहे उनकी आवाज कितनी ही भली क्यों न लगती हो। अगर उन नारोंका असलियतसे कोई संबंध है तो वे वर्तमान परिस्थितियोंमें अमलमें आने लायक होने चाहिए। उसी अमलके लिए हमें अपनी ओर मुखातिब होना चाहिए। हो सकता है हमारी कोशिशें बेकार रहें और वह अमल आज न हो सके। भूतकालकी विरासत और इस जमानेकी जोरदार मांगसे हम संघर्ष और उसके तमाम बद-किस्मत नतीजोंकी ओर बढ़ते जा रहे हैं। यह हिंदुस्तान और दुनियाके लिए दुर्भाग्यकी बात होगी, खासतौरसे इस वक्त जबकि दुनियाभरके लोगोंके दमन और अत्याचार और शोषणसे छुटकारा दिलानेके लिए निडर राजनेतृत्वकी मांग है। रास्ता मुश्किल है। फिर भी रास्ता तो है ही। भले ही रुकावटें बहुत-सी

है और सब-की-सब हमारे हाथों पैदा नहीं हुई है पर एक दरवाजा भी है जिसमें होकर हम भविष्यके बागमें जा सकते हैं; लेकिन उस दरवाजेपर बेवकूफीका, पुराने जमानेके विशेषाधिकारोंका और स्थापित स्वार्थोंका पहरा लग रहा है।

युद्धके और शांतिके उद्देश्योंपर विचार करनेसे पहले हम यह स्पष्ट कर दें कि इस समस्यापर हम किस तरहसे विचार करेंगे ? हिंदुस्तानके लिए आज लड़ाई एक दूरकी बात है, वह काफी भड़कानेवाली चीज है लेकिन हमसे कुछ अलग है। हमपर उसका असर पड़ता ही नहीं। यूरोपमें और दूसरी जगह ऐसा नहीं है क्योंकि वहां तो वह लड़ाई असंख्य लोगोंके लिए एक लगातार दुःख और मुसीबतके रूपमें है, सरपर मंडरानेवाला खतरा है, मौत है, बरबादी है और दिलको तोड़ डालनेवाला तनाव है। यूरोपमें एक भी घर ऐसा नहीं है जो इस दिलको दहलानेवाली घबराहट और पस्तहिम्मतीसे बचा हुआ हो; क्योंकि जिस दुनियाको वे जानते हैं, उसीका अंत आगया है और उनपर खौफ छा गया है—ऐसा खौफ कि जिसकी उनके, उनके प्रियजनों और उस सबके लिए कि जिसका मूल्य उनके लिए बहुत रहा है, कोई हद नहीं है। बहादुर आदमी और औरतें उन तात्त्विक शक्तियोंके हाथके मोहरे बने हुए हैं जिन्हें वे काबूमें नहीं रख सकते। वे इस मसलेका दिलेरीके साथ मुकाबला करते हैं; लेकिन जिस एकमात्र आशासे उनके मन थोड़ी देरके लिए चमक उठते हैं, वह है दुनियाके एक बेहतरीन भविष्यकी आशा, ताकि उनके त्याग और बलिदान बेकार न चले जायं।

हम इन जुदा-जुदा मुल्कोंके रहनेवालोंके बारेमें, चाहे वह पोलैंड हो या फ्रांस हो या इंग्लैंड हो या रूस हो या जर्मनी हो, इज्जत और पूरी हमदर्दीके साथ खयाल करें, उनकी मुसीबतका मजाक उड़ानेकी कल्पना न करें, या बे-सोचे-समझे ऐसा कुछ न कहें जिससे उन लोगोंको चोट लगे, जिन्हें वह भारी बोझ उठाना है। इंग्लैंडसे हमारा पुराना झगड़ा चला आता है, पर वह वहांके लोगोंसे नहीं। हमें आजादी मिल जाये, तो उसके साथ वह झगड़ा भी खत्म हो जायगा। तभी हम इंग्लैंडके साथ बराबरीकी शर्तपर दोस्ती कर सकते हैं। लेकिन दूसरे देशोंकी तरह अंग्रेजोंके साथ भी उनकी मौजूदा मुसीबतमें हमारी सहानुभूति और सद्भावना ही है। हम यह भी जानते हैं कि उनकी साम्राज्यवादी सरकारने चाहे कुछ भी किया हो, या आगे करे, अंग्रेजोंमें आज भी आजादी और प्रजातंत्रके लिए

बड़ी हमदर्दी है। इन्हीं आदर्शोंके लिए वे लड़ते हैं। यही आदर्श हमारे भी है; हालांकि हमें डर है कि सरकारें अपने शब्दों और कथनोंको झूठा कर सकती हैं। दुनियाके बहुतसे हिस्सोंमें, खासकर हिंदुस्तानमें, अब भी साम्राज्यवादका बोलबाला है। फिर भी १९३९ कोई १९१४ नहीं है। इन पच्चीस बरसोंमें दुनियामें और हिंदुस्तानमें बड़ी-बड़ी तब्दीलियां हो चुकी हैं--- तब्दीलियां जिन्होंने बाहरी ढांचेको उतना ही पलटा है जितना कि लोगोंके दिमागोंको पलटा है और उनमें इच्छा पैदा कर दी है कि इस बाहरी ढांचेको बदलकर उस व्यवस्थाका खातमा कर दें जिसकी बुनियाद हिंसा और संघर्षपर है।

हिंदुस्तानमें भी सन् १९१४में हम जैसे थे, उमसे अब बहुत बदल चुके है। हममें ताकत आ गई है, और आ गई है राजनीतिक सजगता और मिलकर काम करनेकी शक्ति। अपनी बहुत-सी मुश्किलों और समस्याओंके बावजूद आज हमारा राष्ट्र कमजोर नहीं है। हम जो कहते हैं उसकी अंतर्राष्ट्रीय मामलोंतकमें कुछ हदतक कीमत है। अगर हम आजाद होते तो शायद इस लड़ाईको रोकनेतकमें कामयाब हो गये होते। कभी-कभी हमारे सामने आयरलैंडकी मिसाल रखी जाती है। यह ठीक है कि आयरलैंड और उसकी आजादीकी जद्दोजहदसे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं, पर हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारी हालत जुदा है। आयरलैंड तो एक छोटा-सा मुल्क है, जो भौगोलिक और आर्थिक रूपसे इंग्लैंडसे बंधा हुआ है। आयरलैंड आजाद हो तो भी वह दुनियाके मामलोंमें कोई ज्यादा फर्क नहीं पैदा कर सकता। हिंदुस्तानके साथ यह बात नहीं है। आजाद हिदुस्तान अपने बड़े-बड़े साधनोंके कारण दुनिया और मानव-जातिकी बड़ी भारी सेवा कर सकता है। हिदुस्तान हमेशा दुनियाको बदलनेवाला मुल्क रहेगा। भाग्यने हमें बड़ी चीजोंके लिए बनाया है। जब हम गिरते हैं, तो नीचे गिर जाते हैं, जब हम ऊपर उठते हैं तो लाजिमी तौरसे दुनियाके नाटकमें भाग लेते हैं।

जैसा कि कार्यसमितिने कहा है, यह लड़ाई उन सब तरहके विरोधों और संघर्षोंकी उपज है जो मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ढांचेमें पाये जाते हैं। लेकिन लड़ाईका तात्कालिक कारण तो फासिज्म और नात्सीवादकी तरक्की और उसके हमले हैं। जबसे नात्सी जर्मनीका जन्म हुआ है, तबसे कांग्रेसने सच्ची

गहरी निगाहसे देखकर फासिज्मकी निंदा की है और उसने देखा है कि साम्राज्य-वादके उसूल ही घने होकर फासिज्म बन गये है। कांग्रेसमे लगातार जो प्रस्ताव हुए है उनसे इस फैसलेका सबूत मिलता है। इसलिए यह साफ है कि हमें फासिज्म का विरोध करना चाहिए और उसपर विजय पाना हमारी भी विजय होगी। लेकिन हमारे लिए इस विजयका मतलब केवल यह होगा कि साम्राज्यवादका ज्यादा विस्तार होगा। अपनी आजादी और उसे पानेकी कशमकशको तिलाजलि देकर हम फासिज्मके ऊपर विजय नहीं पा सकते।

अगर हम बाजारू तरीकेसे सौदा करेगे तो उसमे न तो हमारा मकसद ही पूरा होगा न विश्वव्यापी संकटके वक्त वह हिंदुस्तानकी शानके लायक ही होगा। हमारी आजादी इतनी कीमती है कि उसके लिए सौदा नही किया जा सकता। बल्कि दुनियाके टेढ़े रास्तेपर जानेकी वजहसे भी उसकी कीमत इतनी ज्यादा है कि उसे दरगुजर किया या एक तरफ डाला नहीं जा सकता। दुनिया भरकी जिस आजादीकी घोषणा की जा रही है, उसका आधार और नींव ही यह आजादी है। अगर उस आजादीके लिए संयुक्त प्रयत्न करनेमें हमे हिस्सा लेना है, तो वह प्रयत्न वास्तवमे मिलकर ही होना चाहिए, और उसका आधार स्वतत्र और बराबरवालोकी रजामदीपर होना चाहिए, नही तो उसका कोई मतलब न होगा, कोई कीमत न होगी। लड़ाईमें जीत होनेके खयालसे भी यह महत्त्वकी बात है कि आजादीके साथ मिलकर लड़ाईमें शामिल हुआ जाय। लड़ाईमे जिन उद्देश्योका पूरा होना माना जाता है उनके व्यापक दृष्टिकोणसे भी हमारी आजादी जरूरी चीज है।

हम समझते है कि युद्ध और शांतिके ध्येयोंकी समस्यापर किसी तरहका विचार करनेकी पृष्ठभूमि यही है।

२१ सितंबर, १९३९

२

लड़ाईका अंजाम क्या होगा? वह कबतक चलती रहेगी? सोवियट रूस क्या करेगा? क्या पोलैडको कुचलनेके बाद हिटलर सुलह चाहेगा? इन और इन जैसे दूसरे सवालोंका जवाब देनेका हम दावा नहीं करते, और जो जवाब देनेकी कोशिश करते हैं, उन्हें शायद वैसा करना मुनासिब नही है। मगर हमारा

यकीन है कि अगर यह लड़ाई आधुनिक सभ्यताका सत्यानाश नहीं करती, तो वह इन मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थामें रद्दोबदल तो ला ही देगी। लड़ाईके बाद पुराने तरीकोंपर साम्राज्य और साम्राज्यवाद चले इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

दुनियाकी जो स्थिति है उसमें इस वक्त सोवियट रूसका हिस्सा बड़ा रहस्य-भरा है। यह तो साफ है कि रूस जो कुछ भी करेगा, उसके परिणाम महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होंगे। लेकिन चूकि हम नहीं जानते कि वह क्या करेगा, इसलिए अपने मौजूदा हिसाबमेंसे उसे छोड़ देते हैं। रूस और जर्मनीके बीच जो समझौता हुआ, उससे बहुतोंको धक्का लगा और अचरज हुआ। जिस तरीकेसे समझौता किया गया और उसके लिए जो मौका चुना गया, उसे छोड़कर उसमें कोई बात अचरजकी नहीं थी। किसी दूसरे वक्त रूसकी विदेशी नीतिके साथ वह कुदरतन् मेल खा सकता था। लेकिन इसमें शक नहीं कि उस खास अवसरपर उससे रूसके बहुतसे दोस्तोंको अचंभा हुआ। ऐसा लगा कि उसमें उसकी बहुत बड़ी ज्यादती, शरारत और मौकेसे फायदा उठानेकी वृत्ति थी। यह आलोचना हिटलरपर भी लागू होती थी, जिसने रातों-रात अपना उग्र साम्यवाद-विरोध छोड़ दिया और जाहिरा तौरपर रूसके साथ दोस्ती कर ली। एक शरारती आदमीने तानेके साथ कहा कि रूसने कोमिटर्न-विरोधी समझौता कर लिया है, दूसरेने कहा कि हिटलर साम्यवादी और यहूदियोंका हामी होता जा रहा है। यह सब हमको वाहियात मालूम होता है; क्योंकि हिटलर और स्टालिनके बीच कोई असली समझौता नहीं हो सकता और न होने जा रहा है। बल्कि दोनों सत्ताधारी राजनीतिके खेल खेलना चाहते हैं। रूसने इंग्लैंडके हाथों इतनी बे-इज़्जती सही है कि वह इसकी कड़ी मुखालफ़त करेगा ही।

सोवियट के पूर्वी पोलैंडमें घुस आनेसे एक धक्का और लगा; लेकिन अभी यह कहना मुश्किल है कि आया ऐसा जर्मन फौजका मुकाबिला करनेके लिए या पोलैंडवालोंको कमजोर करनेके लिए या एक राष्ट्रवादी दृष्टिबिंदुसे किसी खास मौकेसे फायदा उठानेके लिए हुआ था। बहरहाल जो थोड़ी-बहुत खबर हमें मिली है, उससे पता चलता है कि रूसके पोलैंडमें बढ़नेसे निश्चित ही जर्मनीके इरादोंमें रुकावट हुई है। उससे जर्मनीके पूर्वी पोलैंडको ले लेनेमें भी रोक लगी

और जर्मन फौजको रुकना पड़ा। इससे भी ज्यादा महत्त्वकी बात सोवियट फौजका पोलिश-रूमानिया सीमाको ले लेना है। इससे यह निश्चित हो गया है कि जर्मनी रूमानियाके तेलके इलाकोंपर कब्जा नहीं कर सकता कि जिसपर उसकी घात थी और शायद रूमानियाकी गेहूंकी भारी रसद भी नहीं हथिया सकता। बाल्कन राज्य जर्मनीके हमलेसे बच गये हैं और तुर्कीने तसल्लीकी सांस ली है। भले ही आज इस सबका मतलब कुछ न हो; लेकिन आइंदा ज्यों-ज्यों लड़ाई आगे बढ़ेगी, त्यों-त्यों इसका बहुत ही महत्त्व होता जायेगा। इस तरह सोवियट रूसने पश्चिमी मित्र-राष्ट्रोंके काममें भारी मदद की है और बर्नार्ड शॉके इस कथनमें कुछ सचाई है कि स्टालिनने हिटलरको अपने हाथकी कठपुतली बना लिया है।

हिटलर ने अपने डांजिगके भाषणमें डराया है कि उसके पास एक भयंकर गुप्त हथियार है और अगर स्थितिने मजबूर किया तो भले ही वह कितना ही हैवानियत भरा हो उसे इस्तेमाल करनेमें नहीं हिचकिचायेगा। कोई नहीं जानता कि यह अनोखी भयंकर चीज क्या है? मौतकी फांस है या वैसी ही कोई चीज? हो सकता है कि यह कोरी डींग ही हो। हरेक ताकतवर राष्ट्रके शस्त्रागारोंमें आज मानवजातिके लिए काफी भयंकर अस्त्र-शस्त्र हैं; और ज्यों-ज्यों लड़ाई बढ़ेगी, त्यों-त्यों उस भयंकरतामें भी बढ़ती होगी और विज्ञानकी सारी शक्तियां युद्धकी न बुझनेवाली खूनी प्यासको बुझानेके लिए जुटाई गई हैं। हम नहीं कह सकते कि इस भयानक चढ़ा-ऊपरीमें किस पक्षको लाभ रहेगा।

काफी संहार करनेवाले और बर्बादी ढानेवाले होते हुए भी हवाई जहाज अबतक एक महत्वपूर्ण चीज नहीं रहे, जैसा कि कुछ लोग उम्मीद रखते थे। शायद अभी हमने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता देखा नही है। लेकिन स्पेन और चीनमें जो अनुभव हुआ है, उससे और हवाई जहाजोंके हमलेसे बचावके साधनोंमें जो उन्नति हुई है उससे पता चलता है कि हवाई अस्त्र निपटारा करनेवाली चीज न होंगे।

कहा जाता है कि इस बातका मौका है कि शायद हिटलर अपने पोलैंडकी लड़ाई खत्म हो जानेके बाद सुलह करनेकी कोशिश करे या मुसोलिनी इस बारेमें उसकी तरफसे कुछ करे। लेकिन शांति तब भी नही होगी, क्योंकि शांतिका मतलब

तो है हिटलरको जीत होना और उसकी ताकतके आगे इंग्लडका और फ्रांसका झुक जाना। पर इंग्लैंड या फ्रांसमें संतुष्ट करनेकी नीतिके कुछ हामी भले ही हों, लेकिन वहांके लोगोंका स्वभाव उन्हें वैसा करने न देगा। कुछ-कुछ संभावना इस बातकी भी है कि जर्मनीमें अंदरूनी कठिनाई उठ खड़ी हो जो लड़ाईको जल्दी खत्म करा दे। लेकिन युद्धकी इस शुरूकी अवस्थामे उसके आसार रहना भी खतरेसे खाली नही है। इसलिए ऐसा दीखता है कि लड़ाई लंबी, दो-तीन बरस तक चलेगी।

इस लड़ाईमे बहुत ज्यादा अनिश्चित बाते है जिनकी वजहसे कोई भविष्य-वाणी नही की जा सकती। लेकिन फिर भी आदमीके दिमागको आगे देखना चाहिए और भविष्यके परदेमें झांकनेकी कोशिश करनी चाहिए। भविष्य तो यही बताता दीखता है कि लड़ाईका क्षेत्र बढ़ेगा और अधिक-से-अधिक राष्ट्र उसमें खिंच आवेंगे। फलस्वरूप यह युद्ध विश्व-व्यापी युद्ध हो जायगा, जिसमें तटस्थ रहनेवाले देशोंकी कोई गिनती न होगी और बरबादी ढाता हुआ, हत्याएं करता हुआ, दुनियाको उजाड़ता और मिटाता हुआ साल-पर-साल यह युद्ध चलता रहेगा; और तब युद्धसे जर्जर मानव-जातिको समझ आयेगी और वह उसके खिलाफ बगावत करके उसका अंत करेगी।

इस लंबी लड़ाईमे फायदे सभी पश्चिमी मित्र-राष्ट्रोंको हैं। उनके आर्थिक साधन जर्मनीकी बनिस्बत कहीं बढ़े-चढे हैं और वे दुनियाके बहुत बड़े हिस्सेपर निर्भर रह सकेंगे। जर्मनीकी पनडुब्बियों, जहाजोंकी हलचलों और हवाई जहाजोंके साधनोंके बावजूद समुद्री रास्ते सब करीब-करीब उन्हींके कब्जेमे है। अमरीका, एशिया और अफ्रीका उन्हें बहुत-सी जरूरतकी चीजे दे देंगे, जबकि जर्मनीके साधन जुटानेके स्रोत तो बहुत थोड़े-से हैं। सोवियट रूस क्या करेगा, फिलहाल यह हम छोड़े देते हैं। सैनिक और आर्थिक दृष्टिसे उसका भारी महत्त्व हो सकता है; लेकिन यह तो हमें कुछ ही अनहोनी बात दिखाई देती है कि रूस नात्सी जर्मनी-को मदद दे।

दूसरे देश अगर लड़ाईमें शरीक हुए तो सिर्फ इटली और जापानके ही जर्मनीके साथ होनेकी संभावना है। रूस कुछ हदतक जापानकी फौजी तैयारियां रोक देगा। चीनपर अपने हमलेके सबबसे वह संजीदा हो गया है। इटलीका भूमध्यसागरमें महत्त्व होगा; लेकिन खास नहीं। एक तटस्थ देश रहकर

और खानेकी व दूसरी जरूरतकी चीजें भेजकर और इस तरह नाकेबंदी को तोड़कर जर्मनीके लिए वह ज्यादा फायदेमंद भी हो सकता है। कुछ भी हो, इंग्लैंड और फ्रांसके खिलाफ लड़ाई इटलीमें बहुत पसंद नहीं की जायगी। कहा जाता है कि सिन्योर मुसोलिनीका हिटलरसे जो प्रेम था वह भी हल्का पड़ गया है। फिर भी इटलीका जर्मनीसे मिल जाना मुमकिन है।

अगर संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी मित्र-राष्ट्रोंसे मिल गया तो उनको बहुत ज्यादा ताकत हासिल हो जायगी। फिलहाल तो संयुक्त राज्यकी मनोवृत्ति तटस्थ रहने की है, लेकिन उससे बढ़ी-चढ़ी तो उसकी हिटलर-नात्सी-विरोधी भावना है। किसी भी हालतमें अमरीका हिटलरकी जीत होना बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसलिए बहुत मुमकिन है कि लड़ाईके बादकी स्थितिमें संयुक्त राज्य इंग्लैंड और फ्रांसके साथ शरीक हो जाय। शरीक होनेसे पहले वह उनकी लड़ाईकी जरूरतोंको पूरा करके उनकी मदद करेगा जैसा कि पिछली लड़ाईमें किया था। इस मददसे ही लड़ाईमें शरीक होनेके लिए उसे मजबूर होना पड़ेगा।

इस लड़ाके और विरोधी साम्राज्यवादोंकी टक्करके बुनियादी कारण कुछ भी हों, आखिरी कारण तो नात्सियोंका हमला था। पिछले अठारह महीनोंसे मध्य यूरोपमें जो नात्सी आक्रमण बराबर चल रहा है, उसने नात्सी आक्रमणके खिलाफ दुनियाभरके ज्यादातर लोगोंके खयाल खराब कर दिये हैं। उनकी निगाहमें नात्सी आक्रमण अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें बुराईका पुतला है। पश्चिमी मित्र-राष्ट्रोंके हकमें यह एक बड़ी जोरदार मनोवैज्ञानिक बात है। जर्मनीकी अंदरूनी कठिनाइयोंकी जो हालमें ही खबरें मिली है, उनमें अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन ऐसी कठिनाइयोंका होना हमेशा मुमकिन है, खासतौरसे उस हालतमें जबकि लड़ाई आगे खिचती चले और उससे लोगोंपर बोझ और मुसीबतें बढ़ती जायें। यह तय है कि बोहेमिया, मोरेविया और शायद स्लोवाकियामें बराबर मुश्किल बनी रहेगी। चेको-स्लोवाकियाके लोग जो कि अपने दोस्तोंके विश्वासघातकी वजहसे आसानीसे हरा दिये गये, अब अपना बदला ले लेंगे।

इस सबसे पता चलता है कि इस लंबी लड़ाईमें—और उसके लंबी होनेकी संभावना है—तराजका पलड़ा पश्चिमी मित्र-राष्टोंकी तरफ बहुत झुका रहेगा।

लेकिन यह लाभ उनके हकमें तभी रहेगा जब उसके युद्ध और शांतिके ध्येय स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और आत्मनिर्णय हों जिससे कि दुनियाके राष्ट्र इस बातको जान लें और विश्वास कर लें कि जिन उद्देश्योंके लिए वे इतनी भारी कीमत दे रहे हैं वे इस लायक हैं। साम्राज्यवादको जारी रखनेके लिए वे नहीं लड़ेंगे, न बलिदान देंगे। इसका अंतिम निर्णय तो दुनियाके हाथों होगा, न कि उन सरकारोंके हाथों जो अबतक उन्हें गलत रास्ते पर ले गई हैं। अगर सरकारें उनकी मर्जीके अनुसार नहीं चलेंगी तो उन्हें रुखसत होना होगा और उनकी जगह दूसरी सरकारें आवेंगी।

२१ सितंबर, १९३९

३

पश्चिमी मित्र-राष्ट्रोंके बताये हुए युद्धके ध्येय क्या हैं? हमसे कहा गया है कि वे प्रजातंत्र और आजादी लाने, नात्सी शासन और हिटलरशाहीका अंत करने और पोलैंडको मुक्त करानेके लिए लड़ रहे हैं। मि. चेंबरलेनने अब इतना और कह दिया है कि चेको-स्लोवाकियाको भी स्वतंत्र किया जायगा। माना, लेकिन यही सब काफी नहीं है। तभी तो कार्य-समितिने जो ब्रिटिश सरकारसे युद्ध और शांतिके ध्येय पूरे तौरपर बगैर किसी लाग-लपटके बता देनेको कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है।

अपनी दलीलको हम और आगे ले जायं। अगर हिटलरशाहीका अंत होना है, तो उससे जरूरी तौरपर यह नतीजा निकलता है कि किसी भी फासिस्ट सत्तासे— जर्मनीको छोड़कर किसीसे भी— कोई सुलह या समझौता नहीं होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि जापानियों और इटालियनोंके हमलेको हमें मंजूर नहीं करना चाहिए और हमारी नीति यह होनी चाहिए कि चीनको हम उसकी आजादीकी लड़ाईमें जितनी मदद पहुंचा सकें पहुंचायें। इसका मतलब यह भी है कि हमारी जो नीति फासिज्मपर लागू होती है, वही साम्राज्यवादपर भी लागू होनी चाहिए और इन दोनोंका खात्मा कर देना चाहिए! हर हालतमें अंतर्राष्ट्रीय रद्दोबदलके अलावा भी हिंदुस्तानको आजाद और खुदमुख्तार होना चाहिए। लेकिन फिलहाल हिंदुस्तानकी आजादीपर हम विश्वव्यापी साम्राज्यवादके सिलसिलेमें विचार करते हैं।

एक तरफ फासिज्मकी निंदा करके दूसरी तरफ साम्राज्यवादकी हिमायत करने या उसे कायम रखनेकी कोशिश करना तो बेतुका और वाहियात है। वह दुनिया, जिसमें कि फासिज्मका बोलबाला रहा है, साम्राज्यवादको बर्दाश्त नहीं कर सकती। इसलिए फासिज्मके खिलाफ लड़ाईका लाजमी नतीजा यह होगा कि साम्राज्यवादका भी खात्मा होना चाहिए, नही तो उस लड़ाईका सारा-का-सारा उद्देश्य ही गड़बड़ा जाता है और वह कई प्रतिस्पर्धी साम्राज्यवादोंकी ताकत हासिल करनेका झगड़ा बन जायेगी।

इस तरह लड़ाईके ध्येयोंके स्पष्टीकरणमें नीचे लिखी बातें होनी चाहिएं— हिटलरने जो देश ले लिये हैं उनका छुटकारा, नात्सी शासनका खात्मा, फासिस्ट सत्ताके साथ किसी तरहकी सुलह या समझौता न होना, साम्राज्यवादी ढांचेका खात्मा करके प्रजातंत्र और आजादी लाना और आत्म-निर्णयके सिद्धांतपर अमल होना। बेशक, गुप्त संधियां नहीं होनी चाहिए, न दूसरे देशोंको जीतना, न मुआवजे और न औपनिवेशिक क्षेत्रोंपर सौदा ही होना चाहिए। उपनिवेशोंमें भी आत्मनिर्णयका सिद्धांत लागू होना चाहिए और उनके प्रजातंत्रीकरणके लिए कदम उठाए जाने चाहिए। कौमियतकी बुनियादपर जो भेद-भाव है, सब मिट जाने चाहिए। उपनिवेशोंकी जनताके अधिकारोंको खतरेमें डालकर हम शांति या समझौता नहीं होने दे सकते।

हम इन सुझावोंको सौदेकी भावनासे पेश नहीं कर रहे हैं और न दूसरेकी मुसीबतसे फायदा उठानेकी हमारी जरा भी मंशा है। उस मुसीबतपर हम तो अपनी हमदर्दी जाहिर करते हैं। लेकिन उस मुसीबतके आगे हम अपनी मुसीबतें और बेबसियां थोड़े ही भूल सकते हैं। अगर हम पोलैंड या चेकोस्लोवाकियाकी आजादी चाहते हैं, तो उससे कहीं ज्यादा हम चीनकी आजादी चाहते हैं। यह कोई संकीर्ण स्वार्थ नहीं है जो हमें हिंदुस्तानकी आजादीको पहला दर्जा देनेके लिए मजबूर करता है। अगर हमारे पास खुद आजादी नहीं है, तो किसी आजादीका हमारे लिए कोई मतलब नहीं हो सकता और अगर हम दूर देशकी आजादीके लिए तो शोर मचाया करें मगर खुद गुलाम बने रहें तो यह कोरा मजाक ही होगा। लेकिन लड़ाईके दृष्टिकोणसे देखा जाय तो भी उस लड़ाईको लोकप्रिय बनानेकी खातिर वह आजादी जरूरी है, क्योंकि ऐसा होनेसे ही लोगोंको एक

ऐसे उद्देश्यके लिए हिम्मत और बलिदान करनेकी प्रेरणा मिलती है जिसे वे अपना समझते हैं। ज्यों-ज्यों यह लड़ाई महीने-पर-महीने और साल-पर-साल चलेगी और सब मुल्कोंके लोगोंपर थकान चढ़ेगी तो अपनी गाढ़ी कमाईकी आजादी-को बचानेके लिए यह प्रेरणा ही अखीरमें काम आयगी। आर्थिक स्वार्थवाली किरायेकी फौजोंमे, चाहे वह कितनी ही कुशल क्यों न हों, लड़ाईमें जीत नहीं होगी।

हिंदुस्तानके बारेमें ब्रिटिश सरकारको जो पहला कदम उठाना है, वह यह है कि खुले आम यह ऐलान हो जाना चाहिए कि हिंदुस्तान आजाद और खुद-मुख्तार राष्ट्र है और उसको अपना विधान खुद बनाने का अधिकार है। हमें मानना पड़ेगा कि इस ऐलानपर एकदम ही पूरी तरहसे अमल नहीं किया जा सकता; लेकिन जैसा कि कार्य-समितिने बताया है इतना तो जरूरी है ही कि जिस हदतक मुमकिन हो सके उस हदतक फिलहाल उसे अमलमें लाया जाय; क्योंकि यह अमल ही तो है जो लोगोंके दिमागों और दिलोंको छूता है और जिसका असर दुनियापर पड़ता है। यही वह तोहफा है जिसके दिये जानेसे लड़ाईकी गतिविधि संचालित होने लगेगी और उससे वह ताकत मिलेगी जो बड़े कामोंमें जनताकी इच्छामें है। हम कुछ भी करें, वह हमारी स्वतंत्र इच्छा व पसंदका होना चाहिए और सिर्फ तभी सम्मिलित प्रयत्न सचमुच सम्मिलित बन सकेगा, क्योंकि वह एक कार्यमें हाथ बंटानेवाले कइयोंके स्वतंत्र सहयोगपर निर्भर होगा।

बदकिस्मती तो यह है कि ब्रिटिश सरकारने, जैसा कि उसका कायदा है, ऐसी कार्रवाई कर डाली है कि हमारा वाजिब तौरपर उधर बढ़ना मुश्किल हो गया है। हालांकि वह अच्छी तरह जानती थी कि हम गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्टमें संशोधन करनेवाले बिलके बिलकुल खिलाफ थे—तो भी उसने उसे आम सभामें, सब वाचनोंमें, ठीक ११ मिनटोंमें पास कर दिया। इधर हिंदुस्तानमें उसी तरह कानून और आर्डिनेंस झटपट बना डाले गये। भारत-मंत्रीकी कचहरी और हिंदुस्तानकी सरकार अब भी गये-गुजरे जमानेमें रहती है। न तो वह तरक्की करती है, न सीखती है, न याद रखती है, यहांतक कि लड़ाईका धक्का लगनेपर भी उनको दिमागी तरीके या उनके पुराने ढंग पर कोई ज्यादा असर नहीं पड़ा है। वे हिंदुस्तानको पक्का माने बैठे हैं—यह नहीं समझते कि इस कायापलट जमानेमें कोई चीज पक्की नहीं मानी जा सकती,

फिर हिंदुस्तानकी तो बात ही क्या जो कि ऊपरी सतहसे चुपचाप दीखते हुए भी अंदरसे सब तरहकी ताकतों और जोरदार जरूरतोंसे आंदोलित हो गया है।

तो भी नजदीक आनेकी मुश्किलके होते हुए भी कार्य-समितिने सच्ची राजनीतिज्ञताके साथ अपना हाथ बढ़ाकर अंग्रेजोंको और उन तमाम लोगोंको जो आजादीके लिए जद्दोजहद कर रहे हैं, अपने सहयोगका वचन दिया— मगर हिंदुस्तान शान और आजादीके साथ ही सहयोग कर सकता है वरना उसके सहयोग-की कोई कीमत नहीं। दूसरा कोई रास्ता है तो जबर्दस्तीका है और उसे सहनेकी हमें आदत नहीं रही है।

मौजूदा बात हिंदुस्तानकी आजादीपर लागू करना कैसे और किस हद तक जरूरी है? यह साफ है कि जो कुछ हम करें हमारी स्वतंत्र इच्छासे और अपने फैसलेके मुताबिक करेंगे। लड़ाईसे ताल्लुक रखनेवाले मामलोंमें कार्यवाही करनेकी बराबरी होनी ही चाहिए, भले ही वह कानूनकी किताबमें न लिखी जा सके। देखनेमें हिंदुस्तान लड़ाईमें लगा हो, लेकिन इस देशमें युद्धकी हालत है कहां? और इसकी बिलकुल कोई वजह नहीं है कि मामूली तौरपर चलने-वाले धारासभाओं और न्यायालयोंके कामोंके बदले गैरमामूली कार्रवाइयां की जायं। इन गैरमामूली कार्रवाइयोंका जमाना गया। अब तो उनको गड़ा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और प्रांतीय धारासभाओं और प्रांतीय सरकारोंके जरिए तमाम जरूरी कदम उठाये जाने चाहिए। ब्रिटिश पार्लमेंटने संशोधन करनेवाला जो कानून पास किया है उसे भी गड़ा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और जहांतक प्रांतीय सरकारोंका ताल्लुक है उनके अधिकारों और उनकी प्रवृत्तियोंपर किसी कदर रोक नहीं लगनी चाहिए। वे मर्यादाएं और वे किले-बंदियां जैसी कि विधानमें है अमलमें नहीं आनी चाहिए। इस हदतक तो कोई दिक्कत नहीं है।

लेकिन यह जरूरी है कि इस बीचके अर्सेमें भी हिंदुस्तानके नुमाइंदोंका बाहरी मामलों में हथियारबंद फौजों और आर्थिक मामलोंमें केंद्रीय नीति और हलचलों (प्रवृत्तियों)पर कब्जा होना चाहिए।

वही एक रास्ता है जिससे सर्वसम्मत नीतिपर चला जा सकता है। इस कामके लिए कोई आरज़ी तरीका सोच निकालना होगा। आजकलके कानूनमें

संशोधन कर देनेसे यह काम नहीं हो सकता। जब हिंदुस्तानका बनाया हुआ विधान बनेगा तो सारे-के-सारे एक्टको ही रद्द करना होगा। यह हो सकता है कि इस बीच सबकी रायसे कोई कारगर आरजी इंतजाम कर दिया जाये।

यह साफ है कि अगर हिंदुस्तानकी युद्ध-नीतिको जनताका समर्थन और मदद दिलाना है, तो जनताके चुने हुए ऐसे प्रतिनिधि ही उसे चलायें जिनमें लोगोंका विश्वास हो। यह कोई आसान काम नहीं है कि पीढ़ियोंसे जो विचार बने आ रहे हैं उन्हें दबा दिया जाये और अपने देशवासियों को इसे अपना ही उद्योग समझनेको मजबूर किया जाये।

यह तो सिर्फ तभी हो सकता है जबकि उन्हे अपनी नीति समझाकर और उन्हें यह भरोसा दिलाकर कि इससे उनका तो भला होगा ही, दुनियाका भी भला होगा—अपने विश्वासमें लिया जाये। इसी तरीकेपर जनतंत्र काम करता है। हमें लड़ाईको चलानेवाली बड़ी-बड़ी नीतियोंको भी जानना पड़ेगा, ताकि हम अपने लोगों और दुनियाके आगे उनका औचित्य सिद्ध कर सकें।

एक राष्ट्रकी युद्धनीतिमें पहले उस देशकी रक्षापर विचार किया जाना लाजमी है। हिंदुस्तानको यह महसूस होना चाहिए कि वह अपनी ही रक्षा करनेमें और अपनी ही आजादीको बचाने और दूसरे देशोंमें हो रही आजादीकी जद्दोजहदमें मदद पहुंचानेको अपना हाथ बंटा रहा है।

फौजको भी एक राष्ट्रीय फौज समझना होगा, तनख्वाहवार फौज नहीं कि जो किसी ओरमें अपनी भक्ति रखती हों। इसी राष्ट्रीयताके आधार पर भर्ती होनी चाहिए ताकि हमारे सिपाही निरे तोपके गोलोंके शिकार न होकर अपने देश और अपनी आजादीके लिए लड़नेवाले हों। इसके अलावा यह भी जरूरी होगा कि मिलीशियाके आधारपर बड़े पैमानेपर नागरिक रक्षाकी व्यवस्था भी की जाये। यह सब काम सिर्फ जनताकी चुनी हुई सरकार ही कर सकती है।

इससे भी कहीं महत्वकी बात है युद्ध-संबंधी और दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेवाले उद्योगोंकी बढ़ती करना। लड़ाईके जमानेमें हिंदुस्तानमें उद्योगोंकी तरक्की बड़े पैमानेपर की जानी चाहिए। उन्हें भाग्य भरोसे ही

नहीं छोड़कर बढ़ने देना चाहिए, बल्कि उनकी योजना बननी चाहिए और राष्ट्रीय हितकी दृष्टि से उनपर कब्जा होना चाहिए और मजदूर कारीगरोंको उचित संरक्षण दिया जाना चाहिए। इस काममें राष्ट्र-निर्माण-समिति बड़ी मदद कर सकती है।

ज्यों-ज्यों लड़ाई बढ़ती और ज्यादा-पर-ज्यादा सामग्री समेटती जायेगी त्यों-त्यों आयोजनाके साथ उत्पत्ति और वितरणकी व्यवस्था दुनिया भरमें होगी और धीरे-धीरे विश्वव्यापी अर्थनीतिकी योजना बनेगी। पूंजीवादी प्रणालीको कोई नहीं पूछेगा; और हो सकता है कि उद्योगोंपर अंतर्राष्ट्रीय आधिपत्य हो जाये। ऐसे-ऐसे आधिपत्यमें एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक देशके नाते हिंदुस्तानका हाथ होना चाहिए।

अंतमें शांति-परिषद्में हिंदुस्तानको एक स्वतंत्र राष्ट्रकी हैसियतसे बोलने देना चाहिए। हमने यह बतलानेकी कोशिश की है कि जो लोग जनतंत्रकी दुहाई दिया करते हैं उनके युद्ध और शांतिके उद्देश्य क्या होने चाहिए और खासकर उनको हिंदुस्तानपर किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए। यह सूची पूरी नहीं है, पर यह एक ठोस नींव है जिसपर निर्माण हो सकता है, और उस आवश्यक प्रयत्नके लिए प्रेरणा मिल सकती है। हमने यहां युद्धके बाद नई विश्व-व्यवस्थाकी समस्याको नहीं छुआ है, हालांकि हमारे खयालसे ऐसी पुनर्व्यवस्था बहुत जरूरी और अनिवार्य है।

क्या दुनियाके और खासकर लड़ाईमें लगे हुए देशोंके राजनेता और निवासी इतनी समझ और दूरदृष्टि पैदा करेंगे कि हमारे बताये रास्तेपर चल सकें? हम नहीं जानते। मगर यहां हिंदुस्तानमें हम अपने भेदभाव——वाम और दक्षिण पक्ष——को भूल जायं और इन महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर विचार करें जो हमारे सामने हैं और अपना हल पानेका आग्रह कर रही हैं। दुनियाके गर्भमें कई संभावनाएं हैं। कभी उसे कमजोरों, बेकामों और बिखरे हुएपर रहम नहीं आता। आज जबकि राष्ट्र जीवित रहनेके लिए जी-जानसे लड़-भिड़ रहे हैं तब केवल वे ही लोग बनते हुए इतिहासमें हिस्सा बंटायेंगे जो दूरदर्शी और अनुशासनमें होंगे।

२३ सितंबर, १९३९

: १० :

अंग्रेज जनताके प्रति

यूरोपमें आज हिंसा और अमानुषतापूर्ण युद्धका तूफान फैला हुआ है और उससे दुनिया भरकी सभ्यताका ताना-बाना बिखर जानेका खतरा है। हथियारोंकी टक्करें तो हैं ही, मगर उनके पीछे खयालात और उद्देश्योंकी गहरी टक्करें भी हो रही हैं और दुनियाका भविष्य कांटेपर झूल रहा है। इतिहास न सिर्फ लड़ाईके मैदानोंमें तैयार हो रहा है; बल्कि आदमियोंके दिमागोंमें भी बन रहा है और खास सवाल सामने यह है कि जो इतिहास बनने जा रहा है क्या वह गुजरे हुए जमानेकी तवारीखसे मुख्तलिफ होगा? और क्या इस भयंकर लड़ाईका मानवीय स्वतंत्रतापर भारी असर पड़ेगा और लड़ाईके और मानवीय अधोगतिके मूल कारणोंको ही मिटा देगा? हिंदुस्तानको आजादीकी चाह है और लड़ाई और हिंसासे वह डरता है। उसके लिए यह सवाल सबसे ज्यादा महत्त्वका है। उसने फासिज्मकी फिलासफी और साधनोंका, नात्सी हमलोंका और हैवानियतका जोरदार विरोध किया है और उन्ही सिद्धांतोंको नदारद पाया है जिनका वे दावा करते हैं। हिंदुस्तान तो विश्वशांतिका अर्थ करता है स्वतत्रता और प्रजातंत्रकी प्राप्ति और एक राष्ट्रकी दूसरे राष्ट्रपर हुकूमतका खात्मा होना। इसलिए हिंदुस्तानने मंचूरिया, अबीसीनिया, चेकोस्लोवाकियापर हुए हमलोंकी निंदा की और स्पेनकी घटनाओं और पोलैंडपर हुए नात्सियोंके हैवानियतसे भरे हमलेसे उसे गहरी चोट पहुंची। इसलिए हिंदुस्तान बड़ी खुशीके साथ संसारमें शांति और स्वतंत्रताकी नई व्यवस्था स्थापित करनेमें अपने तमाम साधन जुटायेगा।

अगर इस प्रकारकी शांति कायम करना ही ध्येय है तो युद्ध और शांतिके उद्देश्योंकी व्याख्या साफ-साफ की जानी चाहिए और आज उन्हीके मुताबिक काम होना चाहिए। वैसा न करना या हिचकिचाना इस बातको जाहिर करना है कि कोई साफ उद्देश्य नहीं है और जो कुछ अंधाधुंध कह दिया जाता है उसके मानी गंभीरतापूर्वक नहीं लगाये जाते। इससे उन सब लोगोंको अंदेशा

होना वाजिब है कि जिन्होंने कड़वे तजरबे करके यह जान लिया है कि युद्ध उन उद्देश्योंको दबा लेते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि प्रभुत्व हासिल करने और अपनेको सुरक्षित रखनेवाला साम्राज्यवाद आ जाता है। यदि यह युद्ध प्रजातंत्र और आत्मनिर्णयके पक्षमें और नात्सी हमलोंकी मुखालफतके लिए लड़ा जा रहा है तो वह प्रदेशोंको कब्जेमें करने, क्षतिपूर्ति (हरजाना) देने या भूल-संशोधन करने, उपनिवेशोंके आदमियोंको गुलामीमें जकड़े रखने और साम्राज्यवादी तंत्रको बनाये रखनेके लिए नहीं लड़ा जाना चाहिए।

इसी आवश्यक कारणको लेकर कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारसे अपने युद्ध और शांतिके उद्देश्योंको साफ-साफ शब्दोंमें बताने और खासकर इसकी घोषणा करनेको कहा है कि वे उद्देश्य इस साम्राज्यवादी व्यवस्थापर और भारतपर किस प्रकार लागू होते हैं? हिंदुस्तान साम्राज्यवादको बचानेके लिए कोई हिस्सा नहीं ले सकता—हां, स्वतंत्रताके लिए कशमकश करनेमें जुट सकता है। हिंदुस्तानसे मदद पानेके साधन बहुत हैं, मगर इससे अधिक कीमती है एक समुचित उद्देश्यके प्रति उसका नैतिक समर्थन और उसकी सद्भावना। आज हिंदुस्तान उसके और इंग्लैंडके सदियोंके झगड़ेको मिटानेके लिए जो सुझाव रख रहा है वह कोई छोटी बात नहीं है, क्योंकि वह संसारके इतिहासमें एक युगांतरकारी घटना होगी जो उस नई व्यवस्थाका सच्चा सूत्रपात करेगी जिसके लिये हम लड़ रहे हैं। इस काममें स्वतंत्र और समकक्ष हिंदुस्तान ही अपनी मर्जीसे सहयोग कर सकता है। जबतक यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो जाता, तबतक हममेंसे किसीकी भी ताकत नहीं है कि हिंदुस्तानके लोगोंको ऐसी लड़ाईके लिए उत्साहित कर सकें कि जो उनकी नहीं है। जनताकी मर्जीसे लड़ी जानेवाली लड़ाईको जनताका समर्थन मिलना चाहिए और लोगोंको यह मालूम होना चाहिए कि उनका उससे क्या नफा-नुक्सान है? सिरपर थोपी जानेवाली लड़ाईका लाजमी तौरपर विरोध किया जायेगा और जनताकी भावना उसके खिलाफ ही भड़केगी।

हमारी आजादीके लिए चल रही पीढ़ियोंकी लड़ाई और कशमकशकी सारी-की-सारी पृष्ठभूमिको ध्यानमें रखना चाहिए। हमारा मौजूदा शासन-विधान तक हमपर लादा गया है, जिससे विरोध जैसा-का-तैसा बना रहा है।

यह विरोध ऐसे गोलमोल आश्वासनों और बेमनसे किये जानेवाले उपायोंसे, जो अपने उद्देश्यतक नहीं पहुंच सकते, मिट नहीं सकता। अब इस ऐतिहासिक सुअवसरको हाथसे न जाने देकर हिंदुस्तानको स्वतंत्र राष्ट्र मान लिया जाना चाहिए और उसे अधिकार मिलना चाहिए कि वह शासन-विधान और स्वतंत्रताका हुक्मनामा खुद तैयार कर ले। इससे कुछ भी कम होनेका मतलब यह होगा कि यह मौका हाथसे जाता रहेगा और हिंदुस्तानने और इंग्लैंडके विरोध और संघर्षका अभी अंत नहीं होगा। इसका एक मतलब यह होगा कि सिर्फ हम हिंदुस्तानी ही नहीं, बल्कि दूसरे भी युद्ध और शांतिके ध्येयोंकी सचाईमें संदेह करते हैं और दूसरा यह कि जो कुछ कहा जाता है उसमें और जो कुछ किया जाता है उसमें फर्क है।

इसलिए सबसे पहला कदम यह होना चाहिए कि हिंदुस्तानके पूर्ण स्वतंत्र होनेकी घोषणा करदी जाये और इसके बाद इसपर अमली कार्रवाई होनी चाहिए—यानी जहांतक हो सके वहांतक हिंदुस्तानियोंको हिंदुस्तानकी हुकूमत करने और अपनी तरफसे युद्धको चलानेके अधिकार मिल जायें। तभी यह मुमकिन है कि ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न हो जिससे जनताका समर्थन मिल सके। स्वेच्छाचारी और दमनकारी कानूनोंकी हुकूमतसे तो जनताकी सहानुभूति जाती रहेगी और टक्कर शुरू हो जायेगी। कठिनाइयां तो इस समय ही पैदा हो रही हैं—सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये हैं और हिंदुस्तानके कई प्रांतोंमें जनता और मजदूरोंकी हलचलोंपर कड़ी पाबंदियां लगा दी गई हैं। यह वही पुराना तरीका है जो पहले भी सफल नहीं हो सका और फिर भी नाकामयाब रहेगा।

हिंदुस्तान पिछले जमानेके विरोधको भुलाकर अपना दोस्ताना हाथ आगे बढ़ाना चाहता है। लेकिन वह सिर्फ समताके सिद्धांतोंपर स्वतंत्र देश बनकर ही ऐसा कर सकता है। उसे यह विश्वास होना जरूरी है कि वह पुराना जमाना गुजर गया है और हम सब यूरोपमें ही क्या, एशिया और तमाम दुनियामें एक नई व्यवस्था कायम करने जा रहे हैं। हिंदुस्तानका यह न्यौता ब्रिटिश सरकारको अकेले उसीकी तरफसे नहीं बल्कि शांति, स्वतंत्रता और प्रजातंत्रमें विश्वास रखनेवाले दुनियाके सब लोगोंकी तरफसे है। अगर

इस इशारेका गहरा अर्थ नहीं समझा गया और उसकी पूरी-पूरी सुनवाई न हुई तो यह हम सबके लिए दुःखदायी घटना होगी। लेकिन अगर सुनवाई हुई तो तमाम दुनियाके लोगोंको खुशी होगी और मैदानेजंगमें जीत जानेसे नात्सीवाद-को जितनी चोट लगेगी, उससे कहीं ज्यादा चोट इससे पहुंचेगी।*

५ अक्तूबर, १९३९

: ११ :

ब्रिटेन किसलिए लड़ रहा है?

विजेताओं और सरकारोंने हमेशासे युद्धके उद्देश्योंके बारेमें जो भिन्न-भिन्न वक्तव्य दिये हैं, उन्हें संग्रह करना और पढ़ना इतिहासके विद्यार्थीके लिए एक बड़ी दिलचस्प और शिक्षाप्रद बात होगी। हमेशा धार्मिक या सामाजिक दृष्टिसे ऊंचे-से-ऊंचे नैतिक आधारपर इनका समर्थन किया हुआ मिलेगा। किसी ऊंचे सिद्धांतकी खातिर हरेक आक्रमण उचित और हरेक नृशंसता क्षम्य कर दी जाती है। अक्सर उसे पता चलेगा कि अंतमें शांति स्थापित करनेकी लगन विजेता और आक्रांताको आगे बढ़नेकी प्रेरणा देती है। क्या हिटलर तकने ऐसा ही नहीं कहा है? हालहीमें युद्धके घोषित उद्देश्योंका एक लुभावना संग्रह इंग्लैंडमें प्रकाशित हुआ था। उसमें दो हजार वर्ष पीछेतककी बातें थीं। पढ़कर अचरज होता था। वही भाषा, वही शांतिके लिए जोशीला प्रेम सौ या हजार वर्ष पहले दिये गये उन लड़ाई आरंभ करनेवाले बादशाहों और सम्राटोंके वक्तव्योंमें था कि जैसा आजकल हम पढ़ते हैं। हर किसीको करीब-करीब ऐसा खयाल हो सकता था कि कुछ जबानी हेर-फेरके साथ मि. नेविल चेंबरलेन ही बोल रहे हैं, कोई मध्यकालीन शासक नहीं।

इस संग्रहमें पश्चिमी देशोंके बारेमें बातें थीं; लेकिन हमें संदेह नहीं कि वैसा ही संग्रह पूर्वीय शासकोंके वक्तव्योंसे भी तैयार किया जा सकता है।

---

* न्यूज क्रानिकल, लंदन को भेजा गया एक संदेश।

उम्दा शब्दों और पवित्र सिद्धांतोंकी आड़में अपने असली ध्येयोंको छिपाना इन्सानका दोष है, जो पूर्व और पश्चिम दोनोंमें पाया जाता है। शायद ही ऐसे शासक हुए हों जिन्होंने इस तरीकेसे अपने दुष्कर्मोंको छिपानेकी कोशिश न की हो। दो हजार वर्ष पहले हिंदुस्तानमें राजाओंमें अनुपम एक राजा था अशोक महान्। जब वह खूब देश जीत रहा था तब उसने युद्धकी भयंकरता अनुभव की और अपना हृदय खोलकर रख दिया था।

जब हम इन वक्तव्यों और औचित्योंका पिछला लेखा देखते हैं तो हममें थोड़ीसी मायूसी आती है या हम चिड़चिड़े हो उठते हैं। क्या मानवता हमेशा एक ही तरहकी धोखेधड़ीसे गुजरनेके लिए है और क्या मुहबोले शब्दों और खोटे कर्मोंके बीच हमेशा ही इतनी चौड़ी खाई बनी रहेगी? फिर भी जब-जब ये बहादुराना वक्तव्य दिये जाते हैं, तब-तब हममें आशा भर आती है और अपने पुराने सभी अनुभवोंके खिलाफ हम यह विश्वास करनेकी कोशिश करते हैं कि कम-से-कम इस बार तो शब्दोंको अमलमें लाया जायेगा। १९१४ और उसके बाद भी यही हुआ। लाखोंने विश्वास किया—और फजूल किया—कि युद्ध युद्धका अंत करनेके लिए है और वह हमारी इस अभागी धरतीपर शांति और आजादी कायम करेगा। लड़ाईने क्या विरासत छोड़ी, यह हम जानते हैं। राजनीतिज्ञोंका छल, कपट और विश्वासघात भी हम जानते हैं और यह भी हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि उसके बादसे कितना खतरा हमारे पीछे लगा है।

और अब २५ वर्ष बाद फिर वही शब्द दोहराये जा रहे हैं, उसी तरहके पवित्र वक्तव्य दिये जा रहे हैं और बहुतसे मुल्कोंके युवक जो पुरानी धोखे-धड़ियोंको नहीं जानते या भूले हुए हैं, पर जो श्रद्धालु और बड़े जोशीले हैं, मृत्युके मुंहमें जा रहे हैं। लेकिन क्या हमको वही चक्कर फिरसे काटना जरूरी है? अब नहीं, हम सब कहते हैं, कभी नहीं। शायद मानवता राज-नीतिज्ञों और उन लोगोंके ओछे छल-कपटोंसे जो जरूरतसे ज्यादा वक्तसे हमारे भाग्य-निर्णायक रहे हैं, ऊंची उठेगी। लेकिन इस बारेमें हमें बहुत अधिक भरोसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि इन्सान जो चाहते हैं उसपर भरोसा करनेकी उनमें बेहद शक्ति होती है और इसलिए वे धोखेमें आ जाते हैं।

जबसे यूरोपमें मौजूदा लड़ाई छिड़ी, तबसे आम जनतामें, लेकिन अस्पष्ट

रूपसे, यह बात चल पड़ी थी कि लड़ाईके उद्देश्य क्या है ? और अधिकारी व्यक्तियोंने स्पष्ट रूपसे उसका जवाब भी दे दिया था। उसके बाद १४ सितंबरकी कांग्रेसकी कार्य-समितिका वक्तव्य आया और पहले-पहल एक ऐसे संगठनने, जिसका दुनिया भरमें नाम है, कोशिश की कि लड़ाईके उद्देश्योंकी साफ-साफ परिभाषा बताई जाये। वक्तव्य हिंदुस्तानके बारेमें जरूर था, लेकिन उसमें दुनिया भरके सामने आये हुए खास मसलेपर विचार किया गया था, जो कि हर जगहके चतुर और भावुक लोगोंके दिमागोंमें चक्कर लगा रहा था। यह एक ऐसा मार्गप्रदर्शन था जिसके लिए दुनिया इंतजार करती मालूम होती थी और लाखों आदमियोंपर इंग्लैंड और अमरीकामें भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। हमें यह साफ मालूम होना चाहिए कि हम किसलिए लड़ रहे हैं और हमें अपने राजनीतिज्ञों और नेताओंको घेर लेना चाहिए कि वे मसलोंको स्पष्ट करें। कांग्रेसकी कार्य-समितिने स्पष्ट और निश्चित सवाल पूछे थे। उन्हें टालना मुमकिन नहीं था; क्योंकि टालमटूल करना खुद उत्तरके समान ही था।

जितना हमने पहले महसूस किया था, उससे भी ज्यादा अब हम महसूस करते हैं कि कार्य-समितिने हिंदुस्तान और विश्वशांति और स्वतंत्रताके लिए कितने गजबका काम किया है ! कारण कि उससे महत्त्वपूर्ण मसले दुनियाकी राजनीतिमें आगे आ गये और ब्रिटिश सरकारके लिए अपने उद्देश्यों और ध्येयोंको लड़ाईके कुहरेमें छिपाए रखना मुश्किल हो गया। उन्हें स्पष्ट और निश्चित किया जाना लाजमी हो गया। जिस संकटमें उन्होंने अपनेको पाया, उसके लिए हम उनसे अपनी हमदर्दी जाहिर करते हैं।

और अब हमें ब्रिटिश सम्राट्की सरकारके एक ऊंचे अधिकारीसे अपने सवालका जवाब मिल गया है। वाइसरायका लंबा वक्तव्य हमने पढ़ लिया है और जितना उसे पढ़ते हैं उतना ही हमारा अचरज बढ़ता जाता है। वाइसरायने कहा है कि 'विश्व-राजनीति और इस मुल्ककी राजनैतिक सच्चाइयोंको ध्यानमें रखकर परिस्थितिका सामना करना चाहिए।' वैसा करनेकी हमने कोशिश की है और हम सिर्फ इस नतीजेपर पहुंच सकते हैं कि वाइसराय और ब्रिटिश सरकार हमारी दुनियासे बिलकुल दूसरी ही दुनियामें रहते हैं कि जिसकी राजनीति और जिसके ध्येय हमें कोरी दिमागी कल्पनाएं मालूम होती हैं, जिनका

उस दुनियाकी असलियतोंसे कोई मतलब नहीं है जिसमें हम रहते हैं। क्या हिंदुस्तान और दुनियामें पिछले २० वर्षोंमें कुछ भी नही हुआ है जो हमसे २० बरस पीछे देखनेके लिए कहा गया है ? इस प्रगतिशील और तेजीसे दौड़ती हुई दुनियामें रोज बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं और गुजरा हुआ एक साल बहुत पुराना इतिहास दीखता है। फिर २० वर्षकी तो बात ही क्या ?

वाइसराय जो कहते हैं वह काफी महत्त्वपूर्ण है। जो कुछ वह नहीं कहते हैं वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उनके सारे वक्तव्यमें कहीं भी आत्म-निर्णयका, जनतंत्रका, स्वतंत्रताका जिक्र नही है। फिर भी इन तमाम या कुछ शब्दोंके साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने खूब खिलवाड़ किया है। अब हम जानते हैं कि ब्रिटिश सरकार क्या नापसद करती है।

हमसे कहा गया है कि युद्धकी इस शुरूकी हालतमें युद्धके उद्देश्योंकी घोषणा करना संभव नहीं है। यह कथन उस हालतमें एक पूरा स्पष्टीकरण होता जब कि युद्धमें लगा हुआ देश फतह हासिल करनेपर कमर कसे हुए हो और उस समय तक न बता सकता हो कि वह कितना बढ़ेगा जबतक कि जीतके बारेमें उसे भरोसा न हो जाये। लेकिन आत्म-रक्षा या आक्रमणके बचाव या कुछ ध्येयोंको कायम रखनेके लिए किए जानेवाले युद्धमे इसका कोई वास्ता नहीं है। हिंदुस्तान-को एक आजाद मुल्क स्वीकार करने, या उपनिवेशोंमें दूसरी तरहकी नीति अमलमें लाने या साम्राज्यवादी ढांचेको मिटा देनेपर लड़ाईकी प्रगतिका असर ही किस कदर पड़ सकता है ?

वाइसरायने ब्रिटिश प्रधानमंत्रीके शब्द लिये हैं और इनसे वह भेद प्रकट होता है। युद्धसे वह कोई भौतिक लाभ नहीं उठाना चाहते हैं कि एक बेहतरीन अंतर्राष्ट्रीय पद्धति अमलमें आये जो युद्धको रोके और जो यूरोपमें शांति कायम करनेका एक जरिया पैदा करे। उनके वक्तव्यका सार यही है। वह यूरोपतक ही महदूद है, दूसरे महाद्वीपोंका उसमें नाम तक नही है। जनतंत्र या वैसी ही खयाली बातोंके बारेमें उसमें कोई चर्चा नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य अपना और विस्तार नहीं करना चाहता। उसके पास तो काबू रखने लायकसे ज्यादा पहलेसे ही है। लेकिन जो कुछ वह कर सकता है, उसीपर डटा रहकर वह शांति स्थापित करना चाहता है ताकि उसके व्यापक साम्राज्यमें कोई

विघ्न-बाधा न पड़े। इस प्रकार युद्धका उद्देश्य है ब्रिटिश साम्राज्यको सुरक्षित बनाए रखना, एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय पद्धतिका निर्माण करना जो कि उसे सुरक्षित बनाए रख सके और हिंदुस्तानको जबतक संभव हो तबतक चंगुलमें बनाए रखना।

हम फिर कहते हैं कि हिंदुस्तानियोंको संतुष्ट करनेके लिए ऐसी बात कही जाना और उनसे उस साम्राज्यवादी प्रणालीको मजबूत करनेके काममें मदद देनेके लिए कहा जाना कि जिसके वे इतने दिनोंसे शिकार रहे हैं, एक अचरजकी बात है। सिर्फ वही आदमी ऐसी दलील दे सकता है जिसे न हिंदुस्तानका कोई ज्ञान हो, न जो हिंदुस्तानियोंके स्वभावके बारेमें कुछ भी जानता हो।

दुनिया आगे बढ़ रही है और उसके साथ हिंदुस्तान भी आगे बढ़ रहा है, और एक पीढ़ी पहलेके तौर-तरीके और भाषाएं हर जगह पुरानी पड़ गई हैं। हिंदुस्तानमें वे जितनी पुरानी पड़ी हैं, उतनी और कहीं भी नहीं। हमारे मुंह आगेकी तरफ हैं, पीछेकी तरफ नहीं और हम आगे ही बढ़ेंगे। न तो 'हिटलरकी जय!' के नारे लगानेका हमारा इरादा है और न 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिंदाबाद!' ही चिल्लानेका विचार है।

१८ अक्तूबर, १९३९

: १२ :

बीस बरस

महायुद्ध खत्म हुआ और विजेता राष्ट्रोंके बड़े-बड़े लोग वार्साईके शीशमहलमें दुनियाको फिरसे गढ़नेके लिए बैठे। उनमेंसे अटलांटिक-पारसे आये हुए एक साहबने प्रजातंत्र और आत्म-निर्णयकी और एक ऐसे राष्ट्र-संघकी बढ़-चढ़कर बातें कीं कि जिससे शांति स्थापित होनेका भरोसा हो सके। लेकिन दूसरे लोगोंको जो कि अब विजय पानेके कारण सुरक्षित हो गये थे, आम लोगोंसे संबंध रखनेवाली इस आदर्शवादी बातमें आगे कोई फायदा नहीं दीखता था। जनतामें जोश पैदा करनेका अपना काम वह कर चुकी थी और अब मजबूत दिमागवाले

यथार्थवादी लोगोंके योजना बनानेके काममें उसे दखल न देने देना चाहिए था। पांचों बड़े-बड़े राष्ट्रोंके प्रतिनिधि जमा हुए और फिर तीन बादमें शामिल हुए और उनकी मेहनतोंसे वार्साईकी संधि पैदा हुई। इस संधिसे युद्धकी सारी उम्मीदें और आदर्शवाद उस जमीनमें गहरे दफना दिये गये जिसमें न जाने कितने बहादुर जवान आदमियोंके नश्वर अस्थिपंजर पड़े होंगे। इस संधिसे उनके साथ विश्वासघात हुआ।

वार्साईकी संधिके इस युगमें हम बीस बरस रह लिये हैं और हरेक नया साल दुनिया भरके लोगोंके लिए लड़ाई और क्रांति, आतंक और मुसीबत लाया है; मगर फिर भी इन पुराने राजनीतिज्ञ पहरेदारोंकी, जिनकी वजहसे लड़ाई हुई थी जिन्होंने यह सुलह की थी, हुकूमत जारी ही रही और वे निहायत इत-मीनानसे उन्हीं पुराने तरीकोंसे चिपटे रहे जिनकी वजहसे बार-बार ऐसी बर-बादियां हुई हैं। लेकिन सब जगह ऐसा नहीं था, क्योंकि एक लंबा-चौड़ा भूखंड ऐसा भी था जहां एक नई व्यवस्था आगई थी और जो लगातार पुरानीको चुनौती दे रही थी।

इटलीमें मुसोलिनी उठा और दुनियाने फासिज्मका नाम सुना। यूरोपके बहुतेरे देशोंमें तानाशाहियां कायम हुईं। अभीतक कभी न देखी जानेवाली महंगाईने जर्मनीके मध्यम वर्गको कुचल डाला। इसी बीच जेनेवामें या किसी दूसरी जगह समझदार आदमी जमा हुए और निहायत फुरसतके साथ उन्होंने निःशस्त्रीकरणके फायदों या मुआवजोंके सवालपर चर्चाएं कीं।

अचानक एक भारी आर्थिक मंदीने दुनियाका गला दबा लिया। धनी और अभिमानी इंग्लैंडके कान खड़े हो गये और वैभवशाली अमरीका हिल उठा। साल-पर-साल वह मंदी फैलती ही गई, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बिलकुल रुक गया और धधकते हुए अक्षरोंमें उसने लिखा कि पूंजीवादी ढांचेका खात्मा होकर रहेगा।

हिटलर, जो वार्साईकी संधिकी उपज और उसका बदला लेनेवाला था, रंग-मंच पर आया। उसने हैवानियत और बेरहमीसे भरे दमनका एक नया नमूना पेश किया। अपनी जनताकी राय तकको ठुकरा कर इंग्लैंडने उसकी पीठ ठोंकी और आशा बांधी कि वह सोवियटके बढ़नेवाले तूफानको रोकनेवाला सूरमा साबित

होगा। घटना-चक्र और भी तेजीसे घूमता गया। एक घटना दूसरीसे आगे बढ़ने लगी और आक्रमण-पर-आक्रमण होने लगे। इंग्लैंड इन सबका विरोध करते हुए लेकिन फिर भी अपनी कार्रवाइयोंसे बढ़ावा-सा देते हुए पास खड़ा रहा। यही मंचूरियामें और बादमें अबीसीनियामें हुआ। बहुत-कुछ ब्रिटिश सरकारके इशारेपर ही आस्ट्रियापर कब्जा कर लिया गया। उसके बाद सितंबर १९३८में चेको-स्लोवाकियाकी दुखद घटना घटी।

यह सब बीता हुआ इतिहास है। मगर हम उसकी ओर फिर ध्यान देते हैं, क्योंकि उसे भूलनेमें खतरा है। वाइसरायने हमें बीस बरस पीछे ले जाकर अच्छा ही किया है। कम-से-कम इसकी वजहसे हम इतिहासके पन्नोंमें दबी पड़ी हुई घटनाओंसे अपने दिमागोंको ताजा करेंगे और उनसे सबक सीख लेंगे। हम चीनमें अंग्रेजोंकी नीतिको याद करेंगे जिसमें हमलेकी तरफसे आंखें फेर ली थीं। साथ ही हम म्यूनिककी भी याद करेंगे, जो दुनियाके इतिहासकी धाराको पलटनेवाली घटना थी। और स्पेनको और उसके साथ किये गए विश्वास-घातकी बेहद डरावनी बातोंको तो भूल ही कौन सकता है? हमें याद आयेगा कि म्यूनिकवाले आदमी ही अब भी इंग्लैंडके काम-काजके सर्वेसर्वा हैं और वही उसकी नीतिको चला रहे हैं। इसमें ताज्जुब ही क्या है कि उन्होंने हिंदुस्तानमें उसी ब्रिटिश नीतिका नया वक्तव्य दिया, जो कि खुद ब्रिटिश साम्राज्यवादके बराबर पुरानी हो चुकी है। यह नीति तो तमाम नरम और आजादीको चाहनेवाले लोगोंको कुचलने, यूरोप व हिंदुस्तान दोनों जगहोंके प्रतिगामियोंको खुश करने, अपने साम्राज्यको सुरक्षित करने और अपने आर्थिक व दूसरे स्थापित हितोंकी हिफाजत करनेके ही लिए है।

क्या यह सच नहीं है कि जर्मनीके पोलैंडपर हमला कर देनेके बाद भी मि. नेविल चेंबरलेन जर्मनीको संतुष्ट करने और उसकी शक्ति और शस्त्रबलको रूसकी तरफ मोड़नेके सपने देख रहे थे? लड़ाईकी घोषणाके पहले ब्रिटिश पार्लमेंटकी जो निपटारा करनेवाली बैठक हुई, उसमें इंग्लैंडके प्रधानमंत्री अटक-अटक और संभल-संभलकर बोले और अपने कंजर्वेटिव (अनुदार) साथियों तकमें उन्होंने ऐसा गुस्सा भड़का दिया कि वे चिल्लाकर मजदूरदली नेतासे कहने लगे कि वह राष्ट्रके पक्षमें बोलें। मि. चेंबरलेनने जनमतकी शक्तिको भांप-

कर उसी रात जर्मनीको अपनी आखिरी चेतावनी भिजवा दी ।

हमलेके खिलाफ और जनतंत्रके पक्षमें लड़ी जानेवाली इस लड़ाईके नेता ये हैं । म्यूनिक और स्पेनके भूत जैसे दुनियाके पीछे पड़े हैं, वैसे ही उनके पीछे भी पड़े हुए हैं । शांति और आजादीको ये नेता लोग नहीं ला सकते । क्या हिंदुस्तान, जो कि नाराजी और जिदके साथ उनकी विदेशी नीतिके खिलाफ रहा है, अब उन्हींके हाथकी कठपुतली बननेपर राजी हो सकता है ? लेकिन इस सवालका जवाब तो वाइसराय पहले ही दे चुके हैं ।

बीस बरस बीत गये हैं और याद्दाश्तके बाहर जा चुके हैं । वाइसरायका कोई वक्तव्य भी उन्हें वापिस नहीं बुला सकता । हिंदुस्तानने उनसे बहुत कुछ सीखा है, अपनी ताकत बढ़ाई है और बहुतसे भेद-विभेदोंके होते हुए भी उसने ध्येयकी एकता पैदा की है । वह पीछे नहीं हटेगा और वह कमजोर होगा, उसे रास्ता बतानेवाले खराब होंगे तो भी दुनिया उसे ऐसा नहीं करने देगी, क्योंकि आज दुनियामें सबसे महत्त्वकी बात है पुरानी राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाका खात्मा होना, इन टूटे अंडोंको फिरसे नहीं जोड़ा जा सकता । नष्ट होती हुई इस व्यवस्थाका प्रतिनिधित्व करनेवाला ब्रिटिश साम्राज्य कूच करेगा और मौजूदा आर्थिक-प्रणालीकी जगह दूसरी आकर रहेगी ।

हम पीछे नहीं हट सकते और न इस गतिशील दुनियामें एक जगह खड़े ही रह सकते हैं और वे लोग जो इस बातको नहीं समझते या घटनाओंसे कदम मिलाकर नहीं चल सकते, उनकी पहलेसे ही कोई पूछ नहीं रह गई है और वे उसी तरहसे अलहदा हो जायेंगे कि जैसे कूच करती हुई फौजमेंसे आवारागर्द आदमी हो जाते हैं ।

कांग्रेसने इंग्लैंडकी सरकार और जनताके आगे दोस्ती और सहयोगका हाथ बढ़ाया था और चाहा था कि हिंदुस्तान और इंग्लैंडके बीच जो लंबा झगड़ा है वह खत्म हो जाये । यह एक बहादुरीका प्रस्ताव था जो कि इन एकमात्र संभवनीय शर्तोंपर किया गया था कि हिंदुस्तानको आजादी दी जाये और बराबरीकी भावनासे किसी भी सम्मिलित कार्रवाईमें एक-दूसरेको सहयोग मिले । कांग्रेसने कोई अधिकार या सत्ता अपने लिए नहीं मांगी थी । वह तो हिंदुस्तानियोंके लिए यह अधिकार चाहती थी कि वे अपनी राष्ट्रीय पंचायत चुनकर उसके द्वारा

अपना विधान बनाये और सत्ता प्राप्त करें। इस समस्याका यही एकमात्र जनतंत्रात्मक हल था। वह सबके लिए भला था और मुमकिन था कि उसकी वजहसे इंग्लैंडसे मित्रताका संबंध कायम हो जाता।

यह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। लेकिन समय-चक्र चलता जा रहा है और जल्दी ही ऐसा मौका आ सकता है कि उस प्रस्तावको भी अमलमें लानेका वक्त न रह जाये। हिंदुस्तानके लाखों-करोड़ों आदमियोंको अब पीछे रोककर नहीं रखा जा सकता और अगर उनके लिए एक दरवाजा रोक भी दिया गया है तो वे दूसरे दरवाजे खोल लेंगे।

१८ अक्तूबर, १९१९

: १३ :

१९१९-३९

पिछले अध्यायमें हमने बहुत थोड़ेमें यूरोपके पिछले बीस बरसोंपर नजर डाली है। हिंदुस्तानकी परिस्थितिको समझनेकी खातिर भी ऐसा करना जरूरी था, क्योंकि यूरोप दुनिया भरके तूफानोंका केंद्र रहा है और उसके भीतरी संघर्ष और विरोधके धक्के बहुत दूर-दूर पहुंचे हैं। हिंदुस्तानने इस चलते-फिरते और दुख भरे नाटकको बड़ी फिक्र और दिलचस्पीके साथ देखा है और उसके संबंधमें अपनी राय जोरदार शब्दोंमें व साफ-साफ जाहिर करदी है। चूंकि हिंदुस्तान साम्राज्यवादका विरोध करता आ रहा है, इसलिए लाजमी तौरपर उसकी सहानुभूति हमलोंके शिकार होनेवाले मुल्कोंसे रही और खुद अपने हित-के लिए भी वह फासिज्म और नात्सीवादकी बढ़ती हुई लहरका मुकाबला करनेको प्रेरित हुआ। चीन, अबीसीनिया, आस्ट्रिया, फिलस्तीन, चेको-स्लो-वाकिया और स्पेनकी घटनाओंसे हिंदुस्तानियोंको गहरा धक्का पहुंचा और इनके बारेमें इंग्लैंडकी जो साम्राज्यवादी नीति है उसपर उन्होंने नाराजगी और निंदा जाहिर की। हिंदुस्तानको भविष्यका और उस लड़ाईका खयाल आने लगा जो आये बिना न रहनेवाली जान पड़ती थी और इस संबंधमें उसने अपनी

नीति तय की। ज्यों-ज्यों जमाना बदलता गया हिंदुस्तानके विचारोंमें विकास होता गया और उसने अपनेआपको बदलती हुई परिस्थितिमें ढाल दिया।

१९१९का साल हिंदुस्तानके लिए दिशा-परिवर्तनका समय था। माटेग्यू आकर लौट गये थे और उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई थी। जैसी कि हमेशा हिंदुस्तानमें अंग्रेजोंकी नीतिमें रहा है, उसके लिए वक्त नहीं रह गया था। हिंदुस्तानियोंने भारी बहुमतसे उसको और उस कानूनको जो इसके मातहत बनाया गया था, ठुकरा दिया। कुछ नामी हिंदुस्तानी, जो कि अबतक कांग्रेसमें थे, दूसरी तरह सोचते थे, और उन्होंने कांग्रेसको छोड़कर नरम दल बना लिया। लेकिन उनका अलग होना ही इस बातको जाहिर कर रहा था कि राष्ट्र कहां है? क्योंकि मुट्ठी भर लोग ही उस भारी बहुमतके खिलाफ थे। १९१९की प्रस्तावित सुधार-योजनाको जो अंग्रेज सरकार आज हमें दे रही है, हमने उसी साल बड़ी हिकारतके साथ ठुकरा दिया था। १९१९में भी तो वह जैसी चाहिए वैसी न थी।

रौलट एक्ट आया और हिंदुस्तानके राजनैतिक मंचपर महात्मा गांधीके रूपमें एक बड़ी जबर्दस्त तात्त्विक शक्ति प्रकट हुई जो हमारे राजनैतिक जीवनमें एक क्रांति लाई। पंजाबका मार्शल लॉ, जलियांवाले बागका हत्याकांड, खिलाफत-आंदोलन और असहयोग— बस हिंदुस्तानकी जनतामें एक हलचल मच गई कि जैसी अबतक कभी नहीं देखी गई थी। स्वराज हमारा ध्येय था और उसीके लिए हम लड़ रहे थे, इस प्रस्तावित विधान या उस वायदेके लिए नहीं जो कि ब्रिटिश मंत्रीगण हमसे खुशी-खुशी कर लें।

इन हालकी घटनाओंपर नजर डालनेकी हमें जरूरत नहीं है, हालांकि घटनाचक्र इतनी तेजीसे घूमता रहा है कि ये हालके वाकयात आज बहुत पुराने-से पड़ गए जान पड़ते हैं और आजकी पीढ़ीके बहुत-से लोगोंको उनका पता तक नहीं है। उनकी याद्दाश्त कमजोर है। लेकिन इन बरसोंमें हिंदुस्तानका नक्शा बदल गया है और खेतो के गरीब और नाचीज किसान तक-का आज पहलेसे बहुत काफी कायापलट हो चुका है।

बारह बरस पहले मद्रासमें कांग्रेसने स्वतंत्रताकी बात कही थी और दो बरस बाद रावी-तटपर हमने उसकी प्रतिज्ञा ली और उसे पानेका पवित्र संकल्प

किया। उसके बाद सविनय आज्ञा-भंग आया और हिंदुस्तानके नर-नारियोंने मिल-जुलकर तकलीफों और कुर्बानियोंके बीच फिरसे वह प्रतिज्ञा ली। एक साम्राज्यने अपनी ताकतसे उन्हें कुचल देने और उनमें फूट पैदा कर देनेकी कोशिशें की और थोड़े दिनोंके लिए उसे ऊपरी कामयाबी मिली भी; लेकिन आजादी-की उस तेज ज्योतिको जो हमारे दिलोंमें जोश भर रही थी और मनमें रोशनी कर रही थी—— कौन कुचल सकता था, कौन बुझा सकता था ?

फिर गोलमेज-परिषद्का सूना-सूना सिलसिला शुरू हुआ और अंग्रेजोंकी कुटिल राजनीतिने हिंदुस्तानके उन सब लोगोंको जो उसके आजाद होनेकी इच्छाके विरोधी और प्रतिगामी थे, इकट्ठा और संगठित करनेकी कोशिश शुरू की। उसके बाद आया १९३५का एक्ट और हमने उसे नामंजूर किया। तो भी लंबे बहस-मुबाहिसेके बाद हमने मंत्रिमंडल बनानेका फैसला किया। इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि तब हमने ठीक किया था या गलत; मगर हम उस एक्टके खोखलेपनको और उससे हमारे चारों ओर जो खाइयां हो गई थीं उन्हें तो जान ही चुके हैं। पीढ़ियोंसे साम्राज्यवादी और धौंस जमानेवाली स्वे-च्छाचारी हुकूमतके फलस्वरूप हम बड़े-बड़े मसलोंमें घिर गए। अपने-अपने इलाकोंमें मनमानी करनेवाले देशी राजाओंकी अंग्रेज अधिकारियोंने हिमा-यत और मदद की। एक पुराने जमानेकी भूमिपद्धति जनतापर भारी बोझ बन रही थी। हमारे शासकोंकी विदेशी हितों और उद्योगोंको संरक्षण देने और अपने संरक्षण और विशेषाधिकारकी नीतिके कारण न तो हमारा व्यापार ही तरक्की कर सकता था और न उद्योग-धंधे ही। हमारी आर्थिक नीति ऐसी बनाई गई थी कि वह लंदन शहरका ही भला कर सके। ब्रिटिश हितोंकी खातिर हमारी मालगुजारीको बड़े पैमाने पर गिरवी रखकर नौकरियां सुरक्षितकी गई थीं। यह था वह 'प्रांतीय-स्वराज' जो हमें मिला। इसमें हालांकि जनताके चुने हुए मंत्री लोग हकूमत की कुर्सियोंपर बैठाए गए थे, लेकिन शासनका साज-सामान तो वही पुराने ढंगका, तानाशाही और नौकरशाही था। उसे वे नई-नई बातें बिलकुल पसंद न आती थीं और वह उसमें रोड़े अटकानेमें अपनी तरफसे कोई कसर नहीं रखी थी। इससे भी बदतर बात जो थी वह यह थी कि देशमें विच्छेदकारी वृत्तियों और प्रतिगामी दलोंको बढ़ावा देनेकी उनकी

कोशिश लगातार जारी थी ताकि उसी शासनकी जड़ कमजोर पड़ जाये जिसमें सहयोग देनेका वे दम भरते थे ।

इतना होते हुए भी, प्रांतीय सरकारोंने बहुत-कुछ अच्छे-अच्छे काम किए और जनताके बोझको थोड़ा-बहुत हल्का किया । लेकिन तकलीफें उनकी हमेशा बढ़ती ही रहीं और साफ नजर आने लगा कि हिंदुस्तानकी समस्या तब-तक सुलझ नहीं सकती, जबतक कि जनताके हाथमें सच्ची ताकत न आ जाये । स्वेच्छाचारी और गैरजिम्मेदार सरकार तो हथियारोंके बलपर देशको कब्जेमें करके उसपर हुकूमत चला सकती थी; लेकिन जनताकी चुनी हुई और जिम्मेदार सरकार ऐसा तभी करेगी जबकि उसके पास असली ताकत होगी और उसमें भी जनताकी राय होगी । बीचकी कोई भी स्थिति अस्थायी होती और ज्यादा अर्सेतक नहीं चल सकती, क्योंकि ताकत तो मिली थी, पर उत्तरदायित्व नहीं दिया गया था ।

तो, त्रिपुरी-कांग्रेसमें इन पिछली घटनाओंके अनिवार्य और आवश्यक फल-स्वरूप 'राष्ट्रीय मांग' पेशकी गई । 'प्रांतीय स्वराज'—जैसा भी वह था—अपनेआप खत्म हो चुका था और उसकी जगह हिंदुस्तान का ही बनाया हुआ शासन-विधान—भारतीय स्वराजका हुक्मनामा—आना जरूरी था । यह मांग कोई नई नहीं थी, क्योंकि कांग्रेस विधान-पंचायनकी मांग बरसोंसे करती आ रही थी । कांग्रेसने १९३५का शासन-विधान कभी मंजूर नहीं किया था । तमाम प्रांतीय धारासभाओंका सबसे पहला प्रस्ताव इसी अस्वीकृतिपर जोर डालने और विधान-पंचायनकी मांग करनेके बारेमें था । तो यह मांग नई नहीं थी । हां, उसमें अब लाजमीपन और जुड़ गया था । संघर्षको छोड़कर अब दूसरा रास्ता नहीं रहा ।

युद्ध बीचमें आ पड़ा और सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया और हमें नए तौर-तरीकोंसे सोचनेके लिए मजबूर हुए । हिंदुस्तानकी उस वक्तकी व्यवस्था निहायत गैरवाजिब और आगे न चल सकनेवाली हो गई । हमारे सामने दो रास्ते थे और उनमेंसे किसी एकको हमें पसंद करना था—या तो आगे बढ़कर स्वतंत्रताको हासिल करें और राष्ट्रको आजाद बनाएं या फिर प्रांतीय स्वशासनके अंधेरेकी छायाकी तरफ लौट जायें, जहां हमपर प्रभुतावादी केंद्रीय सरकारका कब्जा

रहे। युद्धमें और दूसरे मसले भी उठ खड़े हुए, मगर फिलहाल तो हम अपनी अंदरूनी हालत को ही ले ।

पीछे हटनेकी तो हिंदुस्तान संभावना और कल्पना तक नहीं कर सकता था। मौजूदा परिस्थितियोंमें काम चलना मुश्किल हो गया था। इसलिए लाजमी तौरपर हिंदुस्तानने अपनी पुरानी 'राष्ट्रीय मांग' दुहराई और स्वतंत्र राष्ट्रके रूपमें अपना सहयोग देनेका अभिवचन दिया। इस बात पर भी हिंदुस्तानने जोर नहीं दिया कि उसे बिना उसकी राय लिए और उसके अपनी घोषणा कर चुकनेपर भी वह लड़ाईमें शरीक देश मान लिया गया। कोई भी आत्म-सम्मान रखनेवाला देश उसकी जैसी स्थितिमें इससे बढ़कर सुंदर, स्पष्ट और उदारताका अभिवचन नहीं दे सकता था। इसमें सौदा पटानेकी बाजारू भावना बिलकुल नहीं थी।

फिर भी इसको हिकारतके साथ ठुकरा दिया गया है और हमसे कहा गया है कि हम मुड़कर २० साल पहले उस चीज की तरफ देखें, जिसे हमने उसी वक्त यह कहकर अलग फेंक दिया कि वह विचार करने लायक नहीं है। वे सोचते हैं कि हम हिंदुस्तान की पिछली पीढ़ीके इतिहासको भूल जायं, वर्त्तमानको न देखें, सारी दुनियामें जो कुछ हो रहा है उसपर ध्यान न दें, अपनी गंभीर प्रतिज्ञाओंको तोड़ दें और अपने साम्राज्यवादी शासकोंके इशारेपर उन सपनों और आदर्शोंका गला घोंट दें, जिनसे हमें जिन्दगी मिली है, ताकत हासिल हुई है!

वक्त गुजरता जा रहा है, दुनिया बदलती जा रही है और कलकी राष्ट्रीय मांग इतिहासकी पुरानी घटना हो चुकी है। कल शायद वह भी नाकाफी हो जाये।

२० अक्तूबर, १९३९

: १४ :

"आजादी खतरेमें है!"

लंदनकी अनेक दीवारों और घरोंपर और इंग्लैंड भरमें मोटे-मोटे अक्षरोंमें ये वाक्य लिखे हुए है—"**आजादी खतरेमें है। अपनी पूरी ताकत**

लगाकर उसे बचाओ" यह ब्रिटिश सरकारकी अपनी जनतासे अपील है कि वे लड़ाईमें शरीक हों और आजादीके लिए अपनी जानें कुर्बान कर दें। किसकी आजादीके लिए? हिंदुस्तानकी आजादीके लिए नहीं, यह हम जानते हैं; क्योंकि ऐसा हमसे कहा गया है। ब्रिटिश और दूसरे साम्राज्यवादोंके गुलाम देशोंके लिए भी नहीं, क्योंकि हमारी मांगके बावजूद इंग्लैंडके सम्राट् उस बारेमें समझदारीके साथ खामोश हैं। क्या इंग्लैंड यूरोपकी आजादीके लिए लड़ रहा है, जैसा कि मि. चेंबरलेनने कहा है? यूरोपके किस देशके लिए और कौनसी जनताके-लिए? हमें खयाल आता है एक छोटेसे देशका कि जो किसी दिन था और जिसे चेको-स्लोवाकिया कहते थे। इंग्लैंडके प्रधानमंत्रीने साल भर पहले जिसके बारेमें कहा था, "वह सुदूर देश जिसके बारेमें हम कुछ नहीं जानते" और फिर उसीका खात्मा करने चले थे। एक दिन स्पेनमें भी एक बहादुर जन-सत्तात्मक प्रजातंत्र था; लेकिन उसको उन लोगोंने मटियामेट कर दिया जो कि उसके दोस्त बननेका ढोंग रचते थे और जनतंत्रकी लल्लोचप्पो करते थे।

एक दिन पोलैंड भी था। पर अब नहीं है! क्या पुराना पोलैंड फिर उठेगा? क्या मि. चेंबरलेन यह मानते हैं या इसके लिए लड़ते हैं? आधा पोलैंड आज उस आजादीसे भी ज्यादा पा गया है जो उसे पहले भी मिली होगी और आज मास्कोकी पार्लमेंटमें उसके प्रतिनिधि उसकी तरफसे बोलते हैं। यह अजीबसी बात है कि जबकि हम हिंदुस्तानमें राष्ट्रीय पंचायतों और विधानोंपर लगातार बात ही किये जाते हैं, तब युद्धमें पड़ा एक देश कुछ हफ्तोंमें ज्यादा आजादीवाला विधान लेकर उठ खड़ा होता है।

इंग्लैंड किसलिए लड़ रहा है? मि. चेंबरलेन किसकी आजादीके लिए इतने उतावले हैं? अगर वह अंग्रेजोंकी आजादी है तो उन्हें अपने आदमियोंसे अपील करनेका पूरा हक है; लेकिन बर्नार्ड शॉ और दूसरे लोगोंने हमें बताया है कि किस तरह इंग्लैंडके हरे-भरे और मनोरम प्रदेशोंसे आजादी युद्ध-कालीन कानूनोंकी वजह से तेजीके साथ हवा होती जा रही है। जर्मनीके जिस फासिज्म और प्रभुतावादकी अंग्रेजोंने निंदा की है, वही धीरे-धीरे इंग्लैंडमें घुसा आ रहा है और अंग्रेजोंकी जनतंत्रात्मक क्षमताओंको मार रहा है। इंग्लैंड आज जन-तंत्रात्मक देश नहीं है और जिस साम्राज्यवादका उसने बाहर लालन-पालन किया

था, वहीं फासिज्मके बानेमें उसके पास वापस लौट रहा है ।

जब हमारे पूछने पर भी अंग्रेज हमें बताते नहीं, तो हमें कैसे मालूम हो कि इंग्लैंड किसलिए लड़ रहा है ? लेकिन दिखावटी खेल जो हो रहा है, उससे हमें रोशनी मिल सकती है और हमारे सवालोंका जवाब मिल जाता है । भले ही सरकारी अफसरोंके ओठ सिले हुए हों, मगर उनके कामोंसे उनकी मंशा साफ दिखाई दे जाती है । शांतिके समय जैसा हमने साम्राज्यवादका पूरा बोलबाला देखा, वैसा ही युद्धके जमानेमें भी हम देख रहे हैं । और ब्रिटेनका शासकवर्ग अपने साझेके हिस्से और स्थापित स्वार्थोंसे चिपका हुआ है । दूसरोंकी कीमतपर अपने हिस्सोंको बढ़ानेकी जो आजादी उसे इस समय मिली हुई है, उसे गंवा देनेका उसका इरादा नहीं है । यही आजादी है कि जिसके लिए ब्रिटेनके शासक लड़ रहे हैं । इसी आजादीकी रक्षाके लिए वे अपने देशके पौरुष और यौवनका आवाहन कर रहे हैं और हमारे पौरुषको भी चुनौती देना चाहते हैं ।

लार्ड जेटलैंड हमसे कहते हैं—**"सम्राट्की सरकार इस स्थितिको कबूल करने में असमर्थ है ।"** और वह **'स्थिति'** यह है कि कांग्रेसने मांग की है कि हिंदुस्तानको 'स्वतंत्र देश' घोषित कर दिया जाये और उसे अधिकार हो कि बिना किसी बाहरी दखलके ऐसी राष्ट्रीय पंचायतके जरिये वह अपना विधान बना ले कि जो व्यापक-से-व्यापक मताधिकारपर चुनी गई हो । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके बारेमें वह समझौतेसे काम ले और समझौतेसे ही अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंको संरक्षण दे । यह उससे हो नहीं सकता । इस प्रकार एक सीधा जवाब पाकर हमारा भी बोझ हल्का हो गया है ।

जेटलैंड साहब आगे कहते हैं—**'इतने दिनोंसे इंग्लैंडका हिंदुस्तानके साथ जो संबंध रहा है, उससे सम्राट्की सरकारकी हिंदुस्तानके प्रति कुछ जिम्मेदारियां हो जाती हैं । इसलिए हिंदुस्तानके शासनके स्वरूप तैयार करनेमें कोई भी दिलचस्पी न दिखाकर वह उसे यों ही नहीं छोड़ सकती ।'** हमने खुद स्पष्ट रूपसे सोचा था कि सम्राट्की सरकारके आर्थिक या औद्योगिक या दूसरे हितोंके प्रति जो जिम्मेदारियां हैं, उन्हें वह भूल या दरगुजर नहीं कर सकेगी और उनका आजादीसे जो प्रेम है, वह जब इन जिम्मेदारियोंके साथ टकरायेगा तो सरकार कड़ाईके साथ उसको दबायेगी । इन उदार दिलवाले मार्क्विसके इस

बचाव और इस सफाईके लिए हम उनके मशकूर हैं। अब इसकी चर्चा न की जाये कि हिंदुस्तानकी आजादीकी घोषणाके रास्तेमें सांप्रदायिक मामलोंसे रुकावट आती है। रुकावट डालनेवाला तो लंदनका नगर है और हैं वे सब, जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। लार्ड और कॉमन सभावाले तो उसकी मर्जीपर चलनेवाले हैं।

लंबे बहस-मुबाहसों और इनायतभरी सलाहों और मुलाकातों और साम्राज्यवादके फौलादी पंजोंको ढकने और छिपानेके खिलवाड़से हम कुछ उकता-से गये हैं। अब तो हम असलियतको देखना और उसका सामना करना ज्यादा पसंद करते हैं। हिंदुस्तानमें स्वेच्छाचारी हुकूमत करते रहना और विधानको बिलकुल रोक देना आजादीके साथ होनेवाले इस मजाकसे कहीं अच्छा है। हमारे लिए भी दफ्तरोंकी कुर्सियोंमें बंधे रहने और हमारे ऊपर थोपे गये विधानके कैदी बने रहनेसे बेहतर यह है कि हम बयाबानमें बसें।

सम्राट्की सरकार हमारी स्थितिको कबूल करनेमें असमर्थ है। हमारे लिए भी असंभव है कि हम उनकी स्थितिको या स्वतंत्र राष्ट्रको छोड़कर और किसी भी स्थितिको कबूल करें। इस प्रकार दोनों आमने-सामने खड़े हैं और बीचमें है एक चौड़ी खाई जिसे पाटा नहीं जा सकता। अब तो भविष्य—लड़ाईका और क्रांतिकारी तब्दीलियोंका भविष्य—ही हमारे बीच फैसला करेगा। हम भविष्यका महज इंतजार ही नहीं करेंगे, बल्कि उसे बनानेमें मदद देंगे। इस वक्त तो हम दो खुली बेबसियोंकी टक्करको मंजूर करें और भविष्यके बारेमें सोचें और उसके लिए अपनेको तैयार करें।

लेकिन तबतक हम कम-से-कम एक बार ब्रिटिश सरकारके आदेशको कबूल कर लें और अपनी जनताको याद दिला दें कि—

"आजादी खतरेमें है! अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे बचाओ!"

८ नवबंर, १९३९

: १५ :

रूस और फ़िनलैंड

रूस और फिनलैंडका झगड़ा युद्धमे बदल गया है। किसी ऐसे छोटे देशके साथ हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है जिसपर एक बड़ी ताकतने हमला किया है। लाजिमी है कि नात्सी हमलोंकी हालकी मिसालोंके साथ हम रूसके अकारण किये गए आक्रमणकी तुलना करें। क्या हम भूल सकते हैं कि बरसोंसे सोवियट रूसने ऐसे सब आक्रमणोंकी निंदा की है और ऊंची आवाजसे हमलावर राष्ट्रके खिलाफ कार्रवाई करनेकी मांग की है ?

ये प्रतिक्रियाएं अनिवार्य हैं। मगर फिर भी हम यह याद रखें कि हम युद्धके दिनोंमें रह रहे हैं और हमारे चारों तरफ एकतर्फा खबर और प्रचारका जाल फैला है। अगर हम इन खबरों और प्रचारकी कमजोर और फिसलानेवाली नींवपर अपनी आखिरी राय कायम कर लेंगे, तो ऐसा करना न सिर्फ असुरक्षित ही होगा बल्कि हम उससे गलत रास्तेपर जा सकते हैं। हमारे लिए घटनाओंको सही दृष्टिकोणसे देखना और पक्षपातपूर्ण प्रचारसे बहक न जाना उतना जरूरी पहले कभी न था, जितना कि आज है। फिनलैंडके साथ हमारी सहानुभूति है, लेकिन उन सत्ताओंके साथ नहीं जो मतलबके लिए फिनलैंडसे बुरा फायदा उठा रही हैं। फासिस्ट इटलीतक पुकारकर कहता है— 'हाय, बेचारा नन्हा-सा फिनलैंड!' और रूस द्वारा फिनलैंडपर किये गये आक्रमणपर बड़ी गंभीरताके साथ भय प्रकट करता है।

हम ऐसे जमानेमें रह रहे हैं कि जो बहुत ही हल्ले-गुल्ले और आक्रमणमूलक सत्ताकी राजनीतिका जमाना है। आज मनुष्यके व्यवहारों और अंतर्राष्ट्रीय कानूनमें हिंसा और हिंसाकी धमकीका बोलबाला है और जहांतक सरकारोंका संबंध है, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य रहे ही नहीं हैं। दुनियामें 'मीन कैम्फ़'का सिद्धांत नात्सियोंके बल या चालोंके बनिस्बत कहीं अधिक प्रभावशाली रूपमें फैला हुआ है। यह सिद्धांत कोई नया नहीं है, हालांकि इतनी स्पष्टता और बेहयाईके साथ शायद ही कहीं बतलाया गया होगा जितना नात्सी दुनियाके इस

धर्म-ग्रंथमें बनाया गया है। पुराने साम्राज्यवादोंने तो ठिकाने लगकर इज्जतकी बाहरी पोशाक पहन ली और मीठी और नरम भाषायें बोलने लगे, लेकिन वह नीति, जिसने गुजरे जमानेमें उनपर हथियार रखा और इस जमानेमें भी रखती है, 'मीन कैंफ'की नीति है; क्योंकि वह साम्राज्यवादका भी उसी तरह सार है, जिस तरह वह नात्सीवादका सार है। दोनोंमें फर्क यह है कि नात्सीवाद इस नीतिको घर-बाहर दोनों जगह लागू करता है। साम्राज्यवाद उसे खासकर बाहर लागू करता है और घरपर जनतंत्रका दिखावा करता है। लेकिन जब फासिज्मकी प्रतिक्रिया और रीति-नीति पुराने साम्राज्यवादोंके घरोंमें घुस आती है तो वह फर्क कम हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियोंके बुर्केमें फ्रांस आज सैनिक नानाशाही शासनमें रह रहा है; इंग्लैंड ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिगामी होता जा रहा है।

सोवियट रूसकी इंग्लैंड और फ्रांसने बरसोंसे अवहेलना और बेइज्जती की, तो वह भी उनपर चढ़ बैठा है और उसने उन्हें दिखा दिया कि वह भी सत्ताकी राजनीतिका खेल सफलतापूर्वक खेल सकता है। दुनिया भौंचक रह गई और यूरोपमें सारा संतुलन ही एकाएक बदल गया। रूस एक ताकतवर राष्ट्र बन गया और उसकी इच्छाकी भी वकत होने लगी। लोग तेजीसे क्रेमलिनके महलमें कदमबोसीके लिए जाने लगे। रूसने अवसरवादी खेल खेला और पश्चिमी देशोंकी कूटनीतिका जो नमूना था, उसीके मुताबिक आश्चर्यजनक होशियारीके साथ खेला। उसने कहा कि क्रियात्मक रूपसे वह भी यथार्थवादी है। यथार्थवादके नामपर जो कुछ उसने किया, उससे हमें बहुत दुःख पहुंचा है और यूरोप और सुदूरपूर्वमें हालमें उसकी जो नीति रही है उसे समझना बहुत मुश्किल है।

हमारा विश्वास है कि वास्तविक राजनीतिमें सोवियट रूसने जो ये दुस्साहस-पूर्ण कार्य किये उनसे उसके उद्देश्यको नुकसान ही हुआ है; चाहे सत्ताकी, राजनीति-की भाषामें उसकी ताकत बढ़ गई हो। कारण यह है कि रूसकी शक्ति तो उन आदर्शवादों और सिद्धांतोंमें थी जिनका कि वह समर्थन करता था। वे सिद्धांत भले ही आज भी वहां हों—कौन जानता है?—लेकिन वह आदर्शवाद तो कमजोर पड़ता जा रहा है और दुनिया इस हानिसे बहुत-कुछ खो बैठी है। हम दावेके

साथ कह सकते है कि लड़ाईके इन दिनोंमें भी निरे अवसरवादसे मिलनेवाली ऐसी कामयाबीसे जिसमें कोई नैतिक सिद्धांत नहीं है कोई भी देश बहुत दूर नहीं जा सकता।

लेकिन रूसके बारेमें फैसला करते समय हमें याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने उसके साथ जो कुछ किया है उसीका बदला वह उन्हें चुका रहा है। ये राष्ट्र आज अगर डरके मारे हाथ जोड़ रहे हैं, क्योंकि उनके साथ चालाकियां चली गई है और उन्हें हराया गया है, तो इससे हमारे हृदयमें उनसे सहानुभूति होना जरूरी नहीं है।

इंग्लैंड और कुछ दिन पहले फ्रांसकी बुनियादी नीति सोवियटकी नीतिके खिलाफ रही है। उन्होंने इस आशासे नात्सी जर्मनीके आगे समर्पण कर दिया कि हिटलर पूर्वकी ओर बढ़ेगा और सोवियटको खतम कर देगा। उन्होंने रूसके साथ, ऐसे वक्तमें भी, जबकि खतरा उनके सिरपर खड़ा था, सुलह करनेसे इन्कार कर दिया। अपनी साजिशोंमें ये नाकामयाब रहे। अब भी जबकि लड़ाई चल रही है हर वक्त अंदर-ही-अंदर यह कोशिश जारी है कि उसे सोवियट-विरोधी युद्ध बना दिया जाये। पिछले तीन महीनोंमें जो कुछ हुआ है उसके बावजूद अब भी यह मुमकिन समझा जाता है कि घटना-चक्र एकदम पलटे और पश्चिमी राष्ट्र रूसके खिलाफ संयुक्त हमला करने के लिए जर्मनी और इटलीके साथ मिल जायें। फ्रेंच सरकार आज जितनी सोवियट-विरोधी है, उतनी और कोई सरकार नहीं है। हालही में रूसके पोलैंडपर हमला करनेसे भी पहले ब्रिटिश, अमरीकन और फ्रेंच अखबारोंमें रूसपर जोरोंके हमले हुए है। खबर है कि इटली फिनलैंडको हथियार, हवाई जहाजोंकी मशीनें और गोला-बारूद भेज रहा है। इटलीके वालंटियर भी वहां भेजे जायेंगे, ऐसी सम्भावना है।

साफ है कि यह मामला रूस और फिनलैंडके बीचका ही नहीं है, बल्कि उससे बहुत-कुछ ज्यादा है। इस सबसे यह पता चलता है कि उस सोवियट-विरोधी मोर्चेने जिससे रूसके राजनेता बरसोंसे डरते आ रहे हैं, ऐसी अजीब शक्ल अख्तियार की है। इस बातसे डरकर इस खतरेका मुकाबला करनेके लिए रूसने अपने चारों तरफ किलेबंदी करनेकी कोशिश की है और बाल्टिक राज्योंमें

उसकी जो नीति रही है, वह भी इसी बातको जाहिर करती है । फिनलैंडका डर उसे नहीं है, बल्कि डर उसे यह है कि कही फिनलैंडके प्लेटफार्मपर कूद-फांदकर दूसरे राज्य उसपर हमला न कर दें ।

कुछ बरसोंसे यह बात सब जानते हैं कि नात्सियोंने कूटनीतिसे फिनलैंडमें होकर रूसपर हमला करनेकी योजनाएं बनाई थीं । नक्शेपर निगाह डालनेसे पता चलेगा कि यह कितना व्यावहारिक है और किस प्रकार फिनलैंडकी सरहदसे लेनिनग्रेडके बड़े नगरतक आसानीसे फौज जा सकती है । इस बातको ध्यानमें रखते हुए सोवियट सरकारकी अपने इस महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध केन्द्रको बचानेकी उत्सुकता समझमें आ सकती है ।

जबसे इंग्लैंड-फ्रांस-जर्मनीकी यह लड़ाई शुरू हुई है, तभीसे सोवियटकी नीति संभावित हमलेसे अपनेको बचाने और अपनी स्थितिको मजबूत करनेकी रही है । यह नीति (संधिके बावजूद भी) नात्सियों और अंग्रेजोंके दावोंके खिलाफ रही है । असलमें वह स्वार्थपूर्ण रूपसे सोवियट-समर्थक रही है । हाल हीमें रूसने जो कुछ किया है, उससे हम सहमत नहीं हैं, लेकिन दुश्मनोंके संभावित मेलके खिलाफ अपने बचावकी उसकी हार्दिक इच्छाको हम पूरी तरहसे समझ सकते हैं । नतीजा यह हुआ है कि इस नीतिसे मित्र-राष्ट्र जितने कमजोर हुए हैं, उससे ज्यादा नात्सी जर्मनी कमजोर हुआ है । जर्मन सत्ता उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें शिकंजेमें आगई है और अगर सोवियटोंको नहीं हटाया जायेगा, तो उन दिशाओंमें नात्सियोंके बढ़नेके तमाम सपने खत्म हो जायेंगे ।

हम फिर इस बातको याद रखें कि ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यवादको जितनी घृणा नात्सीवादसे है, उससे कहीं ज्यादा सोवियट रूससे है । इस बातकी संभावना है, और इसको हम दरगुजर नहीं कर सकते कि कुछ राष्ट्र आपसमें मिल जायें और सोवियटके खिलाफ खड़े होकर उसे नष्ट करनेकी धमकी दें । हम नहीं सोचते कि इतने पर भी उनकी जीत हो सकती है । लेकिन रूसका जो महान् प्रयोग चल रहा है, उसमें कोई रुकावट आ गई या वह खत्म हो गया, तो यह बड़े दुखकी घटना होगी । यह जरूर है कि इस प्रयोगमें बहुत-सी अवांछनीय बातें भी हुई हैं, जिनपर हमने बहुत अफसोस किया है; लेकिन फिर भी लाखों-करोड़ों सर्व-साधारण लोग उसपर आशा बांधे हुए हैं ।

सोवियट रूस ही था जिसने खुशीके साथ फिनलैंडको आजादी दे दी और सिर्फ कुछ ही दिन गुजरे फिनलैंडके प्रधानमंत्रीने खुद कहा था कि सोवियटकी मांगोंसे फिनलैंडकी आजादीको कोई खतरा नहीं हुआ। लेकिन फिनलैंडके पीछे छिपकर तो दूसरी ताकतें वार करने लगी और आज फिनलैंडमें जो कशमकश चल रही है, वह इसी संघर्षका फल है।

इसलिए हम होशियार रहें और एकतर्फा व पक्षपातपूर्ण खबरोंपर समयसे पहले निर्णय न करें। लेकिन जहांतक हिंदुस्तानके हम लोगोंका संबंध है उनके लिए तो नसीहत स्पष्ट है। आज दुनियाके हरेक देशको अपने बचावका उपाय करना होगा और हरेक आदमीको अपनी ही ताकतपर भरोसा करना होगा। हम भी अपनी शक्तिका अपने ही अहिंसात्मक लेकिन प्रभावशाली ढंगसे निर्माण करें, जिससे हम साम्राज्यवादके हर तरहके हमलोंका मुकाबला करके हिंदुस्तानकी आजादी हासिल कर सकें।

३ सितंबर, १६३६

: १६ :

अब रूसका क्या होगा ?

पिछले कुछ महीनोंमें बहुत-से हेर-फेर हुए हैं, बहुतेरी मुसीबतें आई हैं और दुनिया और भी गहरे दलदलमें फंसती जा रही है। भविष्य अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण है और वह ज्वलंत आदर्शवाद जो कि तीन बरसोंके संघर्षों और विश्वासघातोंमें भी किसी तरह बच रहा था, आज गायब होता नजर आ रहा है। दुनियामें लड़ाई और हिंसा, आक्रमण और कूटनीति और विशुद्ध अवसर-वादका बोलबाला है और आगे आनेवाली चीजोंकी शक्ल और भी अस्पष्ट और विरूप होती जाती है। राजनीतिज्ञोंकी लच्छेदार भाषाकी कोई परवा नहीं करता, न उनपर कोई भरोसा करता है और न उनके वायदोंपर ही किसीको यकीन आता है। नई आनेवाली व्यवस्था और सच्चा होनेवाला सपना अब कहां चला गया ? किसके पेटसे वह पैदा होगा ? क्या इस बढ़ती हुई बदअमनीके आकाशमें

विश्वबंधुता और स्वतंत्रताके उज्ज्वल भाग्य-नक्षत्रका उदय होगा ?

शायद हमारा निराश होना उचित नहीं है, और हम श्रद्धा और साहस खो बैठे हैं। भविष्य ऐसा अंधकारपूर्ण नहीं है जैसा आजकी दुनिया हमें सोचनेको मजबूर कर रही है। मगर उस भविष्यकी जड़ें वर्तमानहीमें है और वह उसी जमीनपर पनपेगा भी, जिसपर आज हम खड़े हुए है। इसीसे आज हम हिम्मत छोड़े बैठे है। लड़ाई और उसके साथ आनेवाले आतंकसे भी हम उतने निराश नहीं होते जितने उन आदर्शोंकी कमजोरीसे कि जिन्होंने अबतक हमें ताकत दी है। वे आदर्श मौजूद जरूर है; लेकिन अंदेशे पैदा हो गये है और वे मनको डगमगा रहे हैं। क्या मानव जाति इन आदर्शोंको प्रत्यक्ष करनेके लिए तैयार है ? क्या यह निकट भविष्यमें ही उन्हे पा सकती है ?

करीब-करीब सभी जगह (हालांकि हिंदुस्तानमें उतना नहीं) प्रगतिशील शक्तियोंका कमजोर पड़ जाना आज सब बातोंसे अधिक महत्त्व या दुखकी बात है। धक्के-पर-धक्के लगनेसे वे चकनाचूर होकर गिर पड़े है और वे उस अस्त-व्यस्त और मायूस फौज की तरह हो गये है जो नहीं जानती कि अब किधर मुड़ना है ? आशाओं और आकांक्षाओंका उनका प्रतीक सोवियट रूस उस ऊंचे सिंहासनसे उतर आया है, जहां उसके उत्कट बहादुरोंने उसे बिठा दिया था और दिखावटी राजनैतिक लाभके लिए उसने अपनी नैतिक प्रतिष्ठा और मित्रताको बेच डाला है।

रूसके बारेमें उदासीन रहना किसीके लिए कभी आसान नहीं रहा; या तो उसकी खूब तारीफ की गई है और उसे बढ़ावा दिया गया है या फिर उससे निहायत नफरत की गई है। ये दोनों ही रवैये लाजमी तौरपर गलत थे, लेकिन फिर भी दोनों समझमें आ सकते थे। जो लोग स्थापित स्वार्थो और पुराने विशेषाधिकारोंको छातीसे लगाये हुए थे और देखते थे कि रूस उन दोनोंकी जड़ें उखाड़ फेंकेगा, उनमें उसके लिए घृणा होना स्वाभाविक था। और जो लोग पुरानी व्यवस्थामें होनेवाले संघर्षों और मुसीबतोंसे ऊब गये थे, उनके दिमाग में एक अधिक उपयुक्त और अधिक वैज्ञानिक आर्थिक प्रणालीपर खड़ी हुई एक नई व्यवस्थाके लिए उत्साह भर आया था। इस बड़े भारी कार्यसे वे जोशीले लोग इतने खुश हो गये कि उनके साथ जो बहुत-सी बुराइयां आईं, उनको दरगुजर

या माफ कर दिया। वह ठीक ही था। सबसे ज्यादा वकत तो रूसमें हुए बुनियादी हेरफेरकी थी, फिर भी यह उसके साथ कोई उपकार नहीं था कि जो भी चीज उसकी तरफ से होती, उसे बिना सोचे-समझे मंजूर कर लिया जाता। अगर कोई राष्ट्र या जनता आत्मतुष्ट हो जाती है और तमाम आलोचनाओंको अनसुना कर देती है तो वह कभी खुशहाल नहीं हो सकती।

रूसने जो योजनाएं बनाईं और कई दिशाओंमें जो अद्भुत उन्नति की, उससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। तब आई ढेरकी ढेर आपत्तियां, जिन्होंने उसकी आशाओंपर अंधेरा छा दिया। भले ही वे सब या अधिकांश आपत्तियां उचित भी ठहरतीं; लेकिन इतने बड़े पैमानेपर ऐसे षड्यंत्र और बिगाड़ ऐसे देशमें होने ही क्यों चाहिए कि जो एक महान् क्रांतिमेंसे निकल चुका हो? अंदरूनी हालत अच्छी नहीं थी। हिंसा होने लगी और आलोचनाओंको दबाया जाने लगा। लेकिन चोटीपर होनेवाले संघर्षोंका आम जनताके ऊपर कोई असर नहीं पड़ा और वह तरक्की करती रही। यह आर्थिक व्यवस्था अपने आपमें मुनासिब ही थी।

रूसकी अंदरूनी हालतोंके बारेमें चाहे कुछ भी शंकाएं रही हों; लेकिन बाहरी नीतिके बारेमें किसीको कोई शक न था। हर साल वह नीति शांतिपर, सामूहिक सुरक्षिततापर और आक्रमणका विरोध करनेवाले लोगोंको सहायता और बढ़ावा देनेपर टिकी रही। उस समय जबकि नात्सी और फासिस्ट ताकतें खुले आम लेकिन निर्लज्जतापूर्ण आक्रमण करती जा रही थीं और इंग्लैंड और फ्रांस अपनी विदेशी नीतिसे उनको मदद पहुंचा रहे थे, तब सोवियट रूस अंतर्राष्ट्रीय शांतिकी स्पष्ट और संगठित नीतिका प्रतीक बना हुआ था। चूंकि उसने पश्चिमी यूरोपियन ताकतोंकी धोखेभरी साजिशोंमें उनका साथ नहीं दिया, इसलिए उसकी अवहेलना की गई, उसका अपमान किया गया और उसे नीचा दिखाया गया।

एक बड़े राष्ट्रके लिए इस कड़वी गोलीको निगल जाना मुश्किल था। उससे नाराजगी हुई और बदला लेनेकी इच्छा भी। गोली तो दूर फेंक दी गई, लेकिन इस कार्रवाईमें रूस बहुत ज्यादती कर गया, क्योंकि दुनियाकी नजरमें जिस उद्देश्यके लिए उसका अस्तित्व था, उसीको खोकर उसने अत्यंत सस्ते अवसरवादकी नीति ग्रहण कर ली।

रूस-जर्मन संधिसे एक भारी धक्का लगा और जिस तरीकेसे और जितने

वक्तमें वह हुई, उससे इस अवसरवादको खास तौरसे गंध आती थी । लेकिन उसका कारण समझमें आ सकता था और थोड़ा-बहुत समझाया भी जा सकता था। बादको बाल्टिक प्रदेशोंमें जो नीति चली, वह तो हमें एक कदम और आगे ले गई । इसकी भी सफाई थी--कि सोवियट अपनी उत्तर-पश्चिमी सरहदको हमलेसे बचाना चाहता था और हर कोई जानता था कि वह एक खतरेवाला इलाका था भी । फिर भी हमारे शक बढ़ते ही गये ।

उसके बाद फिनलैंडपर हमला हुआ । फिनलैंडसे जो मांगे की गईं वे रूसकी आइंदाकी हिफाजतके खयालसे कुछ-कुछ मुनासिब थीं । पर यह भी याद रखना चाहिए कि हरएक बड़ा राष्ट्र हिफाजतका बहाना लेकर अपनी सरहद बढ़ाना चाहता है । लड़ाईके जमानेमें और ऐसे वक्तमें जबकि यूरोपमें झगड़ेकी सभावना होती जिससे रूसपर संयुक्त हमला किया जा सकता, तब तो सरहद और लेनिनग्रेडके बड़े और महत्त्वपूर्ण नगरको बचानेकी इच्छा समझमें आ सकती थी । लेकिन फिनलैंडपर जो फौजी हमला हुआ वह तो इन सीमाओंको भी पार कर गया, और रूस हमलावर राष्ट्रोंकी कतारमें आ खड़ा हुआ । इससे उसने उन परम्पराओंको धोखा दिया जिनका उसने खुद इतने बरस पालन किया था। इस भारी गलतीके लिए उसे बड़ी भारी कीमत ऐसे सिक्के में चुकानी पड़ी कि जिसका हिसाब नहीं लग सकता; क्योंकि असंख्य मानव प्राणियोंकी इच्छा और आदर्शोंकी भित्तिपर वह बना हुआ था । कोई भी आदमी या राष्ट्र इस अमूल्य वस्तुके साथ खिलवाड़ करेगा, तो उसे भारी नुकसान हुए बिना नहीं रह सकता । फिर उसका तो कहना ही क्या जिसे अपने बुनियादी सिद्धांतो और आदर्शोंपर गर्व रहा हो ?

शायद यह सच है कि सोवियट रूस कभी इस बातकी उम्मीद नहीं करता था कि फिनलैंडवाले इतने जोर-शोरसे उसका मुकाबला करेंगे । उसको भरोसा था कि वे लड़ाईका खतरा उठानेके बनिस्बत अपनेको उसके हवाले कर देंगे, जैसा कि बाल्टिक राज्योंने किया था । मुमकिन है कि सोवियट सरकार यह आशा करती हो कि फिनलैंडके कार्यकर्त्ता और किसान लाल सेनाके हमलेका स्वागत करेंगे । इन दोनों खयालोंमें वह गलतीपर थी । इस बातमें कोई संदेह नहीं है कि फिनलैंडकी मदद इटली, फ्रांस और इंग्लैंड कर रहे थे और अब भी कर रहे हैं और इस तरह वह सोवियट-विरोधी संगठनका केन्द्र बन गया था,

यह भी सच है कि जो खबरें हमें मिलती हैं वे बहुत ही बिगड़ी हुई और एकतरफा होती हैं। हम उनपर ज्यादा भरोसा नहीं कर सकते। लेकिन इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि फिनलैंडके लोग राष्ट्रीय दृष्टिसे एक होकर इस हमलेका मुकाबला कर रहे हैं और वहांके ट्रेड यूनियन और किसान लोग दोनों उसकी पीठपर हैं। एक छोटा-सा जनतंत्रीय राष्ट्र बहादुरीके साथ अपनी आजादीकी खातिर हमलेके मुकाबलेमें लड़ रहा है और यह लाजिमी है कि सबकी सहानुभूति उसकी ओर हो।

फिनलैंडमें होनेवाली यह लड़ाई हर जगहकी विरोधी शक्तियोंके लिए विधाताका एक विशेष वरदान बनकर आई है। इसकी आड़में वे अपने आक्रमणों और विश्वासघातोंको छुपाकर, जिन लोगोंपर दमन किया जा रहा है उनके हिमायती बनकर, इस आक्रमणके विरुद्ध उठ खड़े होनेका दिखावा करने लगे हैं। समाजवाद और सोवियट रूसके साम्यवादी राष्ट्रके प्रति उनको जो घृणा थी उसे काम करनेके अनुकूल वायुमंडल अब मिल गया है। जो राष्ट्र-संघ आस्ट्रिया और चेको-स्लोवाकियापर बलात्कार होनेके वक्त मजेसे चैनकी नींद सोता रहा था, जिसने म्यूनिकके समझौतेको बड़ा तत्त्वज्ञानी बनकर मंजूर कर लिया था, जिसने स्पेनके मामलेमें दस्तंदाजी न करनेकी बदनाम नीतिकी तरफसे आंखें मूंद ली थीं और पोलैंडपर जो नात्सी हमला हुआ उसके बारेमें जिसने एक शब्दतक नहीं कहा था, वह अकस्मात् जाग पड़ा है और सोवियट रूसपर चोट करनेका एक हथियार बन रहा है।

लेकिन हर जगह—यूरोप, अमरीका और एशियामें—प्रगतिशील विचारोंपर जो इसका असर पड़ा है, दुःखकी बात दरअसल वही है। जिनके हाथमें आज रूसकी सरकार है उन्होंने अपने उद्देश्यपर इतनी गहरी चोट की है कि जितनी एक या बहुतसे दुश्मन भी मिलकर नहीं कर सकते थे। सद्भावनाओंकी जो बड़ी पूंजी उनके पास थी, उसे उन्होंने खो दिया और उसके साथ हमलेको जोड़कर उन्होंने समाजवादतकके उद्देश्यको हानि पहुंचाई। उन दोनोंमें कोई जरूरी वास्ता नहीं है और उन्हें दूर-दूर ही रखना अच्छा है। लेकिन सोवियटके आक्रमणकी हिमायत और तरफदारी करना या चुपचाप रहकर उसे मंजूर कर लेना समाजवादके साथ बुरा करना है। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने सोवियट

सरकारकी हरेक प्रवृत्तिका समर्थन करना अपना धर्म बना लिया है और जो कोई ऐसी प्रवृत्तिकी आलोचना या निन्दा करता है, उसे वे विधर्मी और बागी करार देते हैं। यह अंध-विश्वास है, जिसका विवेकसे कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या इसी बुनियादपर हम यहांपर या किसी और जगह आजादीकी इमारत खड़ी कर सकेंगे ? दिमागकी सलामती और अपने मकसदकी सचाई छोड़ देने से खुद हमें और हमारे उद्देश्यको भी खतरा ही हो सकता है। दूसरी किसी जगह हमारे लिए किये गए फैसलोंसे हम बंधे हुए नहीं है। हम अपने निर्णय आप करते है और अपनी नीति खुद बनाते हैं।

रूसके खिलाफ जो बिगड़े और इकतरफा प्रचारकी बाढ़ इधर आ रही है, उससे हमें होशियार होना चाहिए। विदेशोंमें या हिदुस्तानमें रूसपर जो बेदर्दीके आक्रमण हो रहे हैं, उनसे हमें सतर्क रहना पड़ेगा। अगर हमे समाजवादमें श्रद्धा है तो उसको कायम रखना होगा और भरोसा रखना होगा कि समाजवादी व्यवस्था ही दुनियाकी बुराइयोंको दूर कर सकती है। हमें यहां याद रखना होगा कि बहुत-सी बुराइयोंके होते हुए भी सोवियट रूसने इस आर्थिक पद्धतिको कायम करके बहुत बडा काम किया है और अगर इस योजनाका, जो भविष्यके लिए बहुत आशाप्रद है, अंत हो जाये, या वह कमजोर हो जाये, तो वह बड़े दुःखकी बात होगी। हम उसमे हिस्सेदार न बनेंगे।

लेकिन हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि सोवियट सरकारने बहुतसे मामलोंमें बहुत ज्यादा गलती की है और हिंसाका, अवसरवादका और सत्तावादका बहुत आसरा लिया है। अपने साधनोंको उसने बुराइयोंसे बरी रखनेकी कोशिश नहीं की, और इसलिए इन साधनोंके साथ मेल बैठानेके लिए उनके उद्देश्योंको इधर-से-उधर किया जा रहा है। साधन तो उद्देश्य नहीं है। हां, वे उनपर काबू रखते हैं। लेकिन साधनोंका उद्देश्यके साथ मेल होना चाहिए, नहीं तो उद्देश्यका रूप बिगड़ जायेगा और उस ध्येयसे बिलकुल भिन्न हो जायेगा जो हमारे लक्ष्यमें था।

इसलिए हिंदुस्तानकी ओरसे हम अपनी दोस्ताना हमदर्दी रूसके समाजवादके प्रति दिखाते हैं। अगर उसे तोड़नेकी किसी भी प्रकारकी कोशिश की जायेगी तो उसको हम बहुत नापसन्द करेंगे। लेकिन रूसकी सरकारकी राजनैतिक चालों और आक्रमणोंसे हमारी सहानुभूति नहीं है। फिनलैंडके खिलाफ

जो लड़ाई हो रही है, उसमें हमारी सहानुभूति फिनलेंडके लोगोंके साथ है कि जिन्होंने अपनी आजादीको कायम रखनेके लिए इतनी बहादुरीसे लड़ाई लड़ी है। अगर रूस इसमें हठ किये जाता है तो इसका परिणाम उसके और दुनियाके लिए घातक होगा।

और यह भी हमें याद रखना होगा कि संक्रमण और परिवर्तनके इस क्रांति-कारी युगमें जबकि हमारे पुराने आदर्श गड़बड़ हो गये हैं, और हम नये मार्गकी खोजमें हैं, तो हमें अपने मनको स्वस्थ और ध्येयको दृढ़ बनाये रखना चाहिए और उन साधनों और तरीकोंपर भी अटल रहना चाहिए कि जो उचित हों और हमारे आदर्शों और ध्येयोंके अनुरूप हों। इन ध्येयोंकी प्राप्ति हिंसा या सत्तावाद या अवसरवादसे नहीं होगी। हमें अहिंसाका पालन करना होगा। उचित कर्त्तव्यमें डटना होगा और इस प्रकार उस आजाद हिंदुस्तानका निर्माण करना होगा कि जिसके लिए हम पसीना बहा रहे हैं।

१६ जनवरी, १९४०

: १७ :

लड़खड़ाती दुनिया

पिछले कुछ हफ्तोंमें हिंदुस्तानको अचानक अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और भारत-पर होनेवाली उसकी प्रतिक्रियाके बारेमें गंभीर होकर सोचना पड़ा है। हममेंसे कुछ लोग कई बरसोंसे अन्तर्राष्ट्रीय कार्योंमें टांग अड़ाते रहे हैं और कभी-कभी देशके बहुतेरे लोगोंमें अबीसीनिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीनके बारेमें थोड़ी देरको दिलचस्पी पैदा होती रही है। मगर बुनियादी तौरपर तो हम एक राष्ट्रके नाते अपने ही राष्ट्रीय मसलोंमें बहुत ज्यादा मशगूल रहे। यूरोपमें लड़ाई छिड़ जानेसे लाजमी तौरपर विदेशकी घटनाओंमें और भी ज्यादा दिलचस्पी पैदा होनी चाहिए थी। पर यह सब होते भी आखिर वह लड़ाई तो दूरदराजकी ही थी और हमारी उत्सुकता एक दर्शक-की-सी थी। १० मई हिंदुस्तानके इतिहासमें मशहूर है। इस दिन पश्चिमी यूरोपके निचले देशों,

हालैंड और बेलजियमपर हमला हुआ। बादमें जो घटनाएं एकके बाद एक तेजीसे घटित हुईं, उन्होंने हमारे दिमागोंमें थोड़ी देरकी सरगर्मी पैदा कर दी है और लड़ाईसे हो सकनेवाले नतीजोंको हमारे पास ला दिया है। नई समस्याएं अचानक हमारे सामने आ गई हैं, और हमें एकदम नई परिस्थितियों का सामना करना है।

ऐसी विकट परिस्थितियोंमें कांग्रेस कार्य-समितिकी पिछली दो बैठकें हुईं और समितिने उनसे अपना मेल बैठानेकी कोशिश की। जनताने कार्य-समितिके प्रस्ताव देखे हैं और उनके बारेमें दलीलें भी हुई हैं। अगर हम उस अजीब और बदलनेवाली दुनियाको, जिसमें हम रहते हैं, समझना चाहते हैं तो यूरोपमें जो-कुछ हुआ, उसपर और आगे उसके क्या-क्या नतीजे निकलेंगे इसपर निष्पक्ष होकर विचार कर लेना अच्छा होगा। मनमें कोई इच्छा रखकर उसके मुताबिक सोचना-विचारना कभी कामका नहीं होता, लेकिन आज तो वह खतरनाक है। आज भले ही और सारी चीजें इतनी बदल गई हों कि पहचानी भी न जा सकें, लेकिन हम सबोंकी पुरानी लीकपर चलते जानेकी, पुराने नारे बुलंद करते रहनेकी और पुरानी बातोंको ही सोचते रहनेकी बहुत ज्यादा आदत पड़ गई है। बुनियादी सिद्धांतों और उद्देश्योंमें एक खास स्थायित्व और सिलसिला होना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ असलियत चाहती है कि हम अपने आपको उनके साथ निभा लें।

क्या-क्या हो चुका है? यूरोपका नक्शा बिलकुल पलट गया है और बहुत-से राष्ट्र अब नहीं रहे हैं। पोलैंड गया, डेनमार्क और नार्वे ने सर झुका दिया, हालैंड-की हार हुई, बेलजियमने घुटने टेक दिये और फ्रांसका पतन हुआ––एकदम और पूरी तौरसे। ये सब जर्मन-साम्राज्यके पेटमें समा गये। बाल्टिक देशों और बसरेबियाको करीब-करीब सोवियट रूसने हड़प लिया।

ये उलट-फेर बहुत बड़े-बड़े हैं मगर फिर भी दिन-पर-दिन यह अधिक-से-अधिक दिखाई देता जा रहा है कि यह तो जोकुछ होनेवाला है, उसकी भूमिका भर है। हम महज एक बड़ी दूर-दूर फैली लड़ाई और उससे होनेवाली भयंकर बरबादियोंको ही नहीं देख रहे हैं, बल्कि आज हम एक बड़े महत्त्वपूर्ण क्रांति-युगमें रह रहे हैं––जो आजतकके इतिहासके प्रश्नोंमें आये हुए युगसे भी अधिक व्यापक और विस्तीर्ण हैं। इस युद्धका परिणाम कुछ भी हो, यह इन्क़िलाब तो अपना

काम पूरा करके ही रहेगा। जबतक यह होता रहेगा, तबतक हमारी इस धरती-पर शांति और संतुलन कायम नहीं हो सकता।

हमें यह समझ ही लेना चाहिए कि पुरानी दुनिया बीत चुकी है—चाहे वह हमें पसन्द हो या नहीं। जो लोग उसके सबसे ज्यादा प्रतीक रहे हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं रहा। वे तो उस गये-गुजरे कलके भूतमात्र बनकर रह गये हैं।

अगर अन्तमें नात्सी लोग जीते, जैसा कि संभव दीखता है, तो वे यूरोप और दुनियाकी क्या हालत कर डालेंगे इसमें कोई शक नहीं रह गया है। वे जर्मनीके नेतृत्व और कब्जेमें एक नये ढंगका यूरोपीय संघ बना डालेंगे—यूरोप-को एक नात्सी साम्राज्य बना डालेंगे। छोटे-छोटे राष्ट्र नहीं रहेंगे और न रहेगा प्रजातंत्र—जैसा कि हमने उसे समझा है—और न पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी जैसी कि अबतक चली आ रही है। एक प्रकारका राष्ट्रीय पूंजीवाद यूरोपमें फूले-फलेगा और बड़े-बड़े उद्योग जर्मनीके प्रदेशमें केंद्रित हो जायेंगे और दूसरे बड़े-बड़े देश—जिनमें फ्रांस भी शामिल होगा—करीब-करीब खेतिहर देश रह जायेंगे। इस प्रकारकी प्रणाली एक सामूहिक महाराष्ट्रीय अर्थनीतिपर खड़ी की जायेगी और उसपर सत्ताधारियोंका कब्जा होगा। नात्सी साम्राज्यके उपनिवेश, खास-कर अफ्रीकामें, हो जायेंगे, मगर वह दूसरे गैर-यूरोपियन देशोंकी अर्थनीतिको भी कब्जेमें करने और उनके निवासियोंकी श्रम-शक्तिका उपयोग करनेकी कोशिश में रहेगा। इस तरहके शक्ति-शाली सत्ताधारी संघका आर्थिक भार भयंकर हो जायेगा और रही-सही दुनियाको अपने-आप उसके साथ निबाह करना और चलना पड़ेगा।

तो ऐसी है नात्सियोंकी योजना। अगर यह पूरी हुई तो इंग्लैंडका क्या होगा ? अगर जर्मनीकी पूरी-पूरी विजय हुई तो इंग्लैंड ऐसा राष्ट्र नहीं रह जायेगा कि जिसकी कोई पूछ हो। यूरोपमें उसका कोई असर नहीं रह जायेगा; साम्राज्य उसका छिन जायेगा। फिर चाहे वह जर्मनीकृत यूरोपीय संघमें शामिल हो चाहे न हो, इसका कोई मूल्य न होगा। अंग्रेजी राज्यका केन्द्र हटकर दूसरी जगह, बहुत मुमकिन है कनाडामें, चला जायेगा और वे लोग अम-रीकाके संयुक्त-राष्ट्रसे निकट सम्पर्क स्थापित कर लेंगे या उसीमें मिल भी जायेंगे।

यह बहुत-कुछ सोवियट रूसपर निर्भर रहेगा। इसमें शक नहीं कि रूसको

नात्सियोंकी ताक़तका इतनी तेजीसे बढ़ना कतई नापसन्द है, क्योंकि वह आगे जाकर उसके लिए खतरनाक हो सकता है। फिर भी चाहे जो हो वह इस परिवर्तनके मुआफिक हो जायेगा, बशर्ते कि लड़ाई बहुत अर्सेतक न चलती रही और लड़नेवाले थक न गये।

जर्मनीकी तेजीसे जीत होती गई तो इस तरह नात्सी साम्राज्य यूरोपमें कायम हो जायेगा, जिससे उसके कब्जेमें बड़े-बड़े प्रदेश आ जायेंगे। पूरबमें उसका संबंध जापानसे हो सकता है। दो और संघ कायम रहेंगे—सोवियट रूस और संयुक्त-राज्य अमरीका—जो दोनोंके दोनों खासकर जर्मनीके दुश्मन हैं। भले ही लड़ाई खत्म हो चुके मगर इन शक्तिशाली साम्राज्योंमें भी भविष्यमें होनेवाली लड़ाईके बीज बने रहेंगे।

और अगले ही कुछ महीनोंमें अगर नात्सियोंकी जीत न हुई तो क्या होगा? शायद एक अर्सेतक लड़ाई चलेगी, जिसमें दोनों पक्ष बुरी तरह थक जायेंगे और दोनोंको भारी नुकसान बैठेगा। इंग्लैंड और यूरोपका आर्थिक ढांचा बिखर जायेगा और उसका एक ही मुमकिन नतीजा यह होगा कि एक मुख्तलिफ आर्थिक प्रणालीकी बुनियादपर राष्ट्रोंका संघ या विश्व-संघ कायम होगा—और उत्पत्ति, निर्यात और वितरणपर संसारका कड़ा नियंत्रण रहेगा। आजकी पूंजीवादी प्रणाली मिट जायेगी। ब्रिटिश साम्राज्यका खात्मा हो जायेगा। छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतंत्र इकाई बनकर नही रह सकेंगे। हो सकता है कि धनका अर्थ भी बदल जाये।

इसलिए हर हालतमें इस युद्धसे मूलभूत राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन होगा जो कि मौजूदा हालतके ज्यादा मुआफिक होगा, जिनमें राष्ट्रों के बीच निकटतर संबंध स्थापित हो जायेगा और अन्तर्राष्ट्रीय रुकावटें मिट जायेंगी। जर्मनीकी ताकत आज उसकी अदम्य शक्ति और बड़ी फौजों में नहीं है जितनी इस बातमें है कि शायद आप-ही-आप वह ऐतिहासिक घटनाओं का निर्माता हो गया है। वह इतिहासको बुरी दिशामें ले जानेकी कोशिश में है; थोड़ी देरको वह उसमें सफल भी हो सकता है। फ्रांस और इंग्लैंडकी कमजोरीका खास कारण यही हुआ कि वे ऐसी प्रणालियों और ढांचोंसे चिपटे रहे, जो बर्बाद होनेवाले थे। उनके साम्राज्यमें या उनकी आर्थिक प्रणालीमें कोई चीज ऐसी थी जो

नष्ट होती थी। उनको पिछले बीस बरसोंमें बार-बार मौका मिला था कि वे अपनेआपको इतिहासकी परिस्थितियोंके अनुकूल बना लें और सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय स्वतंत्रतापर टिकी हुई एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करनेमें नेतृत्व करें। वे पिछले जमानेमें मिले अपने लाभोंको न छोड़ पाये और स्थापित स्वार्थों और साम्राज्यसे चिपटे रहे और आज जब वे सबसे हाथ धो बैठे हैं, तो अब क्या हो सकता है ?

कुछ समयके लिए तो फ्रांस मिट ही गया, लेकिन इंग्लैंडने अब भी सबक नहीं लिया वह अब भी साम्राज्यकी बात कर रहा है और अपने खास हितों व स्वार्थोंको बनाये रखना चाह रहा है। आज यह देखकर अफसोस है कि एक महान् जाति इतनी अंधी हो गई है कि उसे और कुछ नहीं सूझ रहा है। सूझता है तो सिर्फ यही कि एक वर्गके संकुचित हित कायम रहें। वह सारा खतरा उठानेको तैयार है; लेकिन ऐसा कार्य करनेको तैयार नहीं जिससे वह दुनियाके साथ हो जाये और बड़े-बड़े कदमसे चलनेवाली महान् ऐतिहासिक प्रक्रियाओंके अनुकूल बन सके।

१६ जुलाई, १९४०

: १८ :

हमारा क्या होगा ?

जर्मनीकी हार होगी कि जीत ? इससे यूरोप और दुनियाके भविष्यमें बेशक बड़ा फर्क पड़ेगा। फिर भी दोनोंमेंसे कोई एक बात होनेसे ही ऐसी खास तब्दीलियां होंगी जिनका असर काफी गहरा होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र मिट जायेंगे और उनकी जगह या तो विश्व-संघ कायम हो जायेगा, या तीन या चार संघ-राज्य कायम हो जायेंगे। अगर दूसरी बात हुई तो भीतरी और बाहरी दोनों तरहके लड़ाई-झगड़े चलते रहेंगे। अंदरूनी झगड़े इस कारण रहेंगे कि साम्राज्यमें उन दूसरे राष्ट्र या देशवासियोंपर जबरन शासन होता ही है, जो अपने आपको आजाद करनेकी कोशिश करते हैं। बाहरी झगड़े इस कारण रहेंगे कि दूसरे संघ-राज्यों या साम्राज्योंसे उनका मुकाबला रहेगा। हरेक शायद कोशिश

करे कि उसके प्रदेशोंमें स्वावलंबी अर्थनीति (autarchy) कायम हो, परन्तु इससे संतुलन या स्थायित्व पैदा नहीं हो सकता और शांतिसे या फिर लड़ाईसे एक अकेला विश्व-संघ स्थापित होकर रहेगा। अनिवार्य रूपसे ऐसा होकर रहेगा; क्योंकि इसको छोड़कर दूसरा रास्ता तो आपसमें बड़ी-बड़ी बरबादियां करते रहने और जंगली हालतमें चले जानेका है। आजाद राष्ट्रोंके सच्चे संगठनसे ही ऐसा विश्व-संघ बन सकेगा। जबरन थोपी हुई व्यवस्थाके मानी तो यह होंगे कि जिसे संघ कहा जाता है वह तो एक ऐसा संघ-राज्य होगा, जिसके अन्दर उसीकी बरबादीके बीज मौजूद होंगे।

युद्धका नतीजा कुछ भी हो, यह साफ दिखाई देता है कि अंग्रेजी साम्राज्यका खात्मा हो जायेगा। इसके लिए काफी कारण हैं कि ऐसा क्यों होना चाहिए, मगर युद्ध-चक्रने यह बात स्पष्ट कर दी है। भले ही कई संघ-साम्राज्य बन जायें, लेकिन आज ब्रिटिश साम्राज्य की जैसी बनावट है, उस शक्ल में तो वह नहीं रहेगा। हो सकता है कि इंग्लैंड-अमरीकाका सम्मिलित संघ बन जाये और दूसरे देश भी उसमें शरीक हो जायें या एक संघ-साम्राज्य कायम हो जाये। ऐसे संघ या साम्राज्यमें इंग्लैंडका दर्जा निचला रहेगा। आज इंग्लैंड के पास जो दूर-दूर फैला हुआ साम्राज्य है उस किस्मका साम्राज्य आइन्दा न रहेगा, भले ही सम्भाव्य विश्वव्यापी संघ-साम्राज्यमें उसकी कोई जगह रहे तो रहे। ऐसी दूर-दूर बिखरी हुई सल्तनतके लिए यह भी लाजिमी है कि समुद्रों और दुनियाके व्यापारिक रास्तोंपर कब्जा हो; साथ ही हवाई ताकत भी काफी बढ़ी-चढ़ी हो। सारी दुनियापर हावी हो सके ऐसी ताकत आज न कोई देश हासिल कर सकता है, न राज्योंका कोई गुट। अगर साम्राज्य कायम रहे, तो वे खास तौरपर संधिबद्ध साम्राज्य होंगे और मुमकिन है, उनके कुछ दूर बसे हुए उपनिवेश भी रहें जिनसे कोई खास फर्क न पड़नेवाला हो।

लड़ाई शुरू होनेके करीब एक बरस पहले कई राष्ट्रोंका एक संघ स्थापित होनेकी संभावनापर बहस हुई थी। क्लेरेंस स्ट्रेटके 'अब संघ निर्माण हो' नामक लेखने बहुत ध्यान खींचा था। दूसरे कई प्रस्ताव भी थे। करीब-करीब सबमें एक खास बड़ी खामी यह थी कि वे दुनियाको ऐसी निगाहसे देखते थे, मानो उसमें सिर्फ यूरोप और अमरीका ही हों। चीन, हिंदुस्तान और पूरबके दूसरे मुल्कोंकी

बिलकुल उपेक्षा की गई थी। इन प्रस्तावोंपर हालांकि बहुत बहस हुई और उनका स्वागत भी हुआ, मगर लड़ाईके पहलेकी दुनियामें उनपर अमल न हो सका। उनका विरोध करनेकी किसी भी बड़े देशकी जरा भी मर्जी न थी। तो जबकि इससे बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता था, वह समय अब गुजर गया। और आज कुछ देश और सरकारें इस खोये हुए मौकेपर बुरी तरह पछता रहे हैं। जबकि फ्रांसका प्रजातंत्र तड़फड़ा रहा था, इंग्लैंडकी सरकारने तात्कालिक खतरेसे मजबूर होकर फ्रांससे मिलकर संघ बनानेका अजीब प्रस्ताव पेश किया। तब इसके लिए वक्त कहां रहा था? और इग्लैंडके मामलेमें भी वक्त नहीं रहा है। लेकिन इससे बिजलीकी तरह पता चल गया कि स्वतंत्र राष्ट्रोंके पुराने विचार और ब्रिटिश साम्राज्यके विचार भी अब कामके नहीं रहे।

और फिर भी कुछ लोग अब भी 'औपनिवेशिक स्वराज'की या उन जैसी बात करते है। यह नहीं समझते कि यह खयाल अब मुर्दा हो गया है; उसे फिर जिंदगी नहीं दी जा सकती। और कुछ लोग कहते हैं कि हिंदुस्तानका बंटवारा कर दो और उनकी बुनियाद बड़ी अजीब और बेहूदा है। वे भूल जाते हैं कि दुनिया के अब और ज्यादा टुकड़े करनेकी जरूरत नहीं। जरूरत है एकीकरणकी, राष्ट्रोंका संघ बनानेकी। दुनिया अब छोटे-छोटे राज्योंको ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकती।

तब, हमारी आजादीका क्या होगा? क्या उससे आजके राष्ट्रोंका संगठन नष्ट न होगा? और विश्व-संघमें उसका कैसे निबाह होगा? यह तो बिलकुल सही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यका खात्मा इस कारण चाहते हैं कि साम्राज्यवादसे किसी सच्चे संघकी पैदायश होना नामुमकिन है। और किसी भी हालतमें हिंदुस्तान इस साम्राज्यमें रहनेवाला नहीं है। लेकिन जिस आजादीको हम हासिल करना चाहते है, वह दूसरे राष्ट्रोंके झुंडसे अलग या उसके अलावा एक राष्ट्रके रूपमें नहीं समझी जा रही है। हमने तो हमेशा यही समझा है और उसीको पाना हमारा मकसद है कि दुनियाका घनिष्ठ संगठन बन जाये और संघ या सम्मेलनके जरिये काम चले और उससे मिलकर हमें खुशी होगी। लेकिन हमसे यह कहा जाना कि हम औपनिवेशिक दर्जा मंजूर कर लें और हमारी मर्जीके खिलाफ किसी खास तरहका संघ हमपर लादना तो आजकी दुविधाकी हालतमें बड़ी बेहूदा बात है और किसी भी हालतमें हम उसे बर्दाश्त करनेवाले नहीं हैं—

चाहे उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हो ।

लड़ाईका तीसरा लाजिमी नतीजा यह भी हो सकता है कि मौजूदा पूंजीवाद खत्म हो जाये और विश्वव्यापी आर्थिक प्रणालीमें सुंदर व्यवस्था और नियंत्रण लाया जाये । इसके साथ-ही-साथ पूंजीवादी प्रजातंत्र भी बदल जायेगा, क्योंकि यह संपन्न और समृद्ध राष्ट्रोंकी शान-शौकतकी प्रणाली है । आइंदा आनेवाले बुरे दिनोंमें वह नहीं चल सकती । इस तरहका प्रजातंत्र तो अभीसे ही लड़ाईके वजनसे चूर-चूर हो गया है ।

यह बड़े दुर्भाग्यकी बात होगी कि प्रजातंत्र खुद ही मिट जाये और डिक्टेटर-शाहीकी कोई शक्ल उसकी जगह आ जाये । यह खतरा है और हमें इससे अपनी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिए । लेकिन आज पश्चिममें जिस किस्मका प्रजातंत्र नष्ट होते हुए हमने देखा है उससे कहीं अधिक योग्य और कुछ अंशोंमें भिन्न प्रकार-का प्रजातंत्र ही आज जीवित रह सकता है ।

आज जो घटनाचक्र घूम रहा है उसमें हम कहां हैं, हिंदुस्तान कहां है ? यह काफी स्पष्ट हो चुका है । हम नात्सीवादके बिलकुल खिलाफ हैं और हमारे खयालसे सारी दुनियापर नात्सी जर्मनीका हावी हो जाना एक दुःखदायी घटना होगी । लेकिन हम तो इस बातसे उकता गये और घबरा गये हैं कि हमपर ब्रिटिश साम्राज्यवाद थोपा जाये, भले ही वह अब आखिरी घड़ियां गिन रहा हो— और हम इस या किसी दूसरे साम्राज्यवादके साधन बननेके पहले बर्बाद हो जाना मंजूर कर लेंगे ।

यह बड़े अचंभेकी बात है कि अब भी हिंदुस्तानकी आजादी ब्रिटिश सरकारके गलेमें अटकी हुई है और अचरज है कि वे अब भी पुराना शाही तरीका काममें लाते हैं और हमसे उम्मीद करते हैं कि हम उनके हुक्मोंको मानें । अब भी वे हमको तकलीफ और नुकसान पहुंचाकर धमकियां देते हैं । अब भी वे हमें अपनी नसीहतें सुनाते हैं । जो कुछ हो रहा है उसे वे अब भी नहीं देखते । क्या उनका खयाल है कि वे जो नीति हिंदुस्तानमें अख्तियार कर रहे हैं उससे वे इस लड़ाईके लिए ताकत हासिल कर लेंगे ? क्या उनका खयाल है कि धमकियां देने और मज-बूर करनेसे हिंदुस्तानका दिल वे जीत लेंगे और उसकी मदद पा लेंगे ? इस तरीकेसे थोड़ा पैसा उन्हें मिल सकता है, लेकिन इससे सोने-चांदीसे भी जिसकी वकत कहीं

ज्यादा है ऐसी रकम वे अपने नाम लिखा रहे हैं। हिंदुस्तानमें आज जो कुछ हो रहा है उसपर और नीचेके लोगोंके असह्य कारनामोंपर बड़ी नाराजगी है।

हम लोगोंके लिए जो कि महीनोंसे धीरजके साथ इंतजार कर रहे हैं और जान-बूझकर कोशिश नहीं कर रहे हैं कि अंग्रेजोंको उनके इस मुसीबतके वक्त हैरान करें यह ब्रिटिश साम्राज्यवादका काम करते रहना एक दैवी प्रकाश है। हममेंसे बहुत-सोंकी हमदर्दी अंग्रेज लोगोंसे है। मगर यह देखे बिना हम नहीं रह सकते कि अंग्रेजोंका लड़ाईका एक मोर्चा हिंदुस्तानमें है और वह हमारे खिलाफ है। अगर ऐसा है तो चाहे अंजाम कुछ भी हो, हम उसका मुकाबला करेंगे। एक बात तो तै शुदा है ही। किसीको यह अधिकार नहीं है कि हमपर हुकूमत चलाये।

१७ जुलाई, १९४०

: १९ :

एशियाई संघ

जो कोई व्यक्ति घटनाओंके क्रमको देखता रहा है और भविष्यके परदेके भीतर झांक सकता है, वह इस नतीजेपर पहुंचेगा कि हम एक युगके सिरेपर आ चुके हैं। वह युग जिससे हमारी अबतक जान-पहचान थी, मर चुका है या हमारे सामने मरनेके लिए तड़प रहा है। लेकिन वास्तवमें इसके मानी यह नहीं हैं कि दुनिया अब न रहेगी। इसका यह भी मतलब नहीं है कि सभ्यता बरबाद हो जायेगी। लेकिन इसका इतना मतलब जरूर है कि उन बहुतेरी चीजोंकी— जिन्हें हम जानते हैं— जैसे राजनैतिक स्वरूपों, आर्थिक ढांचों, सामाजिक संबंधों और इनसे संबंधित हमारी तमाम बातों में एक बड़ी भारी कायापलट होनेवाली है। अगर कोई सोचता हो कि दुनिया इसी रूपमें चलती रहेगी, जिसमें कि हम उसे देखते आ रहे है, तो उसका ऐसा सोचना फिजूल है।

यह मानी हुई बात है कि छोटे-छोटे देशोंके दिन लद गये। यह भी पक्की बात है कि अपने-आप अकेले खड़े रहनेवाले बड़े देशोंतकका जमाना भी गुजर गया। सोवियट-संघ (रूस) या संयुक्तराष्ट्र अमरीका जैसे बड़े-बड़े देश भले ही

अकेले रह सकें, मगर संभव है उन्हें भी दूसरे देशोंके समूहोंके साथ शामिल होना पड़ जाये ।

इसका एक ही बुद्धिसम्मत हल है और वह है स्वतंत्र देशोंका एक विश्व-संगठन । शायद हममें इतनी समझ नही है कि उस हलको ढूंढ निकालें या इतनी ताकत नहीं कि उसे प्रत्यक्ष कर सकें ।

अगर निकट भविष्यमें कोई विश्व-संघ न बननेवाला हो और अगर इकले राष्ट्रोंका जमाना न रहा हो, तो ऐसी हालतमें क्या होनेकी संभावना है ? हो सकता है कि राष्ट्रोंके समूह या बड़े संघ बन जायें । इसमें बड़ा भारी खतरा है, क्योंकि इससे एक-दूसरेके विरोधी गुट्ट बननेकी और इसलिए बड़े पैमानेपर लड़ाइयां चलते रहनेकी संभावना है ।

यह भी मुमकिन है कि इन समूहोंके बननेसे एक बड़े विश्वव्यापी राष्ट्र-समूह की नींव तैयार हो ।

यूरोपमें लोग यूरोपीय संघ या संगठनकी बात करते हैं; कभी-कभी वे उसमें संयुक्तराष्ट्र अमरीका और ब्रिटिश उपनिवेशोंको भी मिला लेते हैं । पर वे हमेशा चीन और भारतको छोड़ देते हैं । वे समझते हैं कि इन दोनों महादेशोंकी अवहेलना की जा सकती है । हिंदुस्तान या चीनकी अवहेलना के आधारपर कोई विश्वव्यापी व्यवस्था नहीं हो सकती और न हम यूरोपीय और अमरीकी शक्तियों-द्वारा एशिया और अफ्रीकाका यह शोषण ही कभी बर्दाश्त कर सकते हैं ।

अगर कोई फेडरेशन बननेको हो तो हिंदुस्तानका निबाह किसी यूरोपीय संघके साथ नहीं हो सकता, क्योंकि वहां वह अर्द्ध-औपनिवेशिक दर्जेके भरोसे पड़ा रहेगा । इसलिए यह साफ है कि इन परिस्थितियोंमें एक पूर्वीय (एशियाई) संघ होना चाहिए जो पश्चिमका विरोधी न हो, बल्कि अपने ही पैरोंपर खड़ा हो, आत्मनिर्भर हो और उन सबसे संबंधित हो जो विश्वशांति और विश्व-संघके लिए प्रयत्नशील हों ।

ऐसे एशियाई संघमें अनिवार्यतः चीन, भारत, बर्मा और लंका होंगे और नेपाल और अफगानिस्तानको भी उसमें मिलाना चाहिए । इसी प्रकार मलायाको भी । और कोई वजह नहीं कि स्याम और ईरान भी क्यों न शामिल हों और कुछ दूसरे राष्ट्र भी । वह स्वतंत्र राष्ट्रोंका एक ऐसा शक्तिशाली समूह होगा

जिससे न केवल उनका अपना ही बल्कि संसार भरका हित होगा। यह केवल एक भौतिक शक्ति ही नहीं होगी; बल्कि कुछ और भी होगी जिसके कि वे इतने युगोंसे प्रतीक रहे हैं; इसलिए यह मौका है कि हम एशियाई संघकी बात सोचें और इसके लिए विचारपूर्वक प्रयत्न करें।

इस एशियाई संघका औरोंसे भी बढ़कर दो राष्ट्रोंसे बहुत घनिष्ठ संबंध होगा। वे राष्ट्र हैं सोवियट रूस और अमरीका।

पश्चिमी सभ्यताके पतनकी बहुत चर्चा है। जहांतक पश्चिमके आर्थिक साम्राज्यवाद और पूंजीवादी व्यवस्थाका प्रश्न है, यह शायद ठीक भी है। लेकिन अंतमें जाकर यूरोपीय सभ्यतामें जो सबसे अच्छा है उसे तो रहना ही चाहिए। यह सब होते हुए भी मेरे खयालसे यह सच है कि आजकी सभ्यता खत्म हो रही है और उसकी राखमेंसे एक नई सभ्यताका निर्माण होगा। मुझे आशा है कि पूर्व और पश्चिमकी अच्छीसे अच्छी बातें नहीं मिटेंगी। पश्चिमने जिस विज्ञानका नेतृत्व किया है उसके बिना किसी राष्ट्रका काम नहीं चल सकता। वह विज्ञान, और वह वैज्ञानिक स्पिरिट और तौर-तरीके आज जीवनके आधार बन गये हैं। विज्ञानमें जहां एक ओर सत्यकी खोज है, वहां दूसरी ओर मानव-जातिकी उन्नतिकी चाह है। लेकिन उस विज्ञानका उपयोग जिस बुरे उद्देश्यके लिए किया गया है उसने पश्चिमको बरबादीमें डाला है। यहीं भारत और चीन अपने नियंत्रणकारी प्रभाव और संस्कृति और संयमके लंबे इतिहास लेकर सामने आते हैं।

इसलिए हम भविष्यकी ओर देखें और पूर्वीय (एशियाई) संघके लिए प्रयत्न करें और यह न भूलें कि विशाल विश्वसंघकी दिशामें यही एक कदम है।

: २० :

चीन और भारत

भारत और चीन युग-युगांतरसे दो पृथक् और पुरातन सभ्यताओं और संस्कृतियोंके प्रतीक रहे हैं। वे दोनों एक दूसरेसे बहुत भिन्न होते हुए भी अनेक बातोंमें समान हैं। सब पुराने देशोंकी तरह, उन्होंने अपने चारों ओर अपनी

पुरानी रूढ़ियों और परंपराओंके रूपमें तरह-तरहके खंडहर जमा कर रखे हैं। इनसे उनकी प्रगतिमें अड़चन पड़ती है; लेकिन इस बेकार मलबेके ढेरके नीचे खरा सोना भी दबा पड़ा है जो उन्हें इन सब युगोंमें नष्ट होनेसे बचाता रहा है। भारत और चीन दोनोंको जिस अवनति और दुर्भाग्यने आ घेरा है, उनसे भी भीतरका वह सोना पिघल नहीं पाया है—जिससे कि वे भूतकालमें महान् बने थे और जिससे आज भी उनकी एक विशेष स्थिति है। कवि इकबालके शब्दोंमें भारतकी भांति चीनके विषयमें भी यह कहा जा सकता है:

यूनान मिस्रो रोमां सब मिट गये जहां से
अबतक मगर है बाक़ी नामोनिशां हमारा;
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।

बरसोंसे और विशेषकर पिछले तीन या कुछ ज्यादा बरससे चीन अग्नि-परीक्षामेंसे निकल रहा है। चीनकी जनताके उस बेहिसाब संकटका अंदाजा हम कैसे लगायें, जिसपर एक साम्राज्यवादी राष्ट्रने चढ़ाई और हमला किया है; जिसके नगरोंमें हर रात बम बरसाये जाते हैं और जिसे एक प्रथम श्रेणीके शक्तिशाली राष्ट्रकी लाई हुई आधुनिक भयंकरताका सामना करना पड़ा है। पिछले दो-तीन महीनोंमें लंदनको बमबारीसे बहुत भारी नुकसान हुआ है, लेकिन उस चुंगकिंगका खयाल कीजिए जो बरसोंसे बमबारी सहकर भी अबतक जी रहा है। हम उस मुसीबतका अंदाज नहीं लगा सकते, और न हम उस दृढ़ संकल्प और चिर-स्मरणीय साहसको नांप सकते हैं जिससे उन्होंने इन विपत्तियों और संकटोंका बिना विचलित हुए और बिना झुके मुकाबला किया है। इतिहासके उषाकालसे आजतक चीनवासियोंके गौरवशाली इतिहासमें कई गौरवशाली युग आये और अच्छे-अच्छे काम हुए हैं। लेकिन निश्चय ही पिछले तीस साल तो इस महान् इतिहासमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण होंगे।

इन वर्षों में भूतकाल बड़े वेगसे वर्त्तमानमें बदला है और आनेवाले युगकी तैयारी हो रही है। राष्ट्रके संकटकी आगमें तलछट और खंडहर जल रहे हैं और शुद्ध धातु निकल रही है। भारतमें भी हमने इन संकटों और परीक्षणोंमें अपना भाग लिया है और निकट भविष्यमें और भी लेनेकी बहुत कुछ संभावना

है। जो राष्ट्र सो रहे थे, या गुलामी में पड़े हुए थे उनका अब पुर्ननिर्माण हो रहा है; चीन और भारतमें नवयौवन आ रहा है।

भविष्यमें दोनोंको बहुत बड़ा कार्य करना है। इसलिए दोनोंको साथ रहना चाहिए और एक दूसरेसे सीखना चाहिए।

नवंबर, १९४०

चीन और स्पेन

: १ :

नया चीन

खबरोंकी एजेंसियां हमें यूरोपकी खबर देती हैं और बताती हैं कि हिटलर क्या कहता है या नेविल चेंबरलेन किस बात से इन्कार करते हैं, मगर चीनके बारेमें हमें कोई खबर ही नहीं मिलती। हां, कभी-कभी इतना जरूर सुन लेते हैं कि हवाई हमला हुआ और उसमें सैकड़ों-हजारों लोग मारे गये। यह भी हमारी बहुत-सी बदकिस्मत-बेबसियोंमेंसे एक है कि विदेशोंकी खबरें पानेके लिए हमें करीब-करीब एकदम ब्रिटिश एजेंसी पर निर्भर रहना पड़ता है, जो खबरोंको हमारे दृष्टिकोण से न देखकर निश्चय ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टिकोणसे देखती है। उसके लंदनके दफ्तर तय करते हैं कि क्या (खबर) पानेमें हमारी भलाई है, और उसका थोड़ा-सा कटा-छंटा हिस्सा रोज-ब-रोज हमारे पास भेज दिया जाता है। लार्ड जैटलैंड या और कोई साहब जो कुछ कहते हैं, वह मजेदार हो सकता है; लेकिन दुनियाकी खबर महज वही तो नहीं होती। मगर रायटरका अब भी खयाल है कि हम भारत-मंत्री के दफ्तरके बड़े अफसरोंके मुंहसे निकले सुनहले शब्दोंकी उत्सुकतासे बाट जोहा करते होंगे; और उधर दुनियाकी वह असली खबर जिसके जाननेको हम उत्सुक होते हैं, हमें दी नहीं जाती।

जो कोई आदमी पूरबमें मलाया या जावा गया है, वह जानता है कि वहां और हिंदुस्तानमें मिलनेवाली खबरोंमें जमीन-आसमानका फर्क है! वहां क्या

चीन, क्या सुदूर पूर्व, क्या अमरीका और क्या यूरोप—सबकी ताजी खबरें ही क्यों, नया दृष्टिकोण भी पहुंचाया जाता है और रायटरसे खबरें पाते रहनेके बाद यह तब्दीली अच्छी लगती है। वे ताजी खबरें अमरीकाकी एजेंसियोंके जरिये मिलती हैं जो बदकिस्मतीसे हिंदुस्तानमें नहीं पहुंचने पातीं।

इसलिए चीनके बारेमें हिंदुस्तानमें हमें खबरें मिलती ही नहीं। दरअसल खबरोंकी कमी नहीं है बशर्ते कि हम उन्हें पा सकें। आज चीन हर मानीमें 'समाचार'-रूप बना हुआ है।

चीन स्वयं समाचार इसलिए भी है कि जो कुछ वहां हो रहा है उसका दुनियाके लिए, एशियाके लिए और हिंदुस्तानके लिए बड़ा महत्त्व है। चीन दुनियाके खास मुल्कोंमेंसे एक है और तमाम दुनियाको देखते हुए यूरोपके छोटे-छोटे लड़ाका देशोंकी बनिस्बत उसका महत्त्व ज्यादा है। हर हालतमें एशिया और हम हिंदुस्तानवालोंके लिए चीन और उसके भविष्यका विशेष महत्त्व है!

चीन इसलिए भी समाचार है कि वहां जापानकी फौजोंने बड़ी खौफनाक बरबादी ढाई है! क्या हम समझते हैं कि हम जो छोटी-मोटी खबरें पढ़ा करते हैं उनका असली मतलब क्या होता होगा? उनका मतलब होता है बड़े-बड़े शहरों-पर रोजाना बमबारी, लाखोंका खून और मौजूदा लड़ाईके तरीकोंकी बेरहमी और हैवानियत!

लेकिन वह सबसे ज्यादा समाचारवाला देश इसलिए भी है कि उसने अपनी मुश्किलोंको बड़ी बहादुरीके साथ हल किया है और वीरताके साथ शत्रुका मुकाबला किया है। सिर्फ एक महान् राष्ट्र ही ऐसा कर सकता था—महान् राष्ट्र इसलिए नहीं कि उसने भूतकालमें बड़े-बड़े काम किये हैं, बल्कि इसलिए कि वर्त्त-मानके कार्य द्वारा उसने भविष्यमें अपना दावा कायम कर दिया है। इस बदलती हुई दुनियामें भविष्यवाणी करना मुश्किल है; लेकिन हरेक बात यही जाहिर करती है कि मौजूदा संकटमें चीन की जीत होगी। जहांतक फौजका ताल्लुक है, चीन दो बरसकी लड़ाईके बाद भी आज लड़ाई शुरू होनेपर जितना मजबूत था उससे कहीं ज्यादा ताकतवर है। वह मजबूत हो गया है, संगठन उसका बढ़ गया है और उसकी साधन-सामग्री भी अच्छी हो गई है। लड़ाईके कुछ ऐसे तरीके भी उसने निकाल लिये हैं जो उसके लड़ाईमें कमजोर होने और बड़ी-बड़ी खाली पड़ी हुई जगहों

हीके खयालसे मुनासिब हैं। चीनी लोगोंमें हौसला बहुत ज्यादा है और सिपाही और किसान एक मकसद लेकर साथ-साथ आगे बढ़ते हैं। बहुत-से पुराने सेनापति, जो डरपोक, समझौतेके लिए तैयार व अयोग्य थे, उनकी जगह तजरबेकार जवान लोग आ गये हैं। शुरूमें ये पुराने लोग राजनीतिक दृष्टिसे हटाये जाने लायक नहीं थे; लेकिन जब बरबादी हुई और उनकी अयोग्यता जाहिर हुई तो उन्हें हटना पड़ा। आज विदेशके फौजी हलकोंमें यह बात सब अच्छी तरहसे जानते हैं—और ऐसे लोगोंमें जर्मन सेनापति भी शामिल हैं—कि अगर कोई गैरमामूली बात न हो गई तो चीनकी जीत होगी; देर भले ही उसमें लग जाये, चीनी लोग और उनके नेता कामको कम मानकर नहीं रह जाते, वे तो दूरंदेशीसे कहते हैं, जहांतक उनका संबंध है लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई है।

ऐसी कौनसी असाधारण घटना हो सकती है जो चीनकी कामयाबीके मौकोंको खतरेमें डाल दे ? यह तो बहुत ही नामुमकिन है कि चीनके प्रतिरोधको कुचलनेमें जापान अकेला रहकर ही कामयाब हो सके, लेकिन अगर संयुक्तराष्ट्र अमरीका या इंग्लैंड जानबूझकर चीन-विरोधी नीति अख्तियार करते हैं तो उससे फर्क पड़ सकता है। लेकिन संयुक्तराष्ट्र ऐसा नहीं करेगा, क्योंकि ऐसा करनेसे वह अपनी तमाम सुदूर पूर्वकी नीतिके खिलाफ जावेगा। और इंग्लैंड ? मि. नेविल चेंबरलेनका यह इंग्लैंड कुछ भी कर सकता है! पर आज तो वह निश्चित रूपसे चीनके पक्षमें है। कल वह क्या हो जायेगा, यह सिर्फ मि. चेंबरलेन ही जानते हैं।

इस लड़ाई, इस हैवानियत और इस मारकाटके पीछे चीनमें कुछ ऐसा हो रहा है जिसका महत्त्व है। एक नये चीनका निर्माण हो रहा है जिसकी जड़ें उसकी अपनी ही संस्कृतिमें जमी हुई हैं और सदियोंके आलस्य और कमजोरियोंको दूर करके अब एक मजबूत, सुसंगठित और आधुनिक चीन उठ रहा है, जिसकी दृष्टि मनुष्यताकी होगी। संकटके इन बरसोंमें चीनने जो एकता प्राप्त कर ली है, वह आश्चर्यजनक और प्रेरणा देनेवाली है। वह एकता सिर्फ अपने बचावके लिए ही नहीं है, बल्कि वह एकता काम करने और अपना निर्माण करनेके लिए भी है। लड़ाईके मोर्चों के पीछे चीनके समुद्री किनारेके पिछले प्रदेशोंमें बड़ी-बड़ी योजनाएं अमलमें आ रही हैं जो देशकी सूरत ही बदले डाल रही हैं। हवाई

जहाजोंसे बमबारीके लगातार खतरोंके होते हुए भी उद्योग-धंधोंमें बढ़ती हो रही है और खास दिलचस्पीकी चीज यह है कि तोपोंकी कान फाड़ डालनेवाली आवाजोंके बीच भी छोटे-छोटे और घरेलू उद्योगोंके लिए सहकारिताकी योजना बनने जा रही है। इन घरेलू और छोटे उद्योगोंसे एक बड़ा फायदा यह है कि वीरान हिस्सोंमें उन्हें जल्दीसे चालू किया जा सकता है और खतरेके समय उन्हें हटाया भी जा सकता है।

यह है नया चीन, जिसका लड़ाईके धुएं और बरबादीके बीच बेमिसाल पैमानेपर निर्माण हो रहा है। हमें उससे बहुत-कुछ सीखना है।

१५ जून, १९३९

: २ :

चीनमें

कुछ महीने हुए एक मित्रने मुझसे कहा कि तुम हमेशा गई-गुजरी बातोंमें फंसे रहते हो। उनसे अंतर्राष्ट्रीय मामलोंपर चर्चा चल गई थी और उन्हें गई-गुजरी बातोंसे मेरा लगाव होना पसंद न था। मंचूरिया, अबीसीनिया, चेको-स्लोवाकिया और स्पेन ये सारी-की-सारी बदकिस्मती और बर्बादीकी दर्दनाक कहानी हैं और मैं हमेशा गलतीका पक्ष लेता हुआ दिखाई देता हूं। मित्र तो यथार्थवादी नीतिके हामी थे, इसलिए उन्होंने कहा कि उन देशोंसे दोस्ती रखी जाये कि जो अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिसे ऊंचे दर्जेके हैं, या कम-से-कम उन्हें बहुत ज्यादा नाराज तो नहीं किया जाये।

मैंने माना कि उन्होंने जो दोषारोपण किया है, उसका मैं अपराधी हूं; हालांकि यह माननेके लिए मैं तैयार नहीं हूं कि मैं यथार्थवादी नहीं हूं।

इस चर्चासे हमारे सामने यह सवाल आता है कि यथार्थवाद या वास्तविकता क्या है? क्या मौकेसे थोड़ी देरका फायदा उठा लेना ही इसकी कसौटी होनी चाहिए? या कोई दूरंदेशी दृष्टिकोण हमें सामने रखना चाहिए? क्या सिद्धांतों और आदर्शोंकी और भी कोई बुनियादी कसौटियां हैं या हम सिर्फ बाजारू

भाषामें ही उनकी बात सोचें ? हमारी इस मौजूदा दुनियामें जिसमें किसी भी देशके लिए अब यह मुमकिन नहीं रहा कि वह अलग रह सके और जहां हरेक राजनैतिक संकटसे दूसरे सुदूर देशोंमें हलचल मच जाती है, क्या हम केवल एक ही राष्ट्रकी बात सोच सकते हैं ? डांजिगके मामलेको ही लीजिए। आज उसने यूरोप भरको हिला दिया है और तमाम दुनियाके कान उधर हो रहे हैं। कारण यह है कि डांजिग महज डांजिग ही नहीं है, बल्कि वह एक कभी न रुकनेवाला संघर्ष है जो हमारी आजकी दुनियाको खाये जा रहा है।

अपने बीते हुए और मौजूदा ताल्लुकातपर मुझे कोई पछतावा नहीं है और मुझे इस बातका गौरव है कि भले ही स्पेन आज पैरों तले कुचल डाला गया है; पर जरूरतके वक्त हिंदुस्तानने उसका साथ दिया और मैं तो अब भी बड़ी आशावादिता-के साथ विश्वास करता हूं कि प्रजातंत्रीय स्पेन और चैकोंका प्रजातंत्र जिनका उनके साथियोंने ही दग़ा देकर काम तमाम कर दिया है, फिर कभी-न-कभी उठ खड़े होंगे। हो सकता है कि यह मेरी खामखयाली ही हो, फिर भी मैं उनकी हिमायत करूंगा; क्योंकि मैं देखता हूं कि उनमें मैंने जिंदगीकी वे कीमती बातें पाईं कि जिनके लिए हिंदुस्तानमें हमने इतना पसीना बहाया है। अगर मैं इनको छोड़ दूं तो हिंदुस्तानमें किसको अपनाऊं ? और फिर वह आजादी कैसी होगी, कि जिसके लिए हम इतना उद्योग कर रहे हैं।

मैं चीन जाता हूं, क्योंकि वह महान् देश कई तरहसे मुझे अपनी तरफ खींच रहा है। लेकिन हमारे यहां जो संकट पैदा हो गया है उसमें स्वदेशसे रवाना होनेकी मेरी मर्जी होती नहीं; लेकिन संकट तो भारत और दुनियामें हमेशा ही बना रहता है और हमारी भावनाएं इतनी मर गई हैं कि उसकी वकत नहीं कर सकते। तलवारकी धारपर हम बैठे हैं, हम मुश्किलसे अपनेको सम्हाल पा रहे हैं और घटनाओंका दौरदौरा शुरू होनेकी बाट जोह रहे हैं। लड़ाई शुरू होगी या क्या ? हिटलर क्या कहता है ? सिन्योर मुसोलिनी कहां है ? डांजिग, टिंटसिन या हांगकांगमें क्या हो रहा है ? मि. चेंबरलेन क्या कहीं मछली मारने चले गये हैं ? लेकिन डगमगाती किश्ती थोड़ी देरके लिए थमती है और जितनी देर थमी रहती है, हमें अपने कामपर लग जाना होता है।

बहुत दिनोंकी हिचकिचाहटके बाद मैंने चीन जाना तय कर लिया। चीन जाना

मैंने इसलिए भी तय किया कि वह दूर है तो भी हवाई सफरने उसे हमारे बहुत पास ला दिया है और दो-तीन दिनमें हम वहां पहुंच सकते हैं। वहां जाना भी आसान है और जरूरत आ पड़े तो फौरन लौटा भी जा सकता है। हालांकि मुझे हिचकिचाहट हो रही थी, लेकिन मैंने जाना ही तय किया, क्योंकि चीनके साथी हाथसे इशारा करके मुझे बुला रहे थे और अतीतकी स्मृतियां मुझे जानेके-लिए प्रेरित कर रही थीं। भारत और चीनकी वेदना और विजयका लंबा इतिहास मेरी आंखोंके सामने आ गया और मौजूदा मुसीबतें 'अरब लोगोंकी तरह अपने डेरे-डंडे उठा-उठाकर चुपचाप चली जा रही हैं।' वर्त्तमान भी बीतेगा और भविष्यमें विलीन हो जायेगा। और भारत बना रहेगा, चीन भी बना रहेगा और अपनी और दुनियाकी भलाईके लिए दोनों मिलकर काम करेंगे।

चीन जानेकी एक वजह और भी है। चीनने आजादीकी लड़ाईमें जो गौरवपूर्ण साहस दिखाया है उसका और उस दृढ़ निश्चयका जो अनेक आपदाओं और अद्वितीय संकटोंमें भी अमिट रहा है और अपने शत्रुके मुकाबलेके लिए उसने जो एकता दिखाई, उसका वह प्रतीक है। मैं उसको श्रद्धांजलि देने और उसका अभिनंदन करने जा रहा हूं।

दोस्तोंने मुझे संभवनीय खतरोंकी चेतावनी दी है। उन्होंने मुझपर जोर डाला है कि मैं इस पागलपनभरे दुस्साहसको छोड़ दूं! लेकिन, अगर हमारे लाखों चीनी भाई इन खतरोंको बहादुरीसे उठा रहे हैं, तो निश्चित रूपसे एक भारतवासीको भी उसमें उनका हाथ बंटाना चाहिए। हम खतरोंसे इतने नहीं डरते हैं कि उनसे दूर-दूर भागें। उम्र मेरी बीतती जा रही है; लेकिन खतरे उठानेकी प्रेरणा अब भी मेरे अंदर है। क्या मेरे मित्र मुझे इस पौष्टिक दवा और इस खुशीसे महरूम रखना चाहते हैं?

मैं चीन जा रहा हूं, पर दिल मेरा भारी-भारी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इन वर्षोंमें पसीना बहाकर जो कुछ हमने खड़ा किया था, वह सब ढह रहा है। छिपी बुराइयां तमाम अपने-अपने दिलोंसे निकलकर सिर उठा रही हैं और जिस रास्तेपर हम गर्व और आत्म-विश्वासके साथ चले थे, उसपर अजनबी और मनहूस शक्लें हमला करती दिखाई दे रही हैं। साहस और बलिदानकी भावना मानो अब जाती रही। न एक-दूसरेमें विश्वास ही बाकी बचा है और उनकी जगह

कमीनापन व लड़ाई-झगड़े लोगोंमें घर कर गये हैं और वे एक-दूसरेपर बुरी तरहसे संदेह करने लगे हैं। हम अपने आपको ही भूल गये हैं।

लेकिन अपने आपको हम फिर पा लेंगे और बुराईका आमने-सामने मुकाबला करेंगे और मार-मारकर उसका दम निकाल देंगे। लड़ाईमें हम फिर पड़ेंगे। भारतके लिए हमारे हृदयोंमें भरा प्रेम और देशवासियोंको स्वतंत्र करनेकी प्रबल इच्छा हमें आगे बढ़नेमें प्रोत्साहन देगी।

मैं चीन जा तो रहा हूं, पर मेरा दिल भारतमें बना रहेगा और जहां-कहीं मैं जाऊंगा भारतका चित्र मेरे मनपर खिचा रहेगा। उस चित्रको मैंने इस महाद्वीपके हजारों, हमेशा बदलती रहनेवाली शक्लों, रूपों और रंगोंमें देखा है। लाखों परिचित चेहरे मुझे याद आयेंगे—वे चेहरे जिनकी उत्सुक आंखोंको मैंने देखा है और यह जाननेकी कोशिश की है कि उनके पीछे क्या-क्या छिपा है? भारत और चीन मेरे दिमागमें एक-दूसरेमे मिल जायंगे और मुझे उम्मीद है कि मैं अपने साथ चीनियोंका साहस, उनका अजेय आशावाद और अपने सामने खड़ी हुई मुसीबतके समय कंधे-से-कंधा भिड़ाकर सोचनेकी शक्ति अपने साथ लाऊंगा।

१८ अगस्त, १९३९

: २ :

चीन-यात्राके संस्मरण

चीनकी यात्रामें मैंने हर शामको दिनभरकी घटनाओं और अनुभवोंको लिखते जाना शुरू किया। पहले भी डायरी रखनेका शुभ संकल्प मैंने कई मर्तबा किया था; पर दूसरे कई अच्छे इरादोंकी तरह यह संकल्प भी बहुत जल्द कमजोर पड़ गया; लेकिन इस बार मैंने सोचा कि अपने अनुभवोंको उनके ताजे रहते लिख डालना अच्छा है, ताकि हिंदुस्तानके अपने दोस्तों और साथियोंको भी उसका आनंद ले लेने दूं। इसलिए मैंने शुरू तो किया, मगर दिमागमें यह बात जरूर थी कि मैं यह सिलसिला जारी रख नहीं सकूंगा। कलकत्तेसे जिस दिन रवाना हुआ उसी सांझको अपने अनुभवोंकी पहली लेखमाला मैंने सैगोनसे भेज

दी। पहले दिन मैं कुनमिंग पहुंच गया और उस दिन थका हुआ था, तो भी दूसरे दिनका वर्णन लिख लिया और अगले दिन बड़े तड़के उसे डाकमें डलवा दिया। मैं चुंगकिंग पहुंचा और उस रातको फिर बड़ी देरतक बैठा लिखता रहा। इसी तरह चौथी रातको भी लिखता रहा। लेकिन ये दोनों पिछले लेख हिंदुस्तान नहीं भेजे गये। कुछ तो इसका कारण यह था कि मैंने सोचा कि दिनभरके व्यस्त व भारी कार्यक्रमके बाद रोजाना लिखनेका नियम पालन करना बड़ा मुश्किल है और कुछ कारण यह था कि मेरे वर्णन या संस्मरण हवाई डाकसे भी हिंदुस्तान बड़ी देरसे पहुंचेंगे और फिर उन दिनों चुगकिंगमें लड़ाईके कारण पत्रोंपर सेंसर था। हालांकि जो-कुछ मै लिखता था सेंसरको उसपर कोई ऐतराज हो नहीं सकता था, फिर भी इस सब सोच-विचारके बाद मैंने यह तय किया कि इस तरहका लिखना बंद कर दूं। लेकिन असलमें ठीक-ठीक सबब तो यही था कि मुझे वक्त ही नहीं मिलता था।

सिर्फ चार राततक तो मैंने लिखा। बादमें अपने ऊपर लदा हुआ यह काम मैंने छोड़ दिया। लेकिन घटनाएं एकके बाद एक घटित होती गई और नये-नये अनुभव दिमागमें भरते गये। मैंने अपना अधिकांश वक्त चुगकिंगमें बिताया और फिर चुंगतू गया। मेरा इरादा तो दूसरी कई जगहें देखनेका था--खासकरके उत्तर-पश्चिमको तो--जहां कि आठवी सेना (Eighth Route Army) ने जापानी फौजोंको रोक लिया था--मैं देखना ही चाहता था। फिर अपना कांग्रेसका डाक्टरी दल भी था। वहां जाकर उसका काम देखनेकी भी मेरी इच्छा थी ही। लेकिन यह सब नहीं होना था। जब मैं चुंगतूमें था, मेरे पास एक संदेश पहुंचा-- पहले-पहल मुझे काफी अचरज हुआ कि वह ब्रिटिश ब्राडकास्टके जरिये पहुचा-- कि राष्ट्रपतिने मुझे शीघ्र स्वदेशमें बुलाया है। मैं फौरन चुंगकिंगको लौट पड़ा और हिंदुस्तान आनेवाले एक हवाई जहाजमें जगह पानेकी कोशिश की। इस कोशिशमें कामयाब न हो पाया, तब चीन सरकारने मेरी मदद की और मुझे एक उम्दा डगलस कंपनीका हवाई जहाज दिया जो मुझे तीन ही घंटेमें लाशियो ले आया। यह बर्माकी सरहदपर है। इरादा मेरा था कि नई बरमा सड़कसे लौटूंगा, मगर हुआ यह कि मुझे उसके ऊपर उड़कर आना पड़ा।

इस प्रकार तेरह दिनमें मैंने इस महान् देशकी यात्रा समाप्त की। ये तेरह दिन बड़े व्यस्त रहे और मैं चाहता तो क्या-क्या दृश्य मैंने देखे, किन-किन लोगों से मैं मिला, क्या-क्या मैंने अनुभव किया— यह सब लिखकर आसानीसे एक किताब तैयार कर सकता था। मैंने पांच हवाई हमले देखे—जबकि मैं अंधेरी खाइयोंमें बैठा था, लेकिन कभी-कभी आसमानमें होनेवाली लड़ाईको देखनेके लिए बाहर झांक लेता था। जापानके बम बरसानेवाले हवाई जहाज सर्चलाइटकी किरणोंसे देख लिये जाते थे। वे जहाज आसपासके अंधेरेमें बड़े तेज चमकते थे और पीछा करनेवाले चीनी हवाई जहाजोंके हमलेसे बचनेकी कोशिश करते थे। जब सरपर मौत मंडरा रही थी तब भी मैंने देखा कि चीनी गिरोहोंमें आश्चर्यजनक शांतिसे काम हो रहा है। लड़ाईकी भयानक सरगर्मीके बावजूद मैंने देखा कि नगरमें जिंदगीकी चहल-पहल साधारण गतिसे हो रही है। मैंने कारखाने देखे, गर्मियोंके स्कूल देखे, सैनिक स्कूल देखे, जवानोंके डेरे देखे, और देखे शिक्षणालय—जो मानो अपनी पुरानी जड़से उखड़कर बांसके छप्परोंमें आगये थे और नया जीवन और बल पा रहे थे। गांवोंकी सहयोग-सभाके आंदोलन और घरेलू धंधोंकी उन्नतिने मुझे बड़ा लुभा लिया। मैं विद्वानोंसे, राजनेताओंसे, सेनापतियोंसे और नवीन चीनके नेताओंसे मिला और सबसे ज्यादा बढ़कर तो मुझे चीनके सर्वश्रेष्ठ नेता और अधिनायक, प्रधान सेनापति च्यांग-काई-शेकसे कई मर्तबा मिलनेका सुअवसर मिला। चीनके संगठित होने और अपने-आपको स्वतंत्र करनेके दृढ़ संकल्पको मैंने उनमें मूर्त्तिमान् देखा। यह भी मेरा सद्भाग्य था कि मैं उस देशकी सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती च्यांगसे मिला जिनसे राष्ट्रको लगातार प्रेरणा मिलती रही है।

लेकिन चाहे मैं वहांके प्रमुख और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषोंसे मिला, पर कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मैं चीनके निवासियोंको समझ सकूं और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूं। मैंने उनके विषयमें और उनके गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहासके संबंधमें बहुत पढ़ा था और मैं उस वास्तविकताको देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशाके अनुकूल ही निकली— मैंने उस जातिको विज्ञ, गंभीर और अपने महान् अतीतके अनुकूल बुद्धिमान ही नहीं पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे बड़े बलिष्ठ तथा जीवन और शक्तिसे परिपूर्ण लोग हैं— और आधुनिक परिस्थितिसे

सामंजस्य स्थापित करनेवाले हैं। बाजारमें जाते हुए मामूली आदमीके चेहरेपर भी हजारों वर्षोंकी संस्कृतिकी छाप है। कुछ हदतक मैंने यही आशा बांधी थी। लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया वह नवीन चीनकी अद्भुत शक्ति थी। सैन्य-बलका मैं कोई पारखी नहीं था, पर मैं यह कल्पनातक नहीं कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और संकल्पवाली और युग-युगका बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।

हर जगह मुझे भारी सद्भावना और आतिथ्य मिला और मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि व्यक्तिगत महत्त्वसे यह वस्तु बड़ी है। मुझे भारतका, कांग्रेसका, प्रतिनिधि समझा गया हालांकि मेरी ऐसी कोई हैसियत नहीं थी और चीनवासी इस बातके लिए उत्सुक और उत्कंठित थे कि भारतीयोंसे मित्रता करें और संपर्क बढ़ायें। मेरी भी तो यह हार्दिक इच्छा थी। इसलिए इससे ज्यादा खुशीकी बात मुझे और क्या हो सकती थी?

इस तरह १३ दिन बाद मैं लौट आया— विवश होकर, लेकिन उसे लाजमी समझकर, क्योंकि भारतका बुलावा उस संकटके समयमें अनिवार्य था। लेकिन वह मेरी छोटी-सी यात्रा सचमुच मेरे ही लिए नहीं, हिंदुस्तान और चीनके लिए कीमती हो गई है।

एक अफसोस मुझे रहा। मैं श्रीमती सन-यात-सेनसे न मिल सका, कि जो तबसे चीनकी क्रांतिकी जीवन-ज्योति और आत्मा बनी हुई हैं जबसे कि उस क्रांतिका वह विधायक उठ गया। मैंने उनसे १२ बरस पहले आध घंटे मुलाकात की थी, तबसे मेरी इच्छा रही थी कि मैं उनसे फिर मिलता मगर बदकिस्मतीसे वह उस समय थीं हांगकांगमें और मैं उस तरफ न जा सका।

१

२० अगस्त, १६३६

बमरौली हवाई अड्डेपर हमें बहुत देर इंतजार करना पड़ा। इस तरहका इंतजार करना बड़ा बुरा लगता है और कुछ-कुछ उससे झुंझलाहट भी होती है। उस वक्त ठीक-ठीक यह भी तो मालूम नहीं होता कि क्या किया जाये या किस तरहसे किया जाये? बहुत देरतक बिदाई होते रहना भी बवाल हो उठता है।

आखिरकार एयर फ्रांस लाइनर आया और तरीकेसे उतरा। जहाज आनेके बाद भी चालीस मिनट फिर रुकना पड़ा। ड्राइवर और दूसरे राहगीरोंने खाया-पिया। और भी झुंझलाहट हुई।

दोपहरको १-३५पर हम रवाना हुए। जहाज अच्छी तरहसे चला। थोड़ी देर बाद हम बनारस पहुंचे और शहरका अच्छा दृश्य देखा। फिर मैं सो गया। बड़े अचरजकी बात है कि मैं हवाई-जहाजमें न जाने कितना सोता हूं। यह तो शायद कुछ-कुछ पिछली थकान और कम सो पानेका नतीजा था। लेकिन कुछ हवाई जहाजके चलने और हिलने-डुलनेसे भी नींद आ जाती है। कलकत्तेतकके सफरमें करीब-करीब मैं सोता ही रहा। एक बार चौंककर उठा तो देखा कि हम लोग पहाड़ी जंगलोंके देशमें नीचे उड़ रहे हैं। कभी-कभी हम किसी पहाड़ीकी चोटीके ऊपर होकर निकल जाते थे। पहाड़ीकी शक्लें अजीब हैं और तमाम देश एक अपरिचित-सा—कलकत्ते जानेवाली ट्रेनसे हम जो कुछ देखते हैं, उससे बिलकुल निराला ही—दिखाई देता है। कुछ समझमें नहीं आता, कहां है? लेकिन पता लगानेका कोई जरिया हमारे पास नहीं है और नींद इतनी लग रही है कि कौन तकलीफ करे? गालिबन् हम लोग पूर्वी बिहारके ऊपर उड़ रहे होंगे। बड़ी तेज हवा सामनेसे आ रही है। इससे चाल कम हो जाती है। यों इलाहाबादसे कलकत्तेका सफर अच्छी हालतोंमें ढाई घंटेका होता है और अक्सर तीन घंटेतक लग जाते हैं। पर अब तो उसमें साढ़े तीन घंटे लगते हैं। दमदम हम पांच बजनेके थोड़ी देर बाद पहुंचे और कलकत्ता साढ़े पांच बजे।

कलकत्ता

कलकत्तेमें अपने दोस्तोंको मैंने जानबूझकर अपने आनेकी खबर नहीं दी थी। थोड़े-से घंटोंके लिए दौड़-धूप करानेसे फायदा भी क्या? खास तौरसे ऐसी हालतमें जबकि जहाजके और साथी मुसाफिरोंके साथ होटलमें ठहरनेका मेरा इरादा था। इन हवाई जहाजोंसे सफर करनेमें उनके होटलोंमें जाना और उनके सुपुर्द रहना हमेशा बहुत अच्छा होता है, क्योंकि सवेरे बहुत जल्दी उठना पड़ता है। अगर कोई अपने मित्रके यहां ठहरे तो लेट होने और दूसरोंको भी लेट करनेका और शायद कभी-कभी जहाज छूट जानेतकका खतरा रहता है। इसलिए

कंपनी होटलका भाड़ा भी टिकटमें शामिल कर लेती है।

चीनके कौंसल-जनरल (प्रमुख राजकीय प्रतिनिधि) को मैंने अपने कलकत्ते से गुजरनेकी खबर दे दी थी, क्योंकि मैं उनसे मिलनेकी उम्मीद करता था। वह हवाई अड्डेपर अपने और दूसरे चीनी दोस्तोंके साथ मौजूद थे और यह देखकर अचरज हुआ कि वहां पत्र-प्रतिनिधियों और दूसरे आदमियोंकी भीड़-सी लगी है।

मुझे पता चला कि कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर कलकत्तेमें हैं। यह एक अच्छा मौका था, जिसे मैं क्यों खोने लगा? क्योंकि गुरुदेवसे मिलना तो हमेशा बड़ी खुशीकी बात होती है। अपने होटलसे मैं फौरन ही उनके घर पहुंचा और थोड़ेसे वक्तमें उन्होंने एशियाकी संस्कृतियोंके संगमपर बातें की और बताया कि क्यों हिंदुस्तानको पूर्वी देशोंसे संपर्क बढ़ाना चाहिए।

इस बातसे वह खुश थे कि मैं चीन जा रहा हूं। उन्होंने जोर देकर कहा कि जापान भी जाना, खास तौरसे जापानियोंसे यह कहनेके लिए कि वे आजकल चीनमें जो काम कर रहे हैं, उसमें अपनी आत्माको न गिरायें। वह इस बातके-लिए इच्छुक थे कि हम जापान और जापानकी निस्बत अपनी स्थिति साफ-साफ प्रकट कर दें। जापानके सैनिकवाद, साम्राज्यवाद और आतंकका, जो उन्होंने चीनमें फैला रखा है, हम घोर विरोध करते हैं; लेकिन जापानियोंके प्रति हमारी कोई दुर्भावना नहीं है। उनके साथ हम दोस्ती करना चाहते हैं, लेकिन इस गलत बुनियादपर नहीं। चीनकी मुसीबत तो भयानक थी ही, पर जापानका नुकसान भी कम नहीं था और यह हैवानियत-भरा साम्राज्यवाद उसकी आत्माको ऐसी चोट पहुंचा रहा है, जो हमेशा स्थायी रहेगी।

मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि मैं भी जापान जाने का बहुत इच्छुक हूं। बहुत दिनोंसे मैं जापान जाना चाह रहा हूं; लेकिन इस वक्त वह मुश्किल ही दीखता है; क्योंकि उसमें वक्त बहुत ज्यादा लगेगा। राष्ट्रीय चीनको पार करके मैं कई मोर्चोंपर होकर तो जापानके अधीन भागोंमें पहुंच नहीं सकता। मुझे हांगकांग वापस आना होगा और फिर वहांसे सीधे समुद्रसे या हवाई जहाजसे जापान जाना होगा। इसमें हिंदुस्तानसे जितने दिन बाहर रहनेकी बात थी, उससे कहीं ज्यादा दिन लग जायेंगे। इसके अलावा मुझे अपनी शक्तिपर भरोसा नहीं है

कि मैं जापानकी सरकारको अमन-चैनके और जन-तंत्रीय तरीके अख्तियार करनेके लिए राजी कर सकूंगा। और असलमें उस वक्त जापानकी सरकारसे मिलना भी मुमकिन नहीं था।

चीनी कौंसल-जनरल आये और मुझे अपने स्थानपर ले गये। वहांसे हम एक चीनी होटलमें गये, जहांपर कलकत्तेके कोई दो दर्जन चीनी लोग दावतके लिए जमा हुए थे। मुझे एक खूबसूरत रेशमी झंडा भेंट किया गया, जिसपर चीनी जबानमें कुछ लिखा था। उसमें मेरा हार्दिक अभिनंदन किया गया था और मेरी यात्राके लिए शुभ कामनाएं की गई थीं। मुझसे साफ-साफ और कुछ माफी-सी मांगते हुए कहा गया कि दावत बहुत छोटी-सी ही रखी गई है, ताकि मुझे देर न हो। चीनियोंका भोजन मुझे पसंद है, पर उनकी दावतोंसे मुझे डर लगता है। उनका हल्का खाना तक इतना भारी और देरतक चलनेवाला हो जाया करता है कि मुझसे तो बर्दाश्त नहीं हो सकता। दावत बढ़िया हुई, सात बार परोसा गया और मैं आनंदसे खा तो रहा था, पर चीनी दावतोंके खत्म न होनेवाले सिलसिलेकी संभावनासे मैं कुछ व्याकुल-सा हो गया।

वह खुशगवार दावत आपसमें सद्भावनाएं प्रकट करने-करानेके बाद खत्म हुई और मैं झटपट अपने होटलमें लौट आया। थोड़ी-सी चिट्ठियां लिखीं और कुछ दूसरे इंतजाम किये। इधर आधी रातका घंटा बजा और उधर मैं सोया। मुझे खबर दी गई थी कि हमें तीन बजे उठाया जायेगा और ३-४०पर हमें होटलसे चल देना होगा। ऐसा वक्त हवाई सफरका मजा बहुत-कुछ किरकिरा कर देता है। फिर अगर सफर करते हुए कोई ऊंघने लगे तो कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए। इस तरह पहला दिन बीता।

२

२१ अगस्त, १९३९

चीनी कौंसल-जनरल और दूसरे दोस्त सबेरे साढ़े तीन बजे होटलमें आये। हवाई अड्डेपर इतने सबेरे कलकत्तेके अपने दोस्तों और साथियोंकी भीड़-की-भीड़ देखकर मुझे अचरज हुआ उनमें बहुतसे मुझसे नाराज हुए कि मैंने पहलेसे अपने आनेकी खबर क्यों नहीं दी ?

सुबह साढ़े-चार बजे हमारा जहाज चला और मुझे अपनी आरामकुर्सीपर नींद आने लगी। पौ फटी और मैंने जगकर देखा कि समुद्रमें विलीन होते हुए बंगालकी झलक दिखाई दे रही है।

अक्याब

सुबह कोई सात बजे हम अक्याब पहुंचे। मैंने देखा कि वहांके हिंदुस्तानी मेरा स्वागत करनेके लिए इकट्ठे हैं। दिल्ली रेडियोसे उन्हें मेरे आनेकी खबर मिल गई थी। वहांसे हमें आधा घंटे ठहरकर चलना था। मुझे फिर नींद आ गई और कुछ देर बाद एक कंपकंपीके साथ फिर नींद खुल गई। यह स्पष्ट था कि हम बहुत ऊंचाईपर उड़ रहे थे और बादल हमसे कुछ ही ऊपर थे। बादलोंको छोड़कर चारों ओर कुछ नजर नहीं आता था।

बैंगकॉक

हम लोग अपनी घड़ियोंके हिसाबसे बारह बजेके करीब बैंगकॉक पहुंचे; लेकिन वहां उस वक्त एक बजा था। खूबसूरत हवाई-अड्डा था और हिंदुस्तानियों-की बड़ी भीड़ मेरा स्वागत करनेको तैयार थी! उन्होंने मुझसे कहा कि कोई मील दो मीलपर बहुतसे हमारे देशवासी इकट्ठे हुए हैं और मेरे लिए वहां इंतजार कर रहे हैं। झटपट मोटरसे मैं वहां ले जाया गया और कुछ मिनट भाषण देनेके बाद मैं फिर लौट आया।

यह कहना गलत है कि हम लोग बैंगकॉक पहुंच गए। शहर तो हवाई-अड्डेसे अठारह मील दूर था। आसमानसे दूरपर उसकी कुछ झलक हमें मिल गई थी।

स्यामके पत्रकार मुझसे मुलाकात करना चाहते थे। उनके कुछ सवालोंका जवाब मैंने दिया। हिंदुस्तानी चाहते थे कि मैं वादा करूं कि लौटते हुए जरूर बैंगकॉक ठहरूंगा। ठहरना तो मैं चाहूंगा। देश मुझे अपनी तरफ खींचता है और वह हमारा पास-पड़ौसी-ही तो है। हवाई जहाजसे सिर्फ सात घंटेका रास्ता है। वहां उस देशको स्याम नहीं कहते। वह थाईलैंड—'आजाद लोगोंका देश'—के नामसे मशहूर है। विदेशोंमें भी हमें शीघ्र ही उसे थाईलैंडके

नामसे पुकारना पड़ेगा ।

बैंगकॉकके हवाई अड्डेपर फूलोंकी जैसी खूबसूरत मालाएं मुझे भेंट की गईं, वैसी मैंने कभी नहीं देखीं । और मालाओंके बारेमें मेरे तरह-तरहके तजरबे हैं । ये मालाएं बड़ी चतुराई और कलात्मक ढंगसे बनाई गई थीं । खूबीके साथ रंगोंका मेल उनमें किया गया था ।

बैंगकॉकके पास जो हिंदुस्तानी मुझे मिले, वे हिंदुस्तानके जुदा-जुदा हिस्सोंके थे; लेकिन ज्यादातर उत्तर-पश्चिमके थे । बहुत-से मुसलमान व सिक्ख थे। इसलिए मैंने उनसे हिंदुस्तानीमें ही बातचीत की । जब मैं बैगकॉक छोड़ रहा था तभी सेगौनसे बेतारकी खबर आई कि वहांपर हिंदुस्तानी मेरे स्वागतकी व्यवस्था कर रहे हैं ।

सेगौन

बैंककॉकके हवाई अड्डेसे हम दोपहरको १-४५पर चल दिये । सफरमें कोई खास बात नहीं हुई । मुझे कुछ उम्मीद थी कि शायद हम अंगकोरपर होकर गुजरें और उसके खंडहरोकी एक झलक मुझे देखनेको मिल जाये, लेकिन वह पूरी न हुई । सेगौन पहुंचनेसे कुछ पहले हम एक बहुत बड़ी झीलपर होकर गुजरे । हो सकता है, वहां बाढ़का पानी इकट्ठा हो गया हो । कोई पांच बजे हम सेगौन पहुंचे । हिंदुस्तानियोंकी भीड़ मालाएं और खूबसूरत गुलदस्ते लिये खड़ी थी । ज्योंही मैं जहाजसे उतरा, एक हिंदुस्तानी आगे बढ़े और उन्होंने अच्छी फ्रेंच जबानमें मेरा स्वागत किया । उन्होंने तो खासा भाषण ही दे डाला । मैं परेशान था । क्योंकि मुसाफिरोंको चुंगीके दफ्तर में जाना था । जल्दी ही मैंने महसूस कर लिया कि जैसे मै फ्रांसके किसी प्रांतमें हूं । भाषा, दुकानें, चौड़ी छायादार सड़कें, गलियां, और अखबार बिकने व बैंड बजानेके स्थान इन सबसे मुझे वहां फ्रांसकी ही याद आई । गाड़ीसे मैं शहरमें खूब घूमा, हालांकि पानी बरस रहा था। शहर बहुत खूबसूरत था। तेज रोशनीसे जगमगा रहा था। और खास-खास दुकानोंपर 'नियन' से होनेवाली रोशनी देखी। बहुत-सी फ्रेंच दुकानें भी वहांपर थीं। चीनियोंका एक पूरा क्वार्टर ही था, और हिंदुस्तानी दुकानें भी खासी तादादमें थीं।

हिन्दी-चीनमें कोई पांच हजार हिंदुस्तानी हैं, जिनमेंसे ज्यादातर मध्यम श्रेणीके लोग हैं और चौकीदार हैं, उनमेंसे अधिकांश तमिल प्रदेशके हैं। करीब-करीब सभी थोड़ी-बहुत फ्रेंच जानते हैं और बहुतसे तो खूब बोल लेते हैं। हम लोग तो जैसा देश होता है वैसी ही भाषा बना लेते हैं। हिंदुस्तानमें हमने अंग्रेजीको अपना लिया है, और हिन्दी-चीनमें फ्रेंचको। सरकारी नौकरीमें भी बहुतसे हिंदुस्तानी दिखाई दिये। उनमें ज्यादातर पांडिचेरीके बाशिंदे थे। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पांडिचेरीके बहुतसे हरिजन यहां मजिस्ट्रेट हैं।

चीनी लोगोंकी तादाद तो बहुत है। मुझे बताया गया कि पढ़े-लिखोंकी तादाद यहां बहुत ज्यादा है, कोई ३० फी सदी, जिनमेंसे बहुतसे फ्रेंच जानते हैं। अनामी भाषा लेटिन लिपिमें पढ़ाई जाती है। पुराने चीनी अक्षरोंका प्रयोग बहुत-कुछ छोड़ दिया गया है।

राजनैतिक जीवन यहां लोगोंमें नहीं और सार्वजनिक सभाओं जैसी चीज मुश्किलसे ही कोई जानता है।

शामको मुझे यहांके नत्तूकोट्टै मंदिरमें या मंदिरकी परिक्रमामें ले जाया गया। वहां बहुतसे हिंदुस्तानी इकट्ठे हुए थे। मुझे बर्मा और लंकामें भी पता चला था कि नत्तूकोट्टै मंदिर ही अक्सर ऐसे जलसोंके लिए काम में लिया जाता है, क्योंकि यहांपर हॉल नहीं है। मुझे एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया जिसका जवाब मैंने कुछ विस्तारसे दिया।

यह देखकर खुशी होती है और आश्चर्य भी होता है कि इन दूर पड़े हिंदुस्तानियोंकी बस्तीमें अपनी मातृभूमिके लिए इतना प्रेम और अभिमान है। बदकिस्मतीसे हमसे वे एकदम अलहदा हैं। हमें उनसे निकट संपर्क कायम करना चाहिए।

इन देशोंका सफर करनेवाले मुसाफिरपर एक बातका असर पड़ता है, वह है चीनियों और हिंदुस्तानियोंकी भारी ताकत और हिम्मत। बहुतसे चीनी और हिदुस्तानी दूर देश चले जाते हैं और बिना किसीके सहारे अपनी ही मेहनतसे खुशहाल हो जाते हैं।

इस तरह दूसरा दिन खत्म हुआ। मनमें इस विचारसे बड़ा आनंद आ रहा है कि आज सुबह मैं कलकत्तेमें था और दिनमें बर्मा और स्यामसे होकर गुजरा और अब मैं हिन्दी-चीन में हूं।

३

२२ अगस्त, १९३९

सुबह छःके बाद ही हम सेगौनसे चल दिये और उड़ते-उड़ते बादलोंसे बहुत ऊंचे चले गये। हम बहुत ऊंचाईपर उड़ रहे होंगे, क्योंकि सर्दी काफी मालूम देती थी। नीचे धरती हमें दिखाई नहीं देती थी और कभी-कभी बादल हमें घेर लेते थे और कुछ सूझता नहीं था। कोई पांच घंटेकी उड़ानके बाद ग्यारह बजे हम हैनोय पहुंचे। एयर फ्रांससे सफरका अब अखीर था। हमने अपने हवाई जहाज 'ला विले डी कैलकटा' से विदा ली। मुझे यह देखकर अचरज हुआ और खुशी भी हुई कि जहाजका नाम बंगलामें भी एक तरफ लिखा था। मेरे खयाल से यह कलकत्तेके लिए, जिसका नाम उस जहाज पर था, एक बड़ी बधाईकी बात है !

हैनोय

चीनी कौंसल (राजकीय प्रतिनिधि) और बहुतसे हिंदुस्तानियोंने हमारा स्वागत किया। कौंसलने बताया कि दोपहर बाद तीन बजे कुनमिंगको जानेवाले जहाजमें मेरे लिए एक सीट ले ली गई है। हिंदुस्तानी दोस्त चाहते थे कि एक या दो दिन में वहां ठहरूं, लेकिन अपने कार्यक्रममें कोई हेरफेर न कर सका।

एक सिंधी सौदागर मुझे अपने घर ले गये। उनकी बहुत बड़ी दुकान थी, जिसमें खिड़कियोंपर खूबसूरत-सी फुर्तीली अनामी लड़कियां चीजें बेच रही थीं। वहांके हिंदुस्तानियोंकी एक सभा हुई और मैंने भाषण दिया। मैंने देखा कि कुछ सिंधियों को छोड़कर बाकी सब तामिल थे, जिनमें हिंदू भी थे, और मुसलमान भी। कुछ सिंधियों और दो-तीन मुसलमानोंको छोड़कर कोई भी हिन्दुस्तानी नहीं समझता था, और अंग्रेजी तो उनसे भी कम समझ सकते थे। तामिलके अलावा वे फ्रेंच खूब जानते थे। अपनी फ्रेंच पर भरोसा न करके मैंने हिंदुस्तानीमें भाषण दिया और बादमें एक मुसलमानने जो शायद वहींकी मसजिदके इमाम थे, उसका तामिलमें तरजुमा किया।

हिंदुस्तानमें जितनी अंग्रेजी फैली है, उससे भी ज्यादा वहां फ्रेंच का राज्य है। भिखारी लड़के-लड़कियांतक फ्रेंच भाषा में भीख मांगते हैं। पढ़े-लिखोंकी

तादाद वहां ज्यादा मालूम पड़ी।

हैनोयमें कोई दो सौ-ढाई सौ हिंदुस्तानी हैं। सब कारबारमें लगे हैं और उनका काम अच्छी तरह से चल रहा है। वे सब यूरोपियन ढंगके कपड़े पहने हुए थे। बैंगकॉक और सेगौनकी तरह धोतियां यहां नहीं थीं।

मैं मोटरसे शहरमें होकर गुजरा। वह सैगोनसे बड़ा है और वहांकी चाल-ढाल भी फ्रांसीसी है। दोनोंमें सेगौन मुझे ज्यादा लुभावना जान पड़ा।

तीसरे पहर सवा तीन बजे मैं हवाई जहाज से कुनमिंगको रवाना हुआ। हिंदुस्तानियों और चीनियों की भीड़ने मुझे हार्दिक विदाई दी। जिस जहाजसे मैं सफर कर रहा था, वह यूरेशिया कंपनीका था। यह चीनी-जर्मन कारपोरेशन है। जहाज जर्मनी का बना हुआ था और उसका ड्राइवर भी जर्मन था। एयर-फ्रांस जहाजसे वह बहुत छोटा था, उसमें दस मुसाफिरोंके लिए जगह थी। जगहकी कमीकी वजहसे हम बड़े घिरे-से महसूस करते थे।

ज्योंही हम चीनके करीब पहुंचे मेरे अंदर खुशीकी एक लहर उठी। कुदरती नज्जारे भी बड़े खूबसूरत थे। पीछे पहाड़ थे और एक नदी उनमेंसे निकलकर चक्कर खाती हुई घाटीमें बह रही थी। जंगलसे लदी पहाड़ियां ऊपर छाई हुई थीं। कहीं-कहीं हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गांव थे। नदी करीब-करीब लाल दिखाई देती थी और पहाड़ियोंके खुले हिस्से भी गहरे लाल थे। शायद इसी रंगकी वजहसे हैनोयकी नदी 'लाल नदी' कहलाती है।

जब हम पहाड़ोंके पास पहुंचे तो बहुत ऊंचाई पर उड़ने लगे और कोई चार हजार फीट पहाड़ोंके ऊपर पहुंच गये। कुदरती दृश्योंको ऊपरसे देखनेमें धरतीसे देखनेकी बनिस्बत बहुत फर्क पड़ जाता है। नीचेसे देखनेमें जो बहुत खूबसूरत दिखाई देता है ऊपरसे उतना नहीं दिखाई देता; लेकिन जो दृश्य मैंने देखा, वह बहुत खूबसूरत था और तरह-तरहके पहाड़ोंकी जुदा-जुदा शक्लोंकी वजहसे नीरसता नहीं आने पाती थी। एक गहरी नीली झील, जिसके चारों तरफ हरे और लाल पत्थर थे, बड़ी खूबसूरत दिखाई देती थी। उसके बाद ही दूर एक और झील दिखाई दी; लेकिन तभी जहाजका नौकर आया और सब पर्दे गिराकर हमें आगाह कर गया कि हम पर्दे न उठायें। शायद मैं सोचता हूं ऐसा लड़ाईके कारण अहतियातन् किया गया होगा। इस तरह मुसाफिरोंको 'पर्दानशीन'

कर दिया गया। हां, जर्मन चालक सारा दृश्य देख सकता था।

कुनमिंग आ रहा था और हमें ऐसा लगा कि जहाज उतर रहा है। फौरन ही जहाजके धरतीपर उतरनेसे हमें हल्का-सा धक्का लगा और हम चीन देशमें खड़े थे।

कुनमिंग (यूनान फू)

क्योमितांगके एक प्रतिनिधि, मि. योंग कोंता, जोकि लेजिस्लेटिव य्वॉनके मेंबर भी है, चुगकिंगसे मेरा स्वागत करनेके लिए आये थे। कुनमिंगके मेयर भी वहां थे। मुझसे कहा गया कि एक रात मुझे शहरमें बितानी होगी और चुगकिग दूसरे दिन जा सकूंगा। मैं एक होटलमें ले जाया गया।

चीन मेरे लिए एक नया मुल्क था—कथा-कहानी और इतिहास और मौजूदा जमानेके बहादुरीके कामोंवाला अद्भुत देश! और मैं तो हर बातके लिए तैयार था। लेकिन जब मैं होटलमें पहुंचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे वह एकदम निराला था। उसका दरवाजा, खूबसूरत चौक और उसका बाहरी रूप बहुत आकर्षक था और खास चीनी ढंगका था। लेकिन होटलके बारेमें मेरी जो कल्पना थी उनसे वह जरा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके मुताबिक ही अपनेको बनाया और निश्चिन किया कि चीनी ढंग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आरामदेह था। गरम और ठंडे पानीका इंतजाम भी उसमें था। होटलका यह भेद बादमें खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मंदिर था पर बादमें उसे होटल बना लिया गया। मुसाफिरोंके ठहरनेके कमरे पादरियो या पुजारियोंके लिए रहे होंगे। ऐसा दिखाई देता था, हालांकि इसमें शक नहीं कि बादमें इन्हें फिरसे बनाया गया था और उसमें सामान भी जुदा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमें अच्छी तरहसे रहते होंगे। मेरा ध्यान हिंदुस्तानके झगड़ोंकी तरफ गया जो मंदिरों और मसजिदोंको लेकर बराबर चलते रहते है। लेकिन चीनियोंने मंदिरोंको होटल बनानेमें कोई रोक-थाम नहीं की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मंदिर स्कूल बना लिये गये हैं।

होटलका मैनेजर फ्रांसीसी था। उसने हमको बढ़िया फ्रांसीसी खाना खिलाया

और पीनेके लिए ईविअन पानी दिया। उसके पास अच्छी फ्रेंच शराबें भी थीं। वैसे लड़ाईके दिनोंमें चीनमें आसानीसे रहा जा सकता है, लेकिन कुनमिग नमूनेका चीनी शहर नहीं था। वह सरहदके करीब है, इसलिए विदेशी लोग और विदेशी माल आते रहते हैं। होटलका सारा वायुमंडल फ्रांसीसी था। होटलके नौकर चीनी बच्चे तक फ्रेंच बोलते थे।

हिंदी-चीनमें और यहां मुझे अपनी बहुत दिनों की भूली हुई फ्रेंचका जंग छुड़ाना पड़ा; क्योंकि कुछ आदमियोंसे बातचीत करनेका दूसरा कोई जरिया ही नहीं था। हिंदुस्तानियोंसे फ्रेंच में बात करना मुझे अजीब मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीब नहीं है जितना हिंदुस्तानियोंका आपसमें अंग्रेजीमें बातचीत करना।

मोटरसे शहरमें चक्कर लगाने और पैदल घूमनेके लिए मैं निकला। पुराना शहर था, जिसकी तीन या चार लाखकी आबादी थी। लेकिन लड़ाईकी वजहसे हाल हीमें आबादी बढ़ गई थी; क्योंकि चीनसे बाहर जानेके रास्तोंमेंसे कुनमिग भी एक है। मुझे पता चला कि कुनमिग और यूनानफू एक ही जगहें है। आज शामतक मैं सोचे बैठा था कि वे दो जुदा-जुदा शहर होंगे! यूनानफू पुराना नाम है, और कुनमिंग नया है और बिना किसी फर्कके दोनों नाम इस्तैमाल किये जाते हैं।

एक चीनी दोस्त के साथ मैं शहरमें घूमा और इस कोशिशमें रहा कि चीनके वायुमंडलका अंदाज करूं, और लड़ाईके निशानात पाऊं। सिपाहियोंकी यहां-वहां बिखरी टुकड़ियोंके अलावा लड़ाईके कोई निशान न थे। कुनमिगपर गोला-बारी नहीं हुई थी। सड़कोंमें गोल पत्थर लगे थे और वहां रोशनी ज्यादा नही थी। दुकानोंपर रोशनी खूब थी और वे आकर्षक थी। खानेकी चीजें और कपड़े और दूसरी चीजें बहुतायतसे थीं। लेकिन फिर भी शान-शौकतकी चीजोंकी कमी थी। सड़कोंपर लोगोंकी भीड़ थी और रिक्शे चल रहे थे। अखबार बेचनेवाले लड़के अपने-अपने अखबारोके नाम और खबरें जोर-जोर चिल्लाकर बता रहे थे। निश्चय ही शहरका रूप बिगड़ रहा था और वहां तड़क-भड़क नहीं दिखाई देती थी; लेकिन लोग खुश और बेफिक्र दिखाई देते थे। किताबोंकी बहुत-सी दुकानें थीं। फल बहुतायतसे दिखाई पड़ते थे। अनार

मैंने बहुत ज्यादा देखे। सड़कपर बहुतसे धुनिये अपनी धुनकी लिये मेरे पाससे गुजरे। शायद दिनका काम खत्म करके जा रहे थे। एक जगह पर धुनिये काम कर रहे थे और एक औरत बैठी थी। एक बड़े-से चर्खेसे वह सूतको दोहरा कर रही थी। छोटे-छोटे मोटे-ताजे बच्चे खुश होकर इधर-उधर खेल रहे थे और छोटे-छोटे लड़के और लड़कियां हमारे पास होकर गुजरे। उन्हें कोई फिक्र नहीं थी और वे हंस रहे थे।

आमतौरसे फैले भद्देपनकी वजह शायद यह थी कि सब कपड़ोंके रंग एकसे थे। करीब-करीब सभी मर्द, औरतें और बच्चे एक गहरे-नीले या काले रंगकी कमीज या गाउन पहने थे। चीनी पोशाक मुझे अच्छी लगती है। अगर वह अच्छी तरहसे तैयार की जाये तो वह बड़ी खूबसूरत और शानदार लगती है और काम करनेके खयालसे भी वह अच्छी है। उस पोशाकमें खासकर लड़कों और लड़कियों दोनोंके लिए एक कमीज और पाजामा होते हैं। कमीज शरीरमें चुस्त होती है जो लंबी होती है या छोटी। बड़ी लड़कियां अक्सर एक लंबी गाउन पहनती हैं जो नीचे पैरतक पहुंचती है; लेकिन एक तरफको घुटनेतक कटी होती है। यह लम्बी गाउन बड़ी खूबसूरत होती है; लेकिन कामके खयालसे ज्यादा अच्छी नहीं होती।

चीनी कुली और मजदूर सभी धूपके कारण घास या बांसके बने टोप लगाते हैं। हैनोयमें मैंने देखा कि हरेक औरत और मर्द मजदूर टोपकी तरह एक मुड़ी टोकरी इस्तैमाल करता है। धूपसे बचनेकी यह सस्ती, अच्छी और हल्की टोपी है। कभी-कभी उसका किनारा इतना बड़ा होता है कि मेंहमें भी छातेकी तरह काम आता है। मेरे खयालसे हमारे हिंदुस्तानी किसानोंमें भी इसी तरह धूपके टोप बनाने और पहननेका शौक पैदा करना चाहिए। इससे उनको बड़ी मदद मिलेगी। मुझे यकीन है कि बांस या सरकंडेके बने धूपके टोप उड़ीसा और मलाबारमें पहने भी जाते हैं।

एक भोजमें मैं प्रो. तिन तुआन सेन, खानोंके एक्सपर्ट मि. के. टी. ह्वांग और चीनके डाक-विभागके डाइरेक्टर-जनरल, मि. सिन सुंगसे मिला। उनसे बहुत दिलचस्प बातें हुईं।

चुंगकिंगका प्रोग्राम जो मेरे लिए रखा गया है, मुझे दिखा दिया गया है।

वह बहुत बड़ा है; लेकिन है दिलचस्प। कल दोपहर मैं चुंगकिंग पहुंचूंगा और वहां शायद एक हफ्ते ठहरूं। उम्मीद है कि रेडियोपर भी बोलूं।

मै इस बातको नहीं भूल पाता कि कल सुबह मैं कलकत्तेमें था। उसके बादसे बर्मा, स्याम और हिंद-चीनसे गुजरा हूं और अब मैं चीनमें हूं। इन जल्दी-जल्दी होनेवाली तब्दीलियोंके मुआफिक होना बड़ा मुश्किल है। मौजूदा परिस्थितियोंसे हमारे दिमाग कितने पिछड़े हुए हैं। हम बीते दिनोंकी बात सोचे जाते हैं और आजकी जो नियामतें हैं उनका फायदा उठानेसे इन्कार कर देते हैं। तब दुनियामें इतनी लड़ाई और मुसीबत हो, तो अचरज क्या है?

४

२३ अगस्त, १६३६

कुनमिंगकी आबहवा बड़ी खुशगवार और ठंडी थी और हैनोयकी गर्मीसे वह तब्दीली बड़ी अच्छी जान पड़ी। रातको खूब सर्दी थी। उसकी वजह शायद यह थी कि पास ही एक झील थी। यह मुझे सुबह मालूम हुआ। वह झील मेरे कमरेकी खिड़कीके ठीक पीछेतक आती थी। हमारे होटलका नाम 'ग्रांड होटल ड्यू लैक' था।

बड़े तड़के सहनमेंसे एक तीखी आवाज आती हुई मैंने सुनी। वह आवाज फ्रेंच व्यवस्थापिकाकी थी, जो सफाई और धुलाई की देखभाल करती हुई तेजी और गुस्सेसे फ्रेंच भाषामें चीनी लड़कोंको डांट-फटकार रही थी। और आवाजें भी आ रही थीं जैसे अखबार बेचनेवाले लडकोंकी।

कलेवेके बाद हम झीलपर घूमने गये। जवान सैनिकोंकी पार्टियां गाती हुई जा रही थीं। इन सैनिकों या नव-सैनिकोंमेंसे कुछ तो लड़के ही मालूम होते थे। पंद्रह बरससे ज्यादाके नहीं। लेकिन विदेशीको चीनियोंकी उम्रका अंदाज लगाना मुश्किल है।

दस बजेसे बहुत पहले हम हवाई-अड्डेपर पहुंच गये। वहांपर कोलाहल-सा मचा हुआ था। प्रांतीय सरकारके कोई मेंबर भी उसी जहाजसे सफर कर रहे थे और कर्मचारियोंको विदाई देनेवालोंकी भीड़ इकट्ठी थी। यूरेशिया कारपोरेशनके जहाजमें हम सवा दस बजे रवाना हुए। जहाज भरा हुआ था और उसमें

जगह कम ही थी। सब पर्दे डाल दिये गये थे। कुछ मिनट के बाद हमें बाहर देखनेकी इजाजत मिली। जाहिरा तौरपर वह तो हवाई-अड्डा ही था और उसमें जो कुछ था वह जनताके देखनेके लिए नही था।

उड़नेके दरमियान ही बेतारसे यह खबर हमें मिली कि केंद्रीय क्योमिंतांगके प्रधान मंत्री, डाक्टर चू चिआ ह्वा दूसरो बहुत-सी संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके, जिनमें चुगंकिग के मेयर भी शामिल है, नेताकी हैसियतसे हवाई-अड्डेसे आपका अभिनंदन और स्वागत करते है।

चुंगकिंग

चुगकिंग पहुंचनेमे हमें तीन घंटेसे कुछ ज्यादा लगे। रास्ते भर पहाड़-ही-पहाड़ थे और जब हम चुंगकिंगके पास पहुंचे तो पहाड़ों और चट्टानी किनारोंके बीच यांग्त्सी नदी चक्कर लगाती हुई दिखाई दी। धरतीकी सतह जरा भी दिखाई नहीं देती थी। मुझे अचरज हुआ कि उस ऊंचे-नीचे मुल्कमें हवाई-अड्डा किस तरह बनाया गया होगा। इसका जवाब बड़ा दिलचस्प था और मेरे लिए तो वह अनोखा। जहाज नदीके बीचों-बीच सूखी जमीन पर उतरा। बहुत-से बड़े-बड़े लोग वहां जमा हुए थे। फौजके कुछ बड़े अफसर और डाक्टर चू जिन्होंने बेतारकी खबर भेजी थी, उनके प्रमुख थे। ज्योंही मैं जहाजसे उतरा 'वंदेमातरम्'की परिचित और मधुर ध्वनिने मेरा अभिनंदन किया। अचरजसे जब मैंने ऊपर देखा तो यूनिफार्ममें एक हिंदुस्तानीको पाया। वह हमारे कांग्रेस मैंडिकल यूनिटके धीरेश मुखर्जी थे।

स्वागतमें एक छोटा-सा भाषण हुआ और फूलोंके गुलदस्ते भेट किये गये। उसके बाद हम यूनिफार्ममें खड़ी लड़कियों और लड़कोंकी कतारके पास होकर गुजरे। उन्होंने एक आवाजसे झंडे हिलाकर हमारा अभिवादन किया। बादमें नदी पार करनेके लिए हम एक नावपर जा बैठे।

नदीके दूसरे किनारेपर बहुत-सी सीढ़ियां हमारे सामने दिखाई दीं और मुझसे एक पालकीमें (जिसे 'चो से' कहते थे) बैठनेके लिए कहा गया। सोचा गया था कि उसमें मुझे ऊपर ले जाया जाये। इस तरह ऊपर ले जाये जानेके विचारपर मुझे हंसी आई और फुर्तीके साथ मैंने सीढ़ियोंपर चढ़ना शुरू कर

दिया; लेकिन फौरन ही मुझे मालूम हुआ कि ऊपर चढ़ना आसान काम नहीं है। कोई ३१५ बड़ी सीढ़ियां थीं। मैं हांफने लगा और थक भी चला। औरोंपर मैंने अपनी ताकतका रौब गालिब तो किया; लेकिन मैंने महसूस किया कि ऐसे हिम्मतके खेल कर सकूं इतना जवान अब मैं नहीं रहा हूं। वहांसे हमने विदेशी ऑफिसके महमान-घर जानेके लिए, जहां मेरे ठहरनेका इंतजाम किया गया था, मोटर गाड़ी ली। वहां फिर हमें कोई सौ सीढ़ियां चढ़नी पड़ीं। चुंगकिंग पहाड़ों-पर फैला हुआ बसा है। कुछ पहाड़ोंके बीचमें है, कुछ ऊपर चोटीपर और सपाट रास्ता तो बहुत ही थोड़ा है।

बहुत-से बड़े अफसर और दूसरे लोग मुझसे मिलने आये और मैंने चुंगकिंगका एक हफ्तेका कार्यक्रम, जो मेरे लिए बनाया गया था, देखा। सबसे पहले उस शामको चार बजे एक मीटिंग थी, जिसमें १९३ संस्थाएं मेरा स्वागत करनेको थीं। इस मीटिंगमें हम गये। एक बुजुर्ग राजनेता श्री वू चि-हुईने अभिनंदन करते हुए कुछ शब्द कहे, जिनका मैंने जवाब दिया। उसके बाद सन यात सेनकी तस्वीरके सामने राष्ट्रीय नारे लगाये गये और वंदना की गई। बाजे चीनी राष्ट्र-गीत बजा रहे थे। यह सारा दृश्य बड़ा प्रभावशाली था।

इसी मीटिंगके दरमियान मुझे मालूम हुआ कि जहां कहीं प्रधान सेनापतिका नाम आता है, वहीं उनकी इज्जतके लिए सारे लोगोंको उठकर खड़ा होना पड़ता है। इस बार-बार खड़े होनेसे मीटिंगमें बाधा पड़ती है। इसलिए उसे रोकनेके लिए मुनासिब यह है कि उनको नेता या और किसी नामसे पुकार लिया जाया करे, नाम उनका न लिया जाये।

मीटिंगके बाद फौरन ही मुझे भोजमें पहुंच जाना था, जिसका इंतजाम बहुत-सी संस्थाओंकी तरफसे किया गया था। लेकिन तभी गुप्त रूपसे खबर मिली कि बमबारीकी उम्मीद की जा रही है। इसलिए खानेका मामला ही खत्म हो गया। जल्दीसे हम अपने घरकी तरफ लौटे। हमने देखा कि सड़क पहलेहीसे आदमियोंसे भरी हुई है और सब एक तरफको जा रहे हैं। सरकार-की तरफसे खतरेका सिगनल अभी नहीं दिया गया था; लेकिन खबर दे दी गई थी और मर्द-औरतें अपने बचावके लिए सुरंगोंकी तरफ तेजीसे जा रहे थे।

चुंगकिंगको एक सहूलियत है। दुश्मनोंके जहाजोंके आनेकी खबर जल्दी ही एक घंटेसे भी पहले मिल जाती है।

उसके बाद फौरन ही खतरेका भौंपू बजा और मुझसे कहा गया कि मैं किसी सुरंग में चला जाऊं। यह बात मैंने बहुत नापसंद की; लेकिन अपने मेजबानोंसे इन्कार भी तो नहीं कर सकता था। हम लोग मोटरमें बैठकर एक खास सुरंगमें गये जो विदेशी मंत्रीके घरसे मिली हुई थी। सड़कोंपर बड़ा जोशीला दृश्य दिखाई दे रहा था। लोग भागकर या तेजीसे चलकर सब-के-सब बमबारीसे बचानेवाली जुदा-जुदा सुरंगोंकी ओर जा रहे थे। कुछेकके साथ छोटे-मोटे बंडल या बक्स थे। माताएं अपने बच्चोंको छातीसे लगाये हुए थीं और छोटे-छोटे कुटुम्ब साथ-साथ जा रहे थे। लॉरियां आदमी भर-भरकर ले जा रहीं थीं। किसी तरहकी घबराहट वहां दिखाई नहीं देती थी। वह तो लोगोंका रोजमर्राका काम था और वे उसके आदी हो गये थे।

हम विदेश-मंत्रीकी सुरंगमें पहुंचे। देखा कि उनके दोस्त जमा होते जा रहे थे। ज्योंही दूसरी मर्तबा खतरेका सिगनल दिया गया तो हम १५×१० की एक छोटी मगर ठंडी जगहके भीतर चले गये। उसमें लोहके दरवाजे लगे हुए थे। हमें बताया गया कि हमारे ऊपर पच्चीस फीट मजबूत पथरी थी। यहांपर हम बैठ गये या खड़े रहे; क्योंकि भीड़ बढ़ती गई और कोई पचास आदमी अंदर आ गये थे। रोशनी बुझा दी गई। कभी-कभी बिजली की टार्चकी रोशनी की जाती थी।

वहांपर बहुत-से दिलचस्प आदमी थे। सरकारी अफसर, उनकी बीवियां, सेनापति, प्रोफेसर और अखबारनवीस सभी थे। मगर मेरा मन कहीं और न होता तो वक्त बड़ी अच्छी तरहसे कट जाता। वैसे वहां गर्मी भी थी और जगह भी तंग थी। चुंगकिंग में जितनी गर्मी मैं समझता था, उससे कहीं ज्यादा निकली। सुरंगके अंदर तो थोड़ी ठंडक थी, लेकिन वहां दम-सा घुटा जाता था। जब खास सुरंगों का यह हाल था तो मुझे अचरज था कि उन आम सुरंगों का क्या हाल होगा जिनमें हजारों लोगोंकी भीड़-की-भीड़ भरी होगी?

बाहरसे आनेवाली आवाजको मैं गौरसे सुनता रहा। उससे मैं कुछ समझ

न सका। लेकिन लोगोंके आदी कानोंने पहचान लिया कि बम गिरनेकी आवाज है; यह पीछा करनेवाले चीनी जहाजोंकी भनभनाहट है और यह दुश्मनोंके बम बरसानेवाले जहाजोंका शब्द है।

हम वहां इंतजारमें बैठे रहे। कभी-कभी बाहर झांक लेते थे। बाहर चांदनी फैली हुई थी। कितनी शांत! कितनी शीतल!! और अष्टमीका चांद चैनसे चमक रहा था। हत्याकांड और जोरकी बरबादी हो रही थी। कुछ कारणोंसे बमबारीको रोकनेवाली तोपें नहीं चलाई जा रही थीं और सर्चलाइटोंमें भी रोशनी नहीं थी। उस सुरंगके हमारे पड़ोसी सोचते थे कि विरोधी जहाजोंमें घमासान लड़ाई चल रही है।

वक्त काटनेके लिए हमने अंतर्राष्ट्रीय हालतकी हालकी पेचीदगी, रूस और जर्मनीकी प्रस्तावित अनाक्रमण संधि व इंग्लैंड, फ्रांस और जापानपर उसका असर इन सबपर चर्चाकी। इस संधिसे बहुतसे चीनी खुश थे, क्योंकि इसे वह जापानके अकेला रह जानेकी निशानी समझते थे।

उस सुरंगके अंधेरेमें हम दो घंटेतक बैठे रहे। सब एकदम खामोश और एकत्रित बैठे थे और मुझे बताया गया कि हवाई हमला अमूमन तीन-चार घंटेतक चलता है। तब्दीलीके खयालसे यह तजरबा मुझे अच्छा नहीं लगा; लेकिन अपने मनमें यह साफ तौरसे जानता था कि लगातार घंटों योंही बंद पड़े रहनेकी बनिस्बत मैं चंद्रमा की ताजी और ठंडी रोशनीमें जानेका खतरा उठाना ज्यादा पसंद करूंगा। मुझे यह ज्यादा पसंद होगा कि आदमीसे चूहा बनकर बिलमें बैठ जानेकी बनिस्बत लड़ाईके मोर्चेपर जाऊं या ऊपर आसमानमें किसी पीछा करनेवाले जहाजमें चक्कर लगाऊं।

दो घंटे बीते और खबर मिली कि जापानी जहाज लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज आये थे जिनमेंसे अठारह पहले ही हैंकोकी तरफ जाते देखे गये थे। बाकी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहांपर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सब लोग जो इतनी आत्मीयतासे दो घंटेतक पास-पास बैठे थे, बिना किसी तकल्लुफ या दुआ-सलामके जुदा हो गये और अपने-अपने घरोंकी तरफ तेजीसे चले गये।

ज्यों-ज्यों आदमी अपनी छिपनेकी जगहोंसे बाहर आने लगे, सड़कें फिर

भरने लगीं। जिस चालसे लोग गये थे, उससे कहीं धीमे लौट रहे थे। लौटते हुए हमें लोगोंके बहुत-से गिरोह मिले। वे कुदाली और बेलचा लिये उन जगहोंकी तरफ जा रहे थे कि जहांपर बमबारीकी वजहसे नुक्सान पहुंचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने कामपर। चुंगकिंगमें फिर मामूली तौरसे कारोबार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे जिनका काम खत्म हो गया था और अपने मुर्दा और झुलसे शरीरसे और आधुनिक सभ्यताकी प्रगति और महानताका प्रदर्शन कर रहे थे।

हमें अबतक ठीक मालूम नहीं कि उस हमलेमें क्या हुआ? जाहिरा तौरपर खास शहर तो बच गया; लेकिन उसके सरहदोंपर, खासकर एक गांवपर जो छोटा-सा औद्योगिक केन्द्र था, बम-वर्षा हुई।

५

२४ अगस्त, १६३६

पिछली रातका हवाई हमला, जहांतक जापानियोंका ताल्लुक था, योंही गया। मालूम होता है कि चीनके पीछा करनेवाले जहाजोंने उन्हें शहरसे बाहर ही रोक दिया था और कुछ मामूली-सी लड़ाई हुई। सर्च-लाइटसे कुछ जापानी जहाज पहचान लिये गये। इसलिए जापानी जहाज शहरके बाहर खेतोंपर ही जल्दी-जल्दी बम डालकर चले गये। एक झोंपड़ी बरबाद हो गई और दो आदमियोंके मामूली चोट आई। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले जहाजोंमेंसे चलाई गई मशीनगनोंके गोले कई एक जापानी जहाजोंमें आकर लगे। जापानी जहाजोंका कितना नुक्सान हुआ, इसका तो पता नहीं। लेकिन ऐसा खयाल किया जाता है, या उम्मीद की जाती है, कि उन जहाजोंमेंसे कुछको लौटनेमें मजबूरन् जगह-जगह उतरना पड़ा होगा।

अगले कुछ दिनोंमें जबतक चांदनी रात रहेगी, शायद कुछ हवाई हमले और हों। भविष्यमें चांदनी रातका ताल्लुक और-और चीजोंके साथ हवाई हमलोंसे भी समझा जाना चाहिए।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सेनापतिने पिछली रातके हमलेमें मेरी हिफाजतके बारेमें अपनी चिंता प्रगट की थी। उन्होंने खबर दी कि मुझे

उनकी खास सुरंग में भेज दिया जाए, लेकिन खबर के आने से पहले ही मैं तो विदेशी मंत्रीके यहां चला गया था।

बहुतसे लोगों—मंत्रियों और सेनापतियों—ने मुझे सुजनतापूर्ण निमंत्रण दिया है कि जब कभी मौका आये, मैं उनकी सुरंग इस्तैमाल करूं। मेरा अंदाज है कि बमबारीके इस जमानेमें यह शिष्टाचार और मित्रभावकी हद है।

सुबहका वक्त मैंने मिलने-मिलानेमें बिताया। पहले मैं कोमिंतांगके प्रधान कार्यालयमें गया, जहांपर मुझे प्रधान-मंत्री डा० चूचिआ ह्वा मिले। कोमितांग का विधान और संगठन मुझे समझाने लगे। यह विधान तो बड़ा पेचीदा है और वह कैसे बना और किस तरह उसका संचालन होता है इस बारेमें मुझे बहुतही धुंधला खयाल रहा। फिर भी मैं इतना तो समझ गया कि कोमिंतांग कोई ज्यादा जनतंत्रीय संस्था नहीं है, चाहे वह कहलाती जनतंत्रीय ही है। उस दिन, बादमें मैंने कुछ मंत्रियोंसे शासनकी रूपरेखाको समझनेकी कोशिश की। वह तो और भी पेचीदा है और कोमिंतांग और सरकारके बीचका संबंध बड़ा अजीब है। शायद आपसी बातें उनके मजबूत संबंधको कायम किये हुए हैं। मैंने कुछ ऐसी किताबें और कागजात मांगे हैं, जिनसे सरकार और कोमिंतांगका ढांचा समझ सकूं।

उसके बाद मैं विदेशी-मंत्री डा० वेंगसे मिलने गया, जिनका बे-बुलाया मिहमान मैं पिछली रात सुरंगके भीतर रहा था। बहुत देरतक हम दिलचस्प बातें करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिटन के० तांगके साथ हुई जिनके सुपुर्द प्रकाशनका काम है। उनका और उनके कामका मुझपर अच्छा असर पड़ा।

नदी-किनारेके एक रेस्ट्रां (भोजनालय) में नाश्तेका इंतजाम बड़े पैमानेपर किया गया था और वह तकल्लुफाना भी था। वह शहरके कारपोरेशन, कोमिंतांग और नगर-रक्षक-सेनाके कमांडरकी तरफसे दिया गया था। ऐसे तकल्लुफाना जल्से—भले ही मेजबान लोग उनमें काफी घरेलूपन ला देते हों—बड़े परेशान करते हैं। नुमायशी तकरीरें हुईं जिनका जवाब मैंने गिने-चुने बेजान शब्दोंमें दिया और फिर उनका तरजुमा हुआ है। मेरे वहां पहुंचने और वहांसे चलनेपर फौजी बाजे बजने लगते हैं और सलामीका तो कोई ठिकाना ही नहीं। मुझे डर है कि मेरी बेतकल्लुफ आदतें इस सबसे मेल नहीं खा पातीं।

लेकिन सबसे बड़ी आफत तो खाना है, जो चलता ही रहता है; अंत जिसका दीखता ही नहीं। और टीक उसी वक्त जब मैं सोचता हूं कि चलो खतम हुआ, तभी मेजपर आधी दर्जन रकाबियां और आ धमकती हैं। चीनी खाना या उसकी कुछ चीजें मुझे पसंद हैं। उनमें कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझमें नहीं आता। मालूम होता है कि मजेदार रकाबियोंकी बहुत-सी किस्में हैं, जो एकके बाद एक चली आती हैं। खानेवाले थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें खाते हैं और तरह-तरहके उम्दा स्वादोंका आनंद लेते जाते हैं। खानेका तरीका मैं पसन्द नहीं करता। मेरा मतलब चॉप स्टिकोंसे नही है जिन्हें होशियारी और लियाकतके साथ इस्तैमाल करना होता है। काश कि मै उनको इस्तैमाल करनेमें कुशल होता! सारी रकाबियां बीचमें रख दी जाती हैं और हरेक मेहमान बीचमें खड़ी हुई रसभरी रकाबियोंमेंसे ही लजीज चीजें उठाता जाता है और लाजिमी तौरसे रसभरे कुछ टुकड़े मेजपोशपर गिरते जाते हैं।

तीसरे पहर मेरी एक बड़ी मजेदार मुलाकात मशहूर आठवी सेना (Eighth Route Army) के जनरल ये चियन-यिंगके साथ हुई। आना वोंग उनके साथ थीं, जो मेरी बोलीका तरजुमा करती जाती थीं। आना वोंग जर्मन (आर्य) है। पर शादी उनकी चीनमें हुई है और तन-मनसे वह चीन-निवासिनी हैं। जापानी बमोंसे वह बाल-बाल बच चुकी हैं।

जनरल येने आठवीं सेनाके बारेमें बातें कीं और बताया कि अपनी फौजी कार्रवाइयोंके अलावा और क्या-क्या काम वह कर रही है। अपने दृष्टिकोणसे उन्होंने चीनकी मौजूदा हालत भी समझाई।

उसके बाद मैं प्रधान मंत्री या ठीक-ठीक कहें तो एक्जीक्यूटिव युअनके अध्यक्ष डा० कुंगसे मिलने गया। वहांसे हम एक बड़ी चायपार्टीमें गये, जो मेरा स्वागत करनेके लिए खास-खास आदमियोंकी तरफसे दी जा रही थी। पार्टी बड़ी मजेदार रही और बहुत-से मंत्रियों, उपमंत्रियों, भूतपूर्व मंत्रियों और सेनापतियों तकसे मेरा मिलना हुआ। चीनी जलसेना-नायकने तो मुझे हैरतमें डाल दिया। मैंने चीनी जहाजी बेड़ेके बारेमें पूछा तो उन्होंने कहा कि फिलहाल तो जहाजी बेड़ेमें सिर्फ थोड़ी-सी तोपवाली नावें हैं। लेकिन कुछ भी हो जहाजी बेड़ेका बाजा तो था ही, जो उस पार्टीमें अच्छी तरहसे बजाया जा रहा था।

इस पार्टीमें मैं जिन लोगोंसे मिला उनमें सिंकिग्रांगसे आये हुए एक प्रतिनिधि भी थे। वह मेरे संबंधमें फारसीमें बोले। मुझे बड़ा अचरज हुआ! मेरे स्वागतमें उन्होंने जो कुछ कहा, उसके बस एक-दो शब्द मैं समझ सका और उस राजसी भाषामें बातचीत जारी रखनेकी अपनी अयोग्यतापर मुझे अफसोस हुआ।

बहुत-से विदेशी पत्रकार खास तौरसे अमरीकन और रूसी पत्रकार, वहां मौजूद थे।

चीनियोंके नाम तो एक आफत हैं, खासकर तब जब कि खासी तादादसे मेरा साबका पड़ता है। बहुतसे नाम तो करीब-करीब एकसे ही सुनाई दिये। मेरा अंदाज है कि इसी कठिनाईकी वजहसे चीनी लोगोंकी विजिटिंग कार्डोंसे मुहब्बत बढ़ी। ज्योंही आप किसी चीनीसे मिलेंगे, फौरन ही वह अपना कार्ड निकालकर पेश कर देगा। मेरे पास बीसियों ऐसे कार्ड अभीसे ही जमा हो गये हैं। हिंदुस्तानमें कार्डोंका आदी न होनेकी वजहसे मेरे पास अपने कार्ड ज्यादा नहीं हैं; पुराने जरूर मेरे पास पड़े हैं। लेकिन वे कबतक चलेंगे?

बहुत-से मंत्रियों और दूसरे लोगोंके साथ जिनमें, जनरल चैन चैंग भी शामिल थे, भोज हुआ। हम दोनोंकी एक जबान न होते हुए भी जनरल चैन चैंगको मैं बहुत पसंद करता हूं। वह बेतकल्लुफाना भोज था और हमारी बातचीतें बड़ी मजेदार हुईं। चीनी मुझे बहुत अद्भुत और बढ़े-चढ़े लोग जान पड़े। उनसे बात करनेमें मजा आता है, बशर्ते कि जबानकी मुश्किल बीचमें न आ जाये।

रातको कोई हवाई हमला नहीं हुआ।

: ४ :

स्पेनके प्रजातंत्रको श्रद्धांजलि

आज जबकि दुनियामें काली करतूतें हो रही हैं, संस्कृति तथा सभ्यता नष्ट होती जा रही है और हर जगह हिंसाका बेरोक-टोक बोलबाला है, तब स्पेन

और चीनके प्रजातंत्र राष्ट्रोंने अपने ऊपर आये हुए विकट संकटोंका भी बड़ी शानके साथ मुकाबला करके उन लोगोंके रास्तेमें रोशनी कर दी है, जो अंधेरी रातमें इधर-उधर भटक रहे थे पर कोई रास्ता नही दीख पड़ता था। जो हैरतअंगेज भयानक कांड हुए हैं, उनपर हमें दुख है, लेकिन उस मनुष्यतापूर्ण दिलेरी और साहसपर हमें गर्व है और उसकी तारीफ करते हैं, जो आफतोंमें भी मुस्कराती रही है और अधिक ताकतवर हो गई है और इन्सानकी उस अजेय आत्माके प्रति भी हम आदर प्रकट करते है जो किसी भी बड़ी-से-बड़ी ताकतके आगे सिर नहीं झुकाती, चाहे नतीजा कुछ भी क्यों न हो।

स्पेनवासियोंके भाग्यको हम बड़ी चिताके साथ देख रहे हैं, लेकिन हम यह जानते हैं कि वे पददलित कभी नहीं किये जा सकते, कारण कि स्वयं वह उद्देश्य ही अमिट है, जिसके पीछे इतना अजेय साहस और बलिदान हो रहा है। मैड्रिड, वेलेंशिया और बार्सीलोना हमेशा जिंदा रहेंगे और उनकी राखसे के उठ-उठकर स्पेनके प्रजातंत्रवादी अपने स्वतंत्र स्पेनका निर्माण कर अपने अरमान पूरे करेंगे।

हम लोग जो अपनी आजादीके लिए कशमकश कर रहे हैं, स्पेनीय प्रजातंत्रके इस ऐतिहासिक युद्धसे बहुत प्रभावित हुए है क्योंकि वहांपर संसारभरकी आजादी खतरेमें है। हमारी लड़ाईके सरहद्दी मोर्चे सिर्फ हमारे देशहीमें नहीं बल्कि चीन और स्पेनमें भी हैं।

इसी बीच लाखों शरणार्थी लोग प्रजातंत्र-स्पेनमें भूखों मर रहे हैं और औरतें और बच्चे ऊपरसे दुश्मनकी बमबारी ही नहीं सहते बल्कि खानेके बगैर मौतसे भी लड़ते हैं। इस भयंकर विपत्तिकी हिदुस्तान उपेक्षा नहीं कर सकता और हमें चाहिए कि हम उनके लिए भोजन और सहायता पहुंचानेका भरसक प्रयत्न करें।

मैं उन लोगोंको, जिन्होंने यह आयोजन किया है और स्पेनवासियोंके जीवन-मरणके संकटके समय उनकी मदद पहुंचानेके लिए जो लोग इसमें हिस्सा बंटा रहे हैं, उन्हें मुबारकबाद देता हूं। आजादीके उन दीवानोंके लिए हम कर तो कुछ भी नहीं सकते, पर कम-से-कम उनके गौरवपूर्ण साहस और जिस उद्देश्यके लिए उन्होंने असीम बलिदान किया है, उसके प्रति यह श्रद्धांजलि तो भेंट कर ही सकते हैं।

स्पेन-प्रजातंत्रकी जय हो!

२४ जनवरी, १९३९

: ५ :

स्पेनमें

पिछले साल स्पेनमें लड़ाई चल रही थी और मै वहां गया था, पर मैंने ये लेख अब लिखे है और कोशिश की है कि जो कुछ असर मुझपर पड़ा, उसे लिख डालूं। बदकिस्मतीसे मैंने अपनी आदतके मुताबिक घटनाओंकी कोई डायरी नहीं रखी, न कोई नोट ही लिये थे और वक्त गुजर जानेसे वे असर गायब हो गये और याददाश्त तो बड़ी अजीब-अजीब चालें खेलती है। फिर भी चूंकि वे काफी साफ थे, इसलिए मेरे दिमागमें बहुत कुछ रहा और रहेगा, भले ही नये-नये खतरे और नई-नई आफतें क्यों न आती जायें। जैसा मैंने चाहा था मैं इन्हें पूरी नहीं लिख सका, इसलिए इन लेखोंको अपूर्ण वर्णन ही मानना चाहिए।

१

एक साल पहले और ठीक-ठीक कहूं तो एक साल और एक हफ्ता पहले १४ जून १९३८को हम जेनोवामें उतरे थे। हमारा निश्चय स्पेन—प्रजातंत्र स्पेन जानेका था, इसलिए हम फौरन मार्सेलीज जानेके लिए हवाई जहाजपर सवार हो गये। हमारा हवाई जहाज रिवीयराके चक्करदार और सुंदर समुद्र-तटके ऊपर होकर उड़ता चला। वहां पासपोर्ट लेना-लिवाना, पुलिसके कायदे-कानून मानना वगैरा दस्तूर अदा किये गये। बिना आराम किये और खाना खाये हम वहांके कई दफ्तरोंमें गये और एकसे दूसरेमें भटकते रहे। स्पेनके लिए हमारे पास एक खास पास था और स्पेन सरकारका वह निमंत्रणपत्र भी था, जिसमें हमसे वहां आनेकी और उनके प्रतिनिधियोंको हमारे लिए तमाम सुविधा करने और सहायता देनेकी सूचना दी गई थी।

इस बलपर हमने सोचा कि अब हमारे रास्तेमें कोई अड़चन नहीं आयेगी। लेकिन वह हमारी भूल थी। घंटों हम मार्सेलीजके एक कोनेसे दूसरे कोनेमें, एक दफ्तरसे दूसरे दफ्तरमें और वहांसे भी दूसरे दफ्तरमें भेजे जानेके लिए फिर तीसरे दफ्तरमें और फिर चौथे दफ्तरमें—भागे-भागे फिरे। हमें पता चला कि कुछ और फोटो जरूरी हैं। इसलिए हमने एक फोटोग्राफर खोज निकाला,

जिसने अपनी ओटोमेटिक मशीनसे मिनटोंमें फोटो तैयार करके दे दिये ।

एक कार्यालयका काम संभालनेवाली महिलाने बताया कि स्पेनके लिए मेरे पास जो पास है व ठीक नहीं है। वह लिखा हुआ था अंग्रेजीमें और एक फ्रेंच-कार्यालयको अंग्रेजी भाषापर ध्यान देनेकी भला क्या जरूरत पड़ी थी ? मैंने कहा कि मैं उसके कुछ शब्दोंका अनुवाद कर दूं; लेकिन वह तो अपनी बातपर अड़ी थी। इसलिए हम ब्रिटिश कौंसलेटमें गये और वहांसे दूसरा पास प्राप्त किया। अबकी बार वह फ्रेंचमें था। लौटकर उसी हठीली महिलाके पास आये। लेकिन उसने कहा कि फीस तो आपने दी ही नहीं है। हम फीस देनेको तैयार हुए, तो वह हमारी नादानीपर घृणाके भावसे मुस्कराई। फीस तो पुलिस दफ्तरमें जमा होनी चाहिए थी कि जो वहांसे कुछ मीलकी दूरीपर था और उसकी रसीद पासपोर्टके कार्यालयमें लाई जानी चाहिए थी।

अधिकारीकी आज्ञाका हमें पालन करना पड़ा। पुलिस-दफ्तर हम गयें, फीस जमा की और रसीद लेकर विजयकी खुशीके साथ लौटे। महिलाने देखकर कहा—यह क्या ? जरूरी फीसमेंसे आपने तो आधी ही जमा की है ! यह काफी नहीं है। साफ था कि या तो हमने उस महिलाकी बात गलत समझी, या हममेंसे किसीने भूल की थी। अब तो इसके सिवा और उपाय ही न था कि थके-मांदे पुलिस-दफ्तर फिर वापस जाते। जल्दी-जल्दी हमें जाना पड़ा क्योंकि कार्यालयके बंद होनेका समय हो रहा था।

आखिरकार पूरी-पूरी फीस जमा करके ठीक रसीद ली गई और कार्यालयकी वह महिला हमारी परेशानीपर रहम खाकर हमपर मुस्कराई और अधिकार-पत्र हमें दे दिया। अपने कार्यालयको उसने हमारी वजहसे खोले रखा था, हालांकि शाम हो गई थी और दूसरे दफ्तर बंद हो चुके थे।

अब स्पेनिश कौंसलेटका सवाल रहा, क्योंकि उसकी भी इजाजत पाना जरूरी था। हम वहां गये। डर था कि कहीं वह बंद न हो गया हो। और बंद तो वह हो ही गया था; लेकिन हमारे पास जो कागज थे, उन्होंने गजब कर दिखाया। बंद दरवाजे खोले गये और हमारा बड़ा हार्दिक स्वागत किया गया।

आखिरकार हमारी मनचाही चीज हमें मिली। रात होती जा रही थी और हम भी थके हुए थे। भूख हमें लग रही थी और आंखोंमें नींद घुल रही थी।

खानेमें स्पेनिश कौंसलने हमारा साथ दिया; लेकिन हम उनका साथ क्या दे सकते थे ? हम तो बस बिस्तर और नींदकी ही बात सोच रहे थे ।

इस तरह हमारा यूरोपका पहला दिन बीता ! अगले दिन तड़के साढ़े चार बजे हम बार्सीलोनाका जहाज पकड़नेके लिए हवाई अड्डेकी तरफ भागे । हमारे नीचे गहरा नीला भूमध्यसागर था और स्पेनके समुद्री किनारेकी रेखा दूरपर फैली हुई थी । शीघ्र ही हम स्पेनिश भूमिपर उड़ने लगे और लड़ाई और बरबादीके चिह्न खोजने लगे । लेकिन उतनी ऊंचाईसे हमें कोई निशान दिखाई नहीं दिये । देशमें शांति-सी फैली हुई दीखती थी ।

अपने मंजिलेमकसूद, बार्सीलोनाके हवाई स्टेशनपर हम पहुंचे जो शहरसे कुछ मील दूर था । कुछ गलती हो गई दीखती थी । वहां हमसे मिलनेके लिए कोई नही था और कुछ समयतक हम समझ भी न पाये कि हमें क्या करना चाहिए ? कुछ देर बाट जोहनेके बाद हम मोटर-बससे शहर गये । हरे-भरे लहलहाते खेतोंकें बीचसे हम गुजरे और कहीं-कहीं सड़कके किनारे हमें घरोंके खंडहर भी मिले । जाहिर था कि उनपर हवाई जहाजोंने बम बरसाये होंगे । लेकिन दृश्य शांत था और मर्द और औरतें खेतोंमें काम कर रही थीं । दूरपर बार्सीलोना दिखाई दिया । वह समुद्र-तटके किनारे-किनारे फैला हुआ था और ठीक भीतरतक चला गया था । उस भूप्रदेशमें जहां-तहां खड़ी हुई छोटी-छोटी पहाड़ियां उससे मिली हुई थीं । धूप लेता हुआ बार्सीलोना बड़ा गौरवशाली दिखाई दिया । मालूम होता था कि वर्षोंके तजरबोंवाला और पुराना वह है और लंबा इतिहास उसके पीछे है; लेकिन फिर भी ऐसा लगता था जैसे ताकत और जान उसमें है और जो कोई परदेशी उसे देखे उसका अपनी मधुर मुस्कराहटसे वह अपने संकट और दुखके वक्त भी हार्दिक स्वागत करता है ।

बार्सीलोनाकी चौड़ी और सायादार सड़कोंपर हम पहुचे । सड़कें लोगोंसे भरी थीं । लोग हंस रहे थे, खुश थे और अपने काम या कारोबार पर तेजीसे जा रहे थे । मुसाफिरोंसे खचाखच भरी ट्रामें इधर-से-उधर दौड़ रही थीं । दुकानें खुली हुई थीं । थियेटरों, सिनेमा और नाचघरोंमें चहल-पहल दिखाई दे रही थी । अचंभित होकर हमने इस बड़े शहरकी जिंदगीके इस चलते-फिरते नजारेको देखा । क्या यह उस युद्धकालीन सरकारकी राजधानी थी जो विदेशी

हमले और घरेलू झगड़ोंके खिलाफ जीवनकी सांसें ले रही है ? उसकी लड़ाईका मोर्चा कुछ ही मीलकी दूरीपर है और जिंदगी व मौतके किनारे ही चक्कर लगा रही है ? क्या यह वही शहर है जिसपर रोज हवाई जहाजोंसे बम बरसते हैं ? और जो लगातार आसमानसे मौतका सामना करता आ रहा है ?

लड़ाईके निशान काफी साफ दिखाई देते थे। बड़ी-बड़ी इमारतें खंडहर हुई पड़ी थीं और उनके जले हुए हिस्से दिखाई देते थे। सड़कें और पक्के फर्श बम गिरनेसे टूट गये थे और उनमें गहरे गड्ढे पड़ गये थे। दुकानें खुली तो थीं; लेकिन उनमें सामान बहुत कम था और शान-शौकतकी चीजें नजर नहीं आती थीं। आदमियों और औरतोंके कपड़े पुराने थे और ज्यादातर फटे थे। हर जगह सिपाही वर्दी में दिखाई देते थे। हालांकि स्पेनवासियोंका जैसा स्वभाव है, वे लोग हंसते थे, मगर चेहरोंसे उनके गंभीरता और दुख टपकता था। वहांके वातावरणमें शोक था। स्पेनकी औरतें अपनी ओढ़नीमें शानदार और आकर्षक लगती थीं जैसी कि वे हमेशा लगा करती हैं। मुंहपर मुस्कराहट थी, पर उनकी काली आंखोंसे चिंता टपकती थी। बिना टोपके वे जाती थीं; क्योंकि टोप अनावश्यक विलासिताकी चीज थी और अपनी नई आजादीके चिह्नस्वरूप उन्होंने टोप लगाना छोड़ दिया था। लेकिन चाहे वह खुश थीं या दुखी, उनकी निगाह में, चाल-ढालमें और निश्चयमें अभिमान था।

हम अपने होटल—मैजेस्टिकमें पहुंचे और फौरन ही विदेशी ऑफिसको फोन किया। थोड़ी देर बाद प्रचार और प्रकाशक मंत्रिमंडलकी एक जवान महिला बहुत-कुछ माफ़ी मांगती हुई हमसे मिलने आई। वह बड़ी होशियार और सुंदर थी। उसने हमारा सारा जिम्मा लिया और हमारे ठहरने और कार्यक्रमकी सारी व्यवस्था की। बार्सीलोनाके हमारे थोड़े वक्तके ठहरनेमें वह हमारी मार्गप्रदर्शिका रही, दोस्त रही और हमारे वहां आनेसे संबंध रखनेवाली हरेक बातपर वह ध्यान देती रही।

इस खूबसूरत शहरमें हमने पांच दिन बिताये और पांचों रात हवाई जहाजोंसे बमबारी हुई। इन पांच दिनों में नई-नई घटनाएं घटीं और तरह-तरहके अनुभव हुए। जिनकी याद हमेशा बनी रहेगी।

२१ जून, १९३८

२

क्या सिर्फ एक ही साल पहले मैं स्पेनमें था ? तब से जमाना बीत गया है। धक्के लगे हैं और मुसीबतें आई हैं। आते-जाते सूरज और चांदको देख-देखकर दिन गिन-गिनकर तो हमारी जिंदगीके साथ बढ़ती जाती हुई अपनी भावनाओं और अनुभवोंका सच्चा अंदाज लगाया नहीं जा सकता। स्पेनमें जिन बहादुर, गौरवपूर्ण जिंदगीसे भरे-पूरे,राष्ट्रकी आशाके प्रतीक मर्द और औरतोंसे मैं मिला उनकी शक्लें आज खयाली शक्लें हैं। बहुतसे मर गये और बहुतसे शरणार्थीकी तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। लेकिन मन उनकी यादसे भरा है और अपने चंद दिनों स्पेनमें ठहरनेमें जो खयालात मैंने उनके बारेमें बनाये, वे भी अबतक बने हैं। कभी-कभी तो ये स्मृतियां इतनी स्पष्ट होती हैं कि मुझे दीखता है कि जैसे मैं कल ही वहां था और कभी लगता था कि जैसे हजार बरस बीत गये हैं और मैं बूढ़ा, बहुत बूढ़ा हो गया हूं। वक्त हमारा बड़ा अजीब और धोखेमें डालनेवाला साथी है ! लेकिन याददाश्तकी चालें उससे भी अजीब हैं। पुरानी भूली बातें बराबर याद आती हैं; अनजानी दुनियाकी झलक आती जाती है और मानव-जाति और स्वयं मनुष्यताके शुरूके दिनोंकी धुंधली छाप पड़ती है हम आदमी बहुत पुराने हैं और 'हव्वा' की बुलबुलोंका तराना अब भी हमारे कानोंमें गूंज रहा है और जन्नतके सपनोंसे हम परेशान रहते हैं और युगोंकी दुख-भरी कहानियां हमें दुखी बनाती हैं।

बार्सीलोनामें व उसके आसपास हमें बहुत-से लोग मिले, और बहुतों की साफ-साफ और जीती-जागती तस्वीरें अबतक मन पर बनी हैं। फिर भी हरेक आदमीका महत्त्व तो उस बड़े दृश्यमें गायब हो गया, जो हमने वहां देखा। विद्रोहके शुरूके दिनोंमें, जैसा कि हमने पढ़ा और हमें बताया गया, सरकार और जनता बिलकुल तैयार नहीं थी। हर जगह बदअमनी फैली थी। दफ्तर बंद थे। फौज, जैसी कुछ वह थी, बिखर गई थी। फिर भी इस बदअमनीके पीछे लोगों में मुकाबला करनेकी भारी ख्वाहिश थी। बिना हथियार लिये या फिर पूरी तरह हथियारबंद होकर ये दुश्मनपर झपटे और जनरल फ्रेंकोके आसानी से विजय होनेके सपनेको उन्होंने तोड़ दिया और कई जगह उसकी फौजोंको रोक दिया। बड़ी कोशिशके बाद मैड्रिड बचा लिया गया और उसकी बुर्जोंपर

दो बरसतक जनतंत्रका झंडा शानके साथ उड़ता रहा, हालांकि उसकी सरहदोंपर दुश्मनने काबू कर लिया था और शहरपर करीब-करीब रोज ही बमबारी की जाती थी।

जबतक अच्छी फौज और गोला-बारूद न हो, तबतक रोक-थाम थोड़ी देरको ही हो सकती है। आदमियोंके साहस और संतोषकी कीमत बहुत होती है, लेकिन आजकलकी लड़ाइयोंमें आदमी योग्य फौजों और उनकी मशीनगनों टेंकों और बमबारीकी चालोंका मुकाबिला नहीं कर सकते। इसलिए फ्रेंकोंकी फौजें आगे बढ़ती गई। ज्यादातर उनमें मूरकी, इटली और जर्मनीकी टुकड़ियां थीं और गोला-बारूदकी उनकी जरूरत इटली और जर्मनी पूरी कर रहे थे। दो होशियार जर्मन और इटैलियन जनरल स्टाफ उन फौजोंकी बड़ी हलचलोंको चला रहे थे। स्पेनकी प्रजातंत्र सरकारके सामने एक समस्या यह थी कि वह खास तौरसे मुश्किल वक्तमें एक नई फौज तैयार करे, जबकि यह मुसीबतोंमें लड़ रही थी और इंग्लैंड और फ्रांसकी हस्तक्षेप न करनेकी नीतिसे सताई जा रही थी। सरकारी दफ्तरोंकी उसे नये सिरेसे व्यवस्था करनी पड़ी और फौज और आदमियोंके लिए खाने और कपड़ेका भी बंदोबस्त करना पड़ा।

अमनके वक्त भी यह एक बड़ी समस्या थी और जिंदगी और मौतके सवालके साथ वह आदमीकी शक्तिसे करीब-करीब बाहर दिखाई देती थी। पर प्रजातंत्रके नेताओंने उस समस्याको सुलझानेकी कोशिश की और कठिनाइयों और नाउम्मीदोंके बावजूद वे उसपर जमे ही रहे। अंदरूनी झगड़ोंने उन्हें कमजोर कर दिया और उनकी प्रगतिको रोक दिया। जब मैं स्पेन गया तो मैंने दो साल की कोशिशका नतीजा देखा और वह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक दृश्य था। पुरानी बदअमनी और हंसीके लायक हालत अब न रही थी और उसकी जगह चतुर सरकार व्यवस्थित तरीकेसे काम कर रही थी और एक शानदार फौज तैयार हो गई थी।

मैं बहुतसे सरकारी दफ्तरोंमें गया और मंत्रियों और महकमोंके हाकिमोंसे मिला। बदकिस्मतीसे मैं प्रधान-मंत्री नैग्रिनसे न मिल सका, क्योंकि जब मैं बार्सीलोनामें था, वह मैड्रिड गये हुए थे। इन दफ्तरोंमें व्यवस्थित रूपसे काम चल रहा था जो कि कार्य-क्षमताका चिह्न है। कहीं भी सुस्ती या आलस दिखाई

नहीं देता था और न काममें दौड़-धूप होती जान पड़ती थी। लोग अपना-अपना काम चुपचाप खामोशी व जोश-खरोशके साथ कर रहे थे। अक्सर नये काम उन्हें करने पड़ते थे और उनका ढंग पुराने सिविल नौकरोंकी बनिस्बत जो मशीनके ही पुर्जे बन गये थे, जुदा था और ज्यादा बेजाब्ता था। लेकिन बदलती परिस्थितियोंमें तो जरूरत कामके अनुकूल अपनेको बनानेकी थी। सिविल नौकरोंमें यह बात मुश्किल होती है, लेकिन वे लोग कामके साथ अपनेको ठीक बिठा सकते थे और उनके तजरबेमें जो-कुछ कमी थी वह उनके कामकी तत्परता और काम कर डालनेके संकल्पसे पूरी हो जाती थी। चंद रोजतक ही उनके हाल देखनेके बाद और उनके बारेमें कुछ कहना मेरे लिए बेजा होगा। लेकिन मेरी राय यह बनी कि वहां आश्चर्यजनक कार्य-क्षमता थी और सहयोग था। झगड़े भी रहे होंगे और असलमें झगड़े और त्रुटियां थीं भी, लेकिन सतहपर वे दिखाई नही देती थीं।

खानेकी समस्या गंभीर थी। फौज थी जिसका पेट भरना था, और थी बड़े शहरोंकी आबादी और फ्रैंकोके प्रदेशके बहुतसे शरणार्थी। दूध और मक्खन कहीं देखनेको भी नही मिलता था। मांस, तरकारी और रोटी सबकी कमी थी। ऐसा हमने उस खानेसे जाना जो सरकारके मेहमान होते हुए हमें बार्सीलोनाके अच्छे-से-अच्छे होटलमें मिला। नाश्तेमें हमें एक प्याला काली कॉफी मिली और आधा रोटीका टुकड़ा। बस, और कुछ नहीं था। दोपहरके भोजनमें और नाश्तेमें भी मामूली चीजें व एक हरा शाक था। आलूतक नहीं मिलते थे। खास आदमियोंके लिए जब यह बात थी तो दूसरोंका तो कहना ही क्या? हमारे सम्मानमें स्पेनकी पार्लमेंटके प्रधान या स्पीकरने भोज दिया। जल-पानमें मुख्यतः दो तरहकी मिस्सी रोटियां थीं।

भले ही खाना कम था और कम होता जा रहा था, फिर भी फौजको भूखा नहीं रखा जा सकता था। उसकी मांग सबसे पहले पूरी की जाती थी। उसके बाद बच्चे थे, जिन्हें जितना दूध वहां मिल सकता था, दिया जाता था। शरणार्थियोंमें बहुत-से बच्चे थे और सरकारने उनके कुनबे बसा दिये थे। इनमेंसे एक कुनबेमें हम गये। एक खूबसूरत गांवमें वह बसा हुआ था। उसीसे मिला हुआ एक बाग था। वहां हमने एक बगीचेके पास खुशनुमा जगहमें बच्चोंको काम करते और देखते हुए पाया। उनमें बहुत-से तो मुल्कके दूर-दूरके हिस्सोंके अनाथ

थे। उनके घर गिर गये थे और वे बरबाद हो गये थे। उस सबका डर उन बच्चोंके मनमें बना था। लेकिन उनकी संरक्षिका अपना कर्तव्य अच्छी तरहसे समझती थी और बड़ी नरमी और मुहब्बतके साथ उस कुनबेमें मेल-जोलका जीवन बितानेके लिए वह उन्हें तैयार करती थी। बच्चोंको हर चीजके पीछे खूबसूरती दिखानेके लिए जरा-जरा-सी बातपर ध्यान दिया जाता था। कमरे सीधे-सादे थे, पर ऐसे तरीकेसे सजाये गये थे कि सजावटको देखकर खुशी होती थी और बिस्तरकी चादर बच्चोंको खुश करनेके लिए होशियारीके साथ बनाई गई थी।

बच्चोंके कुनबों या घरके अलावा जहां बच्चे स्कूल-बोर्डिंगकी तरह रहते थे, शहरके कुछ हिस्सोंमें बच्चोंके लिए भोजनालय भी थे। जो भी बच्चा वहां आ जाता, उसीको खाना मिलता। हमें बताया गया कि ऐसे भोजनालय आमतौरसे म्यूनिसिपैलिटीकी मददसे किसी संस्था या फौजी सिपाहियों द्वारा खोले गये हैं। इन या ऐसे ही संपर्कोंसे नई फौज जनताके बहुत समीप आ जाती थी। खुशकिस्मतीसे ऐसे ही एक बच्चोंके भोजनालयके उद्‌घाटनके वक्त हम मौजूद थे। लिस्टरकी फौजके एक हिस्सेने उसे बनवाया था और उस हिस्सेके प्रतिनिधि अफसर और आदमी मय अपने बैंडके उस समारोहमें हिस्सा लेनेके लिए आये थे। सिपाही चाहते थे कि लोग उन्हें खाना दें और बदलेमें वे उनके बच्चोंको सिखानेमें मदद देना चाहते थे। इस भोजनालयमें तीन हजार बच्चोंको रोजाना खाना खिलाया जा सकता था।

यह भोजनालय देखनेमें बड़ा खूबसूरत था। दीवारोंपर बड़ी अच्छी सजावट हो रही थी। नीली पोशाकमें और सफेद टोपी और लिबास सफाईके साथ पहने लड़कियोंकी कतारें आनेवाले मेहमानों और बच्चोंका स्वागत कर रही थीं। ये लड़कियां अपनी मर्जीसे काम करने आई थीं और उनका काम हॉलमें बच्चोंको खाना परोसना था। हॉलके भीतर और बाहर जोशसे भरे बच्चोंकी भीड़ खड़ी थी। उनमें तेजी थी, उम्मीद थी।

इस समारोहसे पहली रातको बार्सीलोनापर तीन मर्तबा हवाई हमले हुए थे और कुछ बम बच्चोंके उस भोजनालयके नजदीक ही गिरे थे, जिसका उद्‌घाटन हम देख रहे थे।

३० जून, १९३९

३

बार्सीलोनासे दूसरे दिन बड़े तड़के हम मोर्चेकी तरफ चल दिये और शामको बड़ी देरतक वहां रहे। दो घंटेका रास्ता था और इजाजतका परवाना और एक स्पेनिश अफसर साथ होनेकी वजहसे हमें उन बहुत-से टिकट चैक किये जाने-वाले ठिकानोंमें कोई कठिनाई नहीं हुई, जिनसे आगे मामूली आवागमन नही हो सकता था। जिन-जिन गांवोंमें होकर हम गुजरे, उनमें लड़ाईके चिह्न साफ दिखाई देते थे। लेकिन इन चिह्नोंसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज उन गांवोंका वायुमंडल था। चारों ओर ऐसी खामोशी छाई थी कि जैसी लड़ाईके मैदानमें हुआ करती है। जीवन वहां अब भी है, लेकिन रोजमर्राकी तरह नहीं चल रहा था। लोग देखते थे कि समय-असमयपर फूट पड़नेवाला नारकीय शब्द कब गरज पड़े।

हम लोग लिस्टरके मुकामपर गये। लिस्टर और मॉडेस्टोके बारेमें हम बहुत-कुछ सुन चुके थे। वे दोनों फौजी अफसर मामूली जगहोंसे तेजीसे ऊपर उठे और अब प्रजातंत्रके सबसे अधिक विश्वासपात्र सेनापतियोंमेंसे थे। मैड्रिडके बहादुर रक्षक जनरल मिआजाके बाद ही उनकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता दिखाई देती थी। मिआजा पुराने गार्डका पेशेवर फौजी अफसर था और उस समयमें जबकि फौजके अधिकांश भाग ने बगावत की थी, उसने प्रजातंत्रका साथ नहीं छोड़ा था। लेकिन मॉडेस्टो और लिस्टर तो उस समयके सिविलियन थे। उनके पेशे भी फौजी नहीं थे। एक तो दर्जी था; दूसरा राजगीरी करता था। विद्रो-हियोंसे लड़नेके लिए जब नई फौज तैयार करनेको आदमियोंकी मांग आई, तो ये दोनों भर्ती हो गये और फौरन ही उन्होंने अपूर्व योग्यता दिखाई। एक-एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते वे सिपाहियोंकी पलटनोंसे ऊपर उठे और दो बरसके अर्सेमें, जबकि मैं स्पेन गया था, दोनों एक-एक लाखकी फौजके अफसर थे और लड़ाईमें उनकी जीतोंका भी बड़ा शानदार रिकार्ड था।

मॉडेस्टोसे हम मिलते-मिलते रह गये और इसका हमें अफसोस हुआ। लेकिन लिस्टरसे हम मिले और दोपहरीका ज्यादातर वक्त उसीके साथ खाना खाते बिताया। सीधा-सादा खाना था। लिस्टर रोबीला आदमी है। चेहरा खुला और आकर्षक, उस लड़केकी तरह जो जल्दी बढ़कर आदमी हो गया हो।

लड़कपन और सयानपनका अजीब संगम था। गंभीरताकी जगह थी उसकी जिंदा-दिली और दूसरोंको भी हंसा देनेवाली हंसी। जिम्मेदारी उसके ऊपर बहुत थी और जो बोझ उसे उठाना पड़ रहा था, वह भारी था। आये दिन उसे मुश्किल हालतोंका सामना करना पड़ता था, और जहां कहीं खतरा ज्यादा-से-ज्यादा होता था या दुश्मन आगे बढ़ते आते होते थे, तो उसका मुकाबला करनेके-लिए झटपट उसे या मॉडेस्टोको ही ले जाया जाता था। फिर भी लिस्टरकी खूबसूरती और चाल-ढालमें कोई अंतर नहीं आया था और उसके तमाम ढंगमें आत्म-विश्वास और निश्चयकी झलक थी। वह तो एक ऐसा बहादुर योद्धा था कि जो किसी भी बातसे भयभीत होता नहीं दिखाई देता था और महान् संकट-की परिस्थिति में उसमें अपूर्व शक्ति भर आती थी।

नजदीकसे मैंने उसे देखा क्योंकि मैं देखना चाहता था कि लोकप्रिय फौजके ये नये अफसर कैसे हैं? पुराने फौजी आदमियोंको तो हम जानते हैं, जो कट्टर अनुशासनप्रिय लोग हैं, चतुरता जिनकी सीमित होती है, रोजमर्राके काममें लगे और गुजरे जमानेमें पड़े हुए। नई बातोंसे जिन्हें घृणा होती है, क्योंकि वे उनकी युद्धकी धारणाओंको ही बदल डालती हैं। पिछले महायुद्धमें ये लोग तो बहुत ही असफल साबित हुए। फिर भी उस तरहके लोग अब भी बहुत हदतक फौजोंपर हुकूमत कर रहे हैं। हिंदुस्तानमें भी ऐसे बहुतसे लोग हैं और अक्सर उनकी पुरानी सीखें हमें मिला करती हैं। वह तो कितनी बार हमसे कह चुके हैं कि हिंदुस्तानियों-के हम-जैसे बननेमें (हां, यदि वे उतनी शानदार ऊंचाईपर कभी पहुंच भी सकें) और बड़े-बड़े अफसरोंकी जगह पानेमें तो पुश्तें लग जायेंगी। अफसोस है इन पुराने फौजी आदमियोंके लिए, जो पोलो और ब्रिजके खेलमें तथा परेडके मैदानमें इतने तेज दिखाई देते हैं, लेकिन आजके लिए वे गये-गुजरे हो गये हैं। अपना जमाना वे देख चुके और अब उन्हें यंत्रकारों, इंजीनियरों और विशुद्ध राजनैतिक विचारोंवाले लोगोंको जगह देनी पड़ी, जो मौजूदा अस्त्र-शस्त्रोंकी लड़ाईके तरीकों-की बारीकियोंको समझते हैं। उन्हें अपनी जगह उन सिपाहियोंको देनी होगी जिनकी अन्य मामूली सिपाहियोंसे अलहदा कोई ऊंची श्रेणी नहीं है। वह तो जनताकी फौजका अफसर होगा। फौजके लिए जो अनुशासन जरूरी है, उसे वह कायम रखेगा, लेकिन फिर भी अपने मातहत फौजके साथ भाई-चारेका

नाता रखेगा।

लिस्टरको मैंने इसी नये नमूनेका पाया। उन्होंने बहुतसे अफसरोंसे मेरी मुलाकात कराई और अफसरोंके ट्रेनिंग स्कूलमें मुझे ले गये। हर जगह मुझे घरेलूपन और भाई-चारेका वायुमंडल मालूम हुआ। और वहां उन सबको जोड़नेवाली मजबूत कड़ी थी वह ध्येय, जिसकी रक्षा करनेका संकल्प वे कर चुके थे। फिर भी अनुशासन वहां था। इस स्कूलमें मैंने देखा कि अफसरोंको राजनैतिक शिक्षा देनेका खयाल रखा जाता है। अफसरोंके स्कूल छोड़ देने और अपने पलटनोंमें जा दाखिल होनेपर भी इस राजनैतिक शिक्षाकी तरफसे लापरवाही नहीं होती, क्योंकि हरेक पलटनके साथ राजनैतिक कमिसर होता है, जिसकी राय किसी भी सवालके राजनैतिक पहलुओंपर कमांडरको हमेशा लेनी पड़ती थी। कमिसरका कर्त्तव्य होता था कि वह फौजमें दिलेरी बनाये रखे।

स्पेनिश जनतंत्रकी सबसे खास बातोंमें एक बात थी दो बरसके अर्सेमें एक बहुत ही अच्छी फौजका तैयार करना, जिसमें हजारों सुयोग्य अफसर थे। जनतंत्रकी अंतमें हार हुई, उसका कारण इस फौजकी असफलता नहीं थी। भूखने और इंग्लैंड और फ्रांसकी दगाबाजीने उसका खात्मा किया। मिआजा जैसे अफसरको छोड़कर पुराने अफसर अविश्वस्त और अयोग्य साबित हुए, जैसा कि चीनमें हुआ। बहुत-सी शिकस्तें तो इन पुराने अफसरोंकी वजहसे हुईं; लेकिन चूंकि नये तरीकेके अफसरोंकी तादाद बढ़ गई; इसलिए फौजमें मजबूती आ गई। नये अफसरोंमें एक बातकी कमी थी। वह यह कि युद्धविद्याकी उन्हें लंबी ट्रेनिंग नहीं मिली थी। लड़ाई सीखनेके उनके शिक्षणालय तो अक्सर लड़ाईके मैदान ही थे। वहीं उन्होंने बहुत-कुछ सीखा और तेजीसे तरक्की की। लेकिन ऊंचे अफसरोंके लिए लड़ाईका तख्ता पलट जाने और नई हालतोंके पैदा हो जानेकी वजहसे लोगोंकी भीड़-की-भीड़को जल्दीसे संभाल लेनेका आदी हो जाना बहुत मुश्किल था। इस बातमें वे जर्मनी और इटलीके सुरक्षित स्टाफकी बराबरी नहीं कर सकते थे, जो फ्रैंकोकी तरफसे लड़ रहे थे।

जनतंत्रके रास्तेमें यह एक भारी अड़चन थी; लेकिन बढ़ते-बढ़ते उसपर उसने विजय पाई और अफसरोंकी भीड़मेंसे मॉडेस्टो और लिस्टर जैसे योग्य व्यक्ति सामने आये। ऊपरकी रुकावटके विरुद्ध जनतंत्रका लवाजमा कहीं ज्यादा

लायक था, और मध्यमश्रेणीके उसके अफसर बड़े चतुर और तेज थे। अगर उन्हें काफी रसद और गोला-बारूद मिल जाते, तो इसमें संदेह नहीं कि जनतंत्रकी नई फौज फ्रेंकोके पेशेवरों और विशेषज्ञोंसे जीत जाती, भले ही उनके पास जर्मनों और इटालियनोंकी फौज़ें और अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद बहुत ज्यादा होता।

इस नई फौज और उसकी ट्रेनिंगसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। बादमें हमें अंतर्राष्ट्रीय दलको देखनेके लिए ले जाया गया, जिसने लड़ाईमें बहुत नाम पैदा किया था। शुरूमें उसमें सब-के-सब विदेशी सैनिक ही थे; लेकिन जब मैं वहां गया, तब उसमें ६० फीसदी स्पेनिश थे। जनतंत्रकी सरकार विदेशी सैनिकोंकी भर्तीको रोक रही थी, क्योंकि उसका ध्येय यह बतलाना था कि वह स्पेनर जर्मन, इटालियन, और मूर-जैसे विदेशियोंके हमलेकी मुखालफतमें लड़ रही है, उस घरेलू लड़ाईमें नहीं कि जिसे विदेशी लोग महज मदद दे रहे हैं। लड़ाईके बारेमें बार्सीलोनामें हमेशा यही कहा जाता था कि वह तो एक विदेशी हमला है, घरेलू लड़ाई नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय दलका पता हमें आसानी से नहीं मिल सका। यह एक अजीब बात थी कि पड़ोस में भारी फौज पड़ी होनेपर भी वह दिखाई नहीं देती थी, और देहात करीब-करीब बियाबान-सा दीख पड़ता था। हां, कहीं-कहीं सिपाहियों या संतरियोंकी टोलियां दीख पड़ती थीं, और एक फौजी लॉरी इधर-उधर दौड़ रही थी। इसकी वजह हवाई जहाज थे और बमबारीका डर ही इतना था कि सब सार्वजनिक कार्रवाइयोंको छोड़ देना पड़ा था। इसलिए फौजकी टुकड़ियां छिपी रहती थीं और छिपकर ही काम करती थीं। उनकी तोपें पेड़ोंकी टहनियोंसे छिपा दी गई थीं। पहाड़ियोंपर ढेर-की-ढेर तोपें लगी थीं, लेकिन थोड़ेसे फासिलेसे वहां पेड़ और झाड़ियां ही दिखाई देती थीं।

अंतर्राष्ट्रीय दल बहुत बड़े रकबेमें फैला हुआ था। उसके हरेक हिस्सेको देखनेका हमें वक्त नहीं था। हम अंग्रेजी और अमरीकन पलटनमें गये और जब एक बार हमने उनका पता लगा लिया तो हमें पहाड़ियोंपर और नीचे घाटीमें बहुत-से सिपाही दिखाई दिये। वे वहां बहुत पुरानी हालतोंमें पड़ाव डाले हुए थे। मिट्टी और झाड़ियोंसे उन्होंने चंदरोजा झोंपड़ियां बना ली थीं, या छोटी

खाइयां खोद ली थीं। आरामकी तो वहां कुछ भी चीज नहीं थी, फिर भी वे इतने मस्त थे कि जैसे मैंने कहीं भी नहीं देखे। उनका उत्साह दूसरोंको भी उत्साहित करनेवाला था। और उनके जोश और निश्चयको देखकर यह खयाल करना भी मुश्किल था कि जिस ध्येयके लिए ये लड़ रहे थे, वह पूरा न होगा।

उनमेंसे बहुतसे सिपाहियोंसे हमने बातचीत की। अपनी इच्छासे वे दूर जगहोंसे आ गये थे। उन्हें उस ध्येयके लिए जान जुटानेकी कोशिश खींच लाई थी कि जिससे हरेक युगमें स्त्री-पुरुषोंको प्रेरणा मिली है। अपने घरबार, कामकाज और आरामोंको उन्होंने छोड़ दिया था और अपनी पसंदसे उन्होंने खतरेसे भरी मुश्किलकी जिंदगीको हर वक्तकी अपनी साथिन बनाया था। मौत तो उनकी अक्सर आनेवाली मेहमान थी। उन्हें हंसते और खेलते देखकर मुझे लड़ाईके पिछले दो बरसोंकी याद आई। बदकिस्मती और बरबादीके खौफनाक बरसोंका इस दलका शानदार रिकार्ड भी मेरे सामने आया। न जाने कितनी बार उन्होंने जनतंत्रको बचाया, और उनमेंसे हजारों स्पेनकी जमीनमें सो रहे हैं। मैंने जितने खुश-दिल युवकोंको देखा, उनमेंसे कितने ऐसे होंगे जो कभी अपने घर न लौट सकेंगे, और उनके कुटुंबी बेकार उनकी राह देखते रहेंगे।

कुछ ही दिन बाद मैंने देखा कि वे फिर लड़ाईके मैदानमें आ गये थे, और उसके कुछ ही अर्से बाद फ्रेंकोकी फौजोंको रोकनेके लिए उन्हें ईब्रो दौड़ आना पड़ा। उनमेंसे बहुत-से तो हमेशाके लिए वहीं रह गये। मुझे याद है कि उनमेंसे कई एकने मेरे हस्ताक्षर लिये थे।

मर्जी न होते हुए भी मुझे अंतर्राष्ट्रीय दलके इन बहादुर आदमियोंके पाससे चला आना पड़ा। मनमें कुछ ऐसा था जो मुझे उस वीरान दीखनेवाले पहाड़ी देशमें ठहरनेको प्रेरित कर रहा था, जिसने इतने मनुष्योचित साहस और जीवनकी इतनी अमूल्य चीजको आश्रय दिया। एक स्पेनिश दलके स्थानपर हमें ले जाया गया। मेरे खयालसे वह स्थान मॉडेस्टोका था, हालांकि मॉडेस्टो उस समय वहांपर नहीं था। हमारे सम्मानमें सब अफसर इकट्ठे हो गये थे, और हमने मिलकर खाना खाया। उस आनंददायक गोष्ठी में यह याद रखना मुश्किल था कि लड़ाईका मैदान वहांसे दूर नहीं है, और कोई भी अनिष्ट बम हमारी शांतिको भंग कर सकता है। एक स्पेनिश अफसरके सुंदर भाषणके बाद हिंदुस्तान

और हिंदुस्तानकी आजादीके लिए शुभकामनाएं की गई। थोड़ेसे शब्दोंमें धन्यवाद देते हुए मैंने उनका जवाब दिया और जनतंत्र और उसकी अच्छी फौजके प्रति मैंने अपनी सद्भावना प्रकट की।

और फिर बार्सीलोनाकी तारोंकी रोशनीमें वापिस लौट आया।

७ जुलाई, १९३९

४

जो खास-खास लोग स्पेनमें हमें मिले, लिस्टर उनमेंसे एक था। दूसरा आदमी था सीनर डेल वेयो जो उस वक्त प्रजातंत्रका विदेशी मंत्री था। बार्सीलोना पहुंचते ही हम उससे मिलने गये। बादमें भी कई मौकोंपर हम उससे मिले। आमतौरपर कूटनीतिज्ञ जैसे एकांतप्रिय और सुशील हुआ करते हैं और कोई भी बात निश्चित रूपसे कहनेमें घबराते हैं, और उन्हें कूटनीति की चालोंकी लंबी ट्रेनिंग मिली होती है, वैसा वेयो नहीं था। वह तो एक पत्रकार और लेखक था। क्रांति ने उसे सार्वजनिक जीवन में आगे ला दिया था। अब भी उसमें पत्रकारपन कुछ मौजूद था। योग्यता उसकी असंदिग्ध थी; लेकिन उसके जिस गुणका असर मुझपर बहुत ज्यादा पड़ा, वह उसकी जीवट और उसका संकल्प था। मैड्रिड, बार्सीलोना और जेनेवामें उसने प्रजातंत्रकी तरफसे सभी मुश्किलोंका मुकाबला किया, और 'अ-हस्तक्षेप' की पेचीदा चालबाजियोंपर हावी होनेकी कोशिश की। मार्च १९३८के संकटके दिनोंमें और जब १९३८की गर्मियोंमें ईब्रोकी लंबी खिचती जाती लड़ाई जारी थी, तब वह प्रजातंत्रके आदमियोंके लिए आश्रयस्थान और प्रकाश-स्तंभ बना।

प्रधान-मंत्री डा. नैग्रिनके बाद वह सरकारका मुख्य व्यक्ति था। भारी-से-भारी बरबादी होने और बदकिस्मती सामने आनेपर इन दोनोंमेंसे किसीके हाथ-पैर कभी नहीं फूले और न कभी हिम्मत ही छोड़ी। किसी राष्ट्रके अध्यक्षने इतनी बड़ी दिलेरी कभी नहीं बतलाई होगी जितनी डा. नैग्रिनने कि जो उस समय जबकि ईब्रोपर जोरोंका हमला हो रहा था, जूरिकमें वैज्ञानिकोंकी एक कांग्रेसमें शामिल होने चले गये।

डेल वेयोसे मेरी बहुत देरतक बातचीत होती रही। उसने बिना किसी छिपावके स्पेनकी स्थिति समझाई और अपनी कठिनाइयोंकी न तो अवगणना की,

न उन्हें कम ही बतलाया। नई फौजने जो प्रगति की, उससे लड़ाईके खयालसे वह संतुष्ट था, लेकिन स्टाफका काम अच्छा नहीं था। उनके बहुत-सी शिकस्तें पाने और पीछे हटनेका कारण दुश्मनोंका बमबारी के साधनों, हथियारों, बड़ी-बड़ी तोपोंके अलावा यह भी था कि प्रजातंत्रके सेनापतियोंको बड़ी लड़ाइयोंका तजरबा न था और कभी-कभी प्रजातंत्रके रखे हुए पुराने अफसर भी जानबूझकर काम बिगाड़ देते थे। यह काम बिगाड़ना नातजरबेकारीसे भी ज्यादा हानिकारक था। लेकिन ज्यों-ज्यों फौजके अफसर धीरे-धीरे इन अविश्वसनीय अफसरोंकी जगह लेते जाते थे, त्यों-त्यों वह हानि कम-से-कम होती जा रही थी। नये अनुभव-हीन आदमियोंका रखा जाना एक महंगा सौदा था, लेकिन अनुभव तो वहां लड़ाईके मैदानमें प्राप्त किया जा रहा था और गलतियां भी उसमें कम ही होती थीं। फौजकी योग्यता रोज-ब-रोज बढ़ती जाती थी, और इस खयालसे प्रजातंत्रके लिए अधिक वक्त निकल जाना फायदेमंद था।

मेरे स्पेनमें जानेके कुछ ही हफ्तों बाद फ्रेंकोकी फौजोंने जर्मन और इटेलियन मित्र-राष्ट्रोंका पूरा सहयोग लेकर ईब्रोपर भयंकर हमला किया। ईब्रोकी यह लड़ाई कई हफ्तेतक चलती रही और वह मौजूदा समयकी खास लड़ाइयोंमेंसे एक थी। लेकिन आज हमारे मापदंड बड़े हो गये हैं और यह लड़ाई मामूली लड़ाईकी एक छोटी-सी घटना भर रह गई है। इस लड़ाईमें प्रजातंत्रकी फौजने अपना पूरी तरहसे औचित्य दिखाया और फ्रेंकोकी फौजसे अपनेको अधिक योग्य साबित किया। हवाई लड़ाई के साधनों और गोला-बारूदकी कमी होते हुए भी उसने हवाई जहाजों और भारी फौजके हमलोंको बार-बार रोका।

डेल वेयोको फौजके बारेमें कोई फिक्र नहीं थी। उसकी परेशानी तो यह थी कि गोला-बारूद कहांसे आये? और उससे भी ज्यादा फिक्र थी उसे रसद की। आगे आनेवाला जाड़ा रसदके लिए बड़ी मुश्किलका वक्त था। रसद और गोला-बारूदका मिलना ज्यादातर इंग्लैंड और फ्रांसकी नीतिपर निर्भर था और इन दोनों देशोंकी सरकारें बराबर 'अहस्तक्षेप' के नामपर प्रजातंत्रका गला घोंटने और छिपे-छिपे फ्रेंकोको ही मदद देने की नीतिपर उतारू थीं।

म्यूनिक और उसके तमाम पुछल्ले तो आगे आनेको थे और हमारी विवेक-बुद्धि बार-बारके धोखे और झूठसे उस वक्ततक जड़ नहीं हो पाई थी। लेकिन

इस 'अहस्तक्षेप' का तमाशा तो एक अचंभेमें डाल देनेकी चीज थी और उसने जाहिर किया कि अंतर्राष्ट्रीय मामलोंके मापदंड और साधन कितने खराब हैं ! स्पेनके इस अहस्तक्षेपने ही म्यूनिकको जन्म दिया ।

डेल वेयोने मेरे सामने फ्रेंकोके बारेमें एक भी कड़ा शब्द नहीं कहा । उसने बस इतना कहकर छोड़ दिया कि उसके मुल्कके असली दुश्मन और आक्रमणकारी तो नात्सी और फासिस्ट लोग हैं । फ्रेंको उनके हाथकी कठपुतली है । जर्मनी और इटलीतकके बारेमें भी उसमें कोई कटुता नहीं थी । लेकिन उसमें उस वक्त कटुताकी कमी नहीं रही, जब उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारोंकी बात की कि जो मित्रताके बुर्केमें प्रजातंत्रीय स्पेनको खत्म कर डालनेको इतना सब कर रही थीं । खासतौरसे मि. चेंबरलेनकी सरकारके तो वह बेहद खिलाफ था; क्योंकि उसका खयाल था कि फ्रेंच सरकार तो एकदम डाउनिंग स्ट्रीटके ताबे है ।

डेल वेयोने मुझसे कहा कि यह बात खुले आम तो वह नहीं कह सकता था, पर उसे और उसकी सरकारको यह समझनेपर विवश होना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार दुश्मन है और दुश्मनको मदद दे रही है । हमारी इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद फ्रेंच सरकारने ब्रिटिश सरकारके कहनेपर पिरैनीज सरहदको रोक दिया । मुसोलिनीको संतुष्ट करनेके लिए यह एक बड़ी बुरी करतूत थी । इससे प्रजातंत्रके ध्येयको जितनी हानि पहुंची, उतनी उन लड़ाइयोंसे भी नहीं हुई, जिनमें फ्रेंको जीता था ।

हम दोनोंने भारतके बारेमें भी बातचीत की और मैंने अपना राष्ट्रीय झंडा उसे भेंट किया । कई महीने बाद सितंबरके उस पिछले भाग्य-निर्णायक सप्ताह में कि जब मि. चेंबरलेन और उनका छाता 'संतुष्ट करनेकी नीति' को हवाई जहाजसे गोडेसबर्ग ले जा रहे थे, मैं डेल वेयोसे जेनेवामें मिला । रसदकी समस्या बड़ी गंभीर होती जा रही थी । उसने मुझसे प्रार्थना की कि हिंदुस्तानसे खाद्य-सामग्री भिजवाकर मैं उनकी मदद करूं । उसके अंतिम दर्शन मुझे आधी रातके वक्त जेनेवाके मशहूर कॉफी-हाउसमें हुए, जहां राजनीतिज्ञ और पत्रकार ताजी खबरों और राजनीतिमें फैली बदनामीकी चर्चा करनेके लिए इकट्ठे हुए थे । उन्हें काफी मसाला मिल जाता था, क्योंकि मैक्यावेलीके जमानेकी स्पष्ट चालबाजियोंको अंधेरेमें डाल देनेके लिए 'संतुष्ट करनेकी नीति' का अवतार हुआ था ।

तीसरी आकर्षक व्यक्ति जो मुझे स्पेनमें मिली डोलोरीज थी। वह पेशनेरियाके नामसे मशहूर थी। उसके बारेमें अक्सर मैंने बहुत-कुछ सुना था और उससे मिलनेके लिए मैं उत्सुक था। वह कुछ अस्वस्थ थी; हम उसके छोटे-से घरपर गये। कोई एक घंटेतक हम उसके साथ रहे और एक दुभाषियेकी मारफत हम लोगोंने बातचीत की। उसके असाधारण जीवटने मुझे चकित कर दिया और मैंने अनुभव किया कि वह उन बहुत ही खास औरतोंमेंसे एक है, जो मुझे वहां मिली थीं।

वह बास्क देशके एक सुरंगसाजकी बेटी थी, अधेड़ उम्रकी, सीधीसादी दिखनेवाली और सयाने-सयाने बच्चों की मां! चेहरा उसका सुंदर और खुशगवार था, जैसे खुश एक नर्सका होता है। मुहपर मुस्कराहट थी और फिर भी उस सबके पीछे अपने वर्ग और अपने राष्ट्रके लिए असीम वेदना छिपी हुई थी। आरामके वक्तमें उसका चेहरा शांत था। लेकिन सतहके नीचेकी हलचलकी रेखा उसपर झलकती थी। जब वह बोलनेको मुह खोलती तो जोशीले शब्द उसके मुंहसे निकलने लगते थे, एक शब्दके ऊपर दूसरा शब्द टूट पड़ता हुआ। अंदरकी ज्वालासे उसका चेहरा दमक उठता था और उसकी खूबसूरत आंखें ऐसी चमक उठती थीं कि आदमीको लुभा लें। एक छोटे-से कमरेमें मैंने उसकी बात सुनी और स्पेनिश भाषामें जो कुछ वह कह रही थी, उसका कुछ हिस्सा मैं समझ पाया। लेकिन उसकी भाषाकी संगीतमय ध्वनि मुझे बहुत पसंद आई और उसके चेहरे और आंखोंके हावभाव भी अर्थपूर्ण थे। तब मैं समझा कि स्पेनकी जनतापर उसका कितना असर है। मैं नहीं कह सकता कि मुझ जैसे आदमीपर कि जिसपर किसीका असर आसानीसे पड़ नहीं पाता, जब उसने इतना असर डाल दिया, तो अपने देशके लोगोंपर तो न जाने उसका कितना असर पड़ता होगा?

कोई एकाध महीने बाद मैं पैशनेरियासे पेरिसमें मिला और देखा कि वह एक बड़ी सभा में भाषण दे रही है। वह स्पेनकी भाषामें बोल रही थी और लोग वहां ज्यादातर फ्रांसके थे, इसलिए वे उसकी बात आसानीसे नहीं समझ सकते थे। लेकिन उस भारी भीड़को उसने स्तब्ध रखा। ऐसा थोड़े ही अच्छे बोलनेवाले कर सकते हैं। और जब मीटिंग खत्म हुई, तो औरतोंपर औरतें, लड़कियोंपर लड़कियां और कभी-कभी आदमी, अपने हाथोंमें उसके लिए फूल या स्पेन

देशके लिए भेंट ले-लेकर पास आने लगे। उनकी आंसूभरी आंखोंमें उसके लि प्रेम भरा था और जब वह उन्हें छातीसे चिपटाती थी या कहती थी कि तुम रहो, तो वे अक्सर रो पड़ती थीं। वह वहां स्पेनके दुख और दुर्जय आत्म मूर्त्ति बनी खड़ी थी। लेकिन वह एक राष्ट्रभरके प्रतीक होनेसे भी कुछ ज्यादा थी। वह उन असंख्य प्राणियोंके लिए उनके जीवनकी पीड़ाका और उस अंत करनेकी प्रेरणा और आशाकी मूर्त्ति थी। वह प्रत्येक सामान्य स्त्री-पुरुष प्रतीक थी कि जो युग-युगसे दुःख उठाते और शोषित होते आ रहे हैं और जो स्वतंत्र होनेपर कटिबद्ध थे।

समाप्त
